सिख-इतिहास।

सचित्र।

कनिङ्घम-कृत "सिख-इतिहास" ग्रन्थका
हिन्दी अनुवाद।

कलकत्ता,

३८।२ भवानीचरण दत्त ष्ट्रीट, हिन्दी-बङ्गवासी
इलेक्ट्रो मेशीन-प्रेसमें
श्रीनटवर चक्रवर्त्ती द्वारा मुद्रित
और प्रकाशित।

संवत् १९६५।

मूल्य २) दो रुपये।

सिख-इतिहास।

प्रथम परिच्छेद।

देशका हाल और देशके अधिवासिगण।

[सिख-अधिकृत और उनके कर्तृत्वाधीनमें शासित राज्यकी भौगोलिक सीमा;—जल-वायु और उत्पन्न द्रव्यादि,—अधिवासिगण, उनकी भिन्न भिन्न जातियां और वंश;—जनसाधारणका धर्म;—जाति और धर्मका विशेष लक्षण और परिणाम,—भिन्न भिन्न जातियोंका आदिम उपनिवेश स्थापन,—विभिन्न जातियोंका स्वधर्म-त्याग और धर्मान्तर ग्रहण।]

सन् सोलह और सत्रह शताब्दिमें क्षत्रियवंशसम्भूत सिख-गुरु नानक और गोविन्दके धर्मसंस्कार और समाजस्वाधीनताके विषयमें अपना अपना मत फैलानेपर, लाहौर और शतद्रु नदीके दक्षिण-तीरवर्ती कृषिजीवी "जाट" अधिवासियोंने उस नवप्रचारित धर्ममतका अवलम्बनकर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। "सिख" अर्थात् "शिष्य सम्प्रदाय" इस समय एक जाति-रूपमें परिणत है; दिल्लीसे पेशावर और सिन्धुसे काराकोरम पर्वत-श्रेणीतक विशाल भूखण्डमें उनका अधिकार और आधि-

27 AUG 1908 WRITERS' BUILDINGS

पथ फैला हुआ है। इस समय सिख जातिका अधिकृत राज्य उत्तर अक्षांशकी अट्ठाईस और छत्तीस, संख्यायुक्त रेखाके (28 th and 36th parallels of north latitude) और पूर्व द्राघिमाकी इकहत्तर और सतत्तर संख्यक माध्यन्दिन रेखाके (71st and 77th meridians of east longitude) मध्यवर्त्ती है। सीमान्तसे "खैबरपास"तक साढ़े चार सौ मील परिमित एक भूमिरेखा खींचनेसे, उसपर दो समबाहु त्रिभुज अङ्कित हो सकते हैं; रणजित्‌सिंहका विजित राज्य और सिखजातिका स्थायी उपनिवेशसमूह उसके ही अन्तर्गत है।

इसतरह सिख-राज्यके मध्यवर्त्ती अक्षांशोंके केन्द्रस्थानमें रहनेकी वजह अफरिका और अमेरिकाके उत्तरवर्त्ती प्रदेशोंके साथ उसका अनेक सादृश्य दिखाई देता है। समुद्रकी जल-रेखासे अनधिक ऊंचे मैदान और दो तीन मील ऊंची पर्व्वतमालासे समाच्छन्न इस विशाल सिख राज्यमें प्रकृतिके आवर्त्तनसे सब जगह ही तरह तरहके जल-वायुका प्रभाव दिखाई देता है और स्वभावजात सब तरहका द्रव्य उत्पन्न होता है। लद्दाखकी शीत दीर्घकाल-स्थायी और असहनीय है; आधे वर्षतक यह स्थान बरफसे ढंका रहता है। निर्ज्जन मैदानोंकी निस्तब्धतासे हृदयमें भयका सञ्चार होता है और कोई सजीव आदमी दिखाई नहीं देता। यह पर्व्वतमाला-समाच्छन्न ऊंचा असुर्व्वर प्रदेश शाल-पशम-उत्पन्नकारी रोम-विशिष्ट भेड़ोंके लिये प्रसिद्ध है। इन प्रदेशोंकी स्वल्पपरिसर भूमिखण्डमें बढ़िया गेहूं और यव प्रचुर परिमाणसे उत्पन्न होता है। इस ऊंचे मैदानसे हिमचरको भी तारे दिखाई देते

है; और तो क्या, यहांकी पतली हवामें कुछ कुछ अस्फुट-निर्घोषध्वनि सुनाई देती है। *

---

* सिन्धु नदकी प्रधान शाखा और शाजुककी (Shajuk) मध्यवर्ती फैले हुए पतित भूमिखण्डमें घासका उपयोगी बहुत ही अच्छा घास-पशम प्रचुर परिमाणसे उत्पन्न होता है। अतएव, नदीकी उपत्यकासे लुधियाना और दिल्लीतक फैले हुए भूमिखण्डमें १००,००० रुपये, अथवा १०,००० पाउण्ड मूल्यका ऐसा ही पशम उत्पन्न होते देखा जाता है। (१८४४ सालके बङ्गदेशीय "एशियाटिक सोसाइटी" का समाचारपत्र २१० पृ०—"Journal, Asiatic Society of Bengal" for 1844 p. 210)। मूरक्रोफ्टने गिनकर देखा है, कि एकमात्र काश्मीरमें ही प्राय: ७५,००० पाउण्ड मूल्यके पशमकी आमदनी हुई है। (भ्रमणवृत्तान्त, द्वितीय भाग, १०५ पृ०—"Travels" ii. P.105)। इसतरह शतद्रुकी प्रान्तवर्ती देशोंमें घास-पशमका रोजगार समग्र देशव्यापी रोजगारोंसे थोड़ा बहुत दशमांश मात्र है। मूरक्रोफ्टने तिब्बत देशके यव और गेहूँकी खेतीकी प्रशंसा की है। उन्होंने तिब्बत देशमें यव । घासकी जैसी अच्छी जमीन देखी है, वैसा अतुलनीय शस्यक्षेत्र कहीं उनके नयन-पथमें पतित नहीं हुआ। उन्होंने और भी कहा है, कि किसी अङ्गरेज कृषकको बहुत दूर भ्रमण करके भी, सन्देह है कि वह ऐसा नयनतृप्तिकर यव-गेहूँका खेत कहीं देख सके या नहीं। (" ravels," 269, 280; —भ्रमणवृत्तान्त; २६९, २८० पृ०।)

तिब्बत देशकी शीत और वायुचालित हिमानीकी अपेक्षा मुलतानकी गरमी और लू बहुत ज्यादा असहनीय है। गार नदीके किनारे रमणीय स्थानमें रहनेके कारण रेशमजात पण्यादि और कालीनके रोजगारके लिये सम्पूर्ण उपयोगी है। पास ही छोटी सोतस्विनियोंके वर्तमान रहनेसे यहां प्रचुर परिमाणसे गेहूं, नील और कपास पैदा होता है। *

तिब्बतके उत्तरवर्ती अनुर्वर क्षेत्रकी छोटे छोटे पत्थर और उपलखण्ड और वालुकाराशिमें प्रचुर परिमाणसे स्वर्णरेणु पाया जाता है; किन्तु इसमें जो व्यवसायोपयोगी कच्चा सुहागा मिलता है, उसका मूल्य बहुमूल्य धातुकी अपेक्षा भी बहुत ज्यादा है।

यारकन्दमें "चरस" नामक एक बहुत अच्छा मादक द्रव्य मिलता है; भारतवर्षमें इसकी बड़ी कदर है। उसीके साथ साथ अहिफेन हिमालयके उस पार भी रफ्तनी होती और हिन्दू तथा चीन देशीय रोजगारी इन दो विषतुल्य पण्यकी परस्पर विनिमयसे व्यवसाय-वाणिज्य करते हैं।

तिब्बतसे लेकर काश्मीर और काबुलतक "चाय"का रोजगार प्रचलित था; उस समय उन स्थानोंमें ही उसकी उपयोगिता उपलब्धि होती थी। आठ पाउण्ड वजनकी "चाय"का बण्डल (block) गुणानुसार १२ और १६ शिलिङ्गसे ३६ और ४८ शिलिङ्ग मूल्यपर बिक्री होता था (Moorcraft "Travels" i. (350 & 351—मूरक्रोफ्टका भ्रमणवृत्तान्त, ३५० और ३५१ पृ०)।

* मुलतानका गेहूं श्रेष्ठशून्य है; इसका शस्य बड़ा और

हिमालयके दक्षिण पाददेशस्थ नीची जमीन समय समयपर वृष्टिके जलसे डूब जाती है। किन्तु तुषारावृत प्रदेशोंमें

बनती है। इस प्रदेशके राजपूतानेमें और अंग्रेजोंके अधि-कारके समयसे सिन्धु देशमें प्रचुर परिमाणसे रफ्तनी होती है। मुलतानके शिल्पजात कपड़ोंका वार्षिक मूल्य सम्भवतः (५०,०००) पचास हजार रुपयेसे अधिक नहीं है। रेशमजात द्रव्यादिका मूल्य कपड़ोंके मूल्यकी अपेक्षा पंचगुना ज्यादा है; अथवा, भावलपुरके शिल्पजात द्रव्यादिकी मूल्य समेत कुल (४००,०००) चार लाख रुपये नकद है। किन्तु सिन्धु देशके एक राजवंशके भगाये जानेके वक्तसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि शिल्पजात वस्त्रादिकी आमदनी प्रचुर परिमाणसे घट गई है। बङ्गदेशजात रेशमकी अपेक्षा सख्त, सफेद और चमकदार होनेकी वजह, उसके बदले बुखा-रेका खर्री-तन्तु (अपरिष्कृत रेशम) व्यवहृत होता है।

विलायती वस्त्रादिका और तपनोपयोगी कपासके सूतका व्यवहार (थोड़े बहुत परिमाणसे) भारतमें सब जगह ही प्रचलित हुआ है; किन्तु केवल पृथिवीके धनी पुरुष ही इन सब द्रव्यादिके खरीदनेमें समर्थ होते हैं। भावलपुरके जुलाहे केवल अठारह "टन" कपासके सूतका कपड़ा तय्यार करते हैं; किन्तु उस जिलेमें अन्ततः तीन सौ "टन" साफ कपास उत्पन्न होता है। वहांके रहनेवाले कितने ही परिमाणसे इस कपासको सञ्चय कर रखते हैं और बाकी बिक्रीके लिये राजपूताना भेज देते हैं।

प्रायशः ही बरसात होती दिखाई नहीं देती; और मुलतान तथा सिन्धु नदके तीरवर्त्ती स्थानोंमें इसकी कठोरता कुछ भी अनुभूत नहीं होती। मध्य पञ्जाब, बन-जङ्गलादृत, या पशुचारणयोग्य अनुर्व्वर प्रान्तर-समाच्छन्न है। नद-नदियोंकी व्यापकताके कारण यह प्रदेश मरुभूमिमें परिणत हुआ नहीं है; किन्तु अनावृष्टि और ग्रीष्माधिक्यसे स्थान हिंस्र जन्तुओंके रहनेके अनुपयोगी है और गौ, भेड़, आदि गृह-पालित पशु इस देशके मुख्य सम्पत् हैं। पर्व्वत-माला-समाच्छन्न सीमाबद्ध विस्तृत समतल क्षेत्रके भीतरसे सिन्धु नद और शाखा नदियोंके प्रवहमान रहनेसे यह प्रदेश भारतके अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा अधिक उर्व्वर है। नगा-कोंमें प्रचुर कपास, रेशम और पशम बुननेवाले सुनिपुण कारीगरोंसे परिपूर्ण है; इस देशमें चमड़ा, कांस और लोहेके रोजगारी बहुसंख्यक सुदक्षपुरुष दिखाई देते

पञ्जाबकी मीपी जमीनमें और भावलपुरमें यथाक्रम ७५, और '५० "टन" नील उत्पन्न होता है। यहां प्रति पाउण्डका मूल्य १७ से १८ पैन्स मात्र है। यह प्रधानतः खुरासानमें ही अधिक परिमाणसे जाता है; प्रायः भारतजात नीलके कितने ही परिमाणसे फारिस उपसागरकी राहसे उस देशमें भेजे जानेके कारण यहांके नीलका रोजगार बहुत कुछ घट गय । सिक्ख जाति और सिन्धु नदकी पार्श्ववर्त्ती मुसलमानोंके नीले रङ्गका पहनावा विशेष पसन्द करनेकी वजह इस अञ्चलमें नीलका रोजगार चलती रहेगा।

है। पृथिवीके ऊपरी भागके बहुत पास जल दिखाई देता है; जलपात्रों प्रभृति कामोंमें साधारणतः पारित पशुओंके चमड़ादि व्यवहारमें लाये जाते हैं। यहाँ चीनी प्रचुर परिमाणसे होती है। आर्य्यावर्त्तमें अमृतसर ही व्यवसाय-वाणिज्यका केन्द्रस्थल है; यहाँके सौदागर लोग इन मूल्यवान् पशमीनोंका कितना ही अंश काबुल और सिन्धु देशमें बेचनेके लिये भेजते हैं *। काश्मीरके शिल्पिगण और वहाँकी उपत्यकाका कुङ्कुम, केसर प्रभृति तरह तरहके पण्य द्रव्य सब जगह ही प्रसिद्ध हैं; काश्मीरका शाल, देशविख्यात और उल्लेखयोग्य है †। अटक और पेशावरके समतल खेतमें गल्लार प्रभृति बिलकुल दिखाई नहीं

* सन् १८४४ ई० में पञ्जाब प्रदेशकी आमदनी-रफ्तनी प्रभृति और आबकारीका शुल्क सब मिलाकर १४०,००० या १५०,००० पाउण्ड अदा हुआ। यह शुल्कका परिमाण रणजित्सिंहके सब आयका अर्थात् ३,१५०,००० पाउण्डका तेरहवाँ अंश है।

† मिष्टर मूरक्रॉफ्टने (Travels, ii, P. 194—भ्रमण-वृत्तान्त द्वितीय खण्ड पृ० १९४) गणनाकर स्थिर किया है, कि काश्मीरजात शालका वार्षिक मूल्य ३,००,००० पाउण्ड है; केवल मात्र अपरिष्कृत वस्तुका मूल्य यदि ७५,००० पाउण्ड होता है, तो उसकी तुलनासे शिल्पजात द्रव्यके मूल्यका परिमाण कम जान पड़ता है। (Travels; ii, 165, etc.); अपरंच इन्होंने थोड़ोंमें प्रत्येककी बहुतेरियोंकी

देते। बाबर बहुत ही शिकारप्रिय थे, उनके आनेके समयसे ही इस प्रदेशमें हिंस्र जन्तुका प्रभाव लोप हुआ था। अब वह सब सुदीर्घ प्रान्तर-भूमि धान, यव, गेहूं प्रभृति बहुमूल्य शस्यक्षेत्रसे परिशोभित हैं। पर्व्वतमालासे भी बहुत तरहके औषध, वृक्ष और फल संग्रहीत होते हैं। इन सब बहुत ऊंचे पर्व्वतोंके पास सुदीर्घ देवदारुवन और तांबेकी खानि दिखाई देती है। *सेंधा नमक और मैले लोहेकी विस्तृत खानि इन विशाल पर्व्वतोंमें छिपी हुई है। सिन्धुनद और काश्मीरके मध्यवर्त्ती उपत्यकायें भी बहुत ही मनोरम और स्वास्थ्यकर हैं; इसलिये ही मनमें आता है, कि एशियाखण्डमें 'यह देश अतुलनीय है'; सामयिक आलोचना यूरोपियनोंके उपयोगी है। यहां वर्षाकालकी कठोरता आज भी जान नहीं पड़ती; बल्कि उसके बदले शीत-शीतोष्ण मण्डलका रमणीय वसन्त-वारि प्राण मन मोहित करता है।

सिख जातिके अधिकृत राज्यखण्डमें तरह तरहकी जातिके लोग बसते हैं। उनकी भाषा, वंश और धर्म्म, परस्पर विभिन्न थे। पुराने समयमें ब्राह्मण और क्षत्रिय,—यह दो जातियां ही प्रधान सभ्य जातिके नामसे अभिहित होती थीं। उनकी आवासभूमि,—यही आर्य्यावर्त्तका विस्तृत प्रान्तर,—दरियाव

---

* वजनमें तीन सौ पौण्ड (प्रति पाउण्ड आध सेर) प्रत्येक पाउण्डका मूल्य पांच शिलिंग है (प्रति शिलिंग इस समय बारह आनेका है)।

और अलकजन्धरके समयसे बाबर और नादिरशाहके समय तक,—समय समयपर 'पारसी' और 'सिदीक' प्रभृति असभ्य जाति द्वारा लूटकर ध्वंस हुआ है।" इन विभिन्न आक्रमणकारियोंका अनेक निदर्शन इस समय भी दिखाई देता है; किन्तु उनमें आर्य्यावर्त्तमें मुसलमान जातिका प्रादुर्भाव और उत्तर एशिया खण्डसे भारतभूमिमें जाट जातिका उपनिवेश-स्थापन—यह दोनों ही प्रधान उल्लेख योग्य है। यूनानियोंका "गीति" (Getae) और चीनाओंका "इउइचि" (Yuechi) प्रभृति पौराणिक कहानीके प्रसङ्गमें "जाट" या चन्द्र वंशसम्भूत "यदु"के वंश-पर्य्यायकी आलोचनाकर, चीनके ऋषिकोंसे और यूनानियोंके साथ उनकी स्वतः प्रमाणित सादृश्य विचारकी आवश्यकता नहीं है; अथवा रणजित् सिंह "कादफिस" वंशसम्भूत थे या नहीं,—उसकी आलोचना भी करना नहीं चाहते। खृष्टीय धर्मके प्रथम युगमें आर्य्यावर्त्तमें हिन्दूधर्म और बुद्धमतके प्राबल्यके कारण हिंस्र असभ्य आक्रमणकारिगण भी क्रमसे सुसभ्य हुए थे; प्रायः एक शताब्दिके भीतर "जाट" जातिने ब्राह्मणोंकासा आचार-व्यवहार और धर्माचरण आरम्भ किया था। सिन्धुनदके दक्षिण तीरस्थ "जाट" अधिवासियोंने इसलाम धर्म ग्रहण किया, और उत्तर खण्डकी जाट जाति बहुत दिनोंतक प्राचीन मूर्त्तिपूजा धर्मकी उपासक थी। सम्प्रति इस पूर्वोक्त सम्प्रदायने एक नया जीवन पाया है; इस समय वह ईश्वरका स्वरूपत्व और मानवका एकत्व और समत्व प्रचार कर रही है और बहुत दिनोंतक हिन्दू और मुसलमान

नरपतिके अधीन रह इस समय वह एक असीम राजशक्तिकी प्रतिष्ठा करनेमें समर्थ हुई है।* बौद्धधर्म लोपके साथ ही साथ मुसलमान राजत्वकी प्रतिष्ठाने,—समग्र भारतवर्षके इतिहासमें एक युगान्तर उपस्थित किया है, इससे जनसाधारणकी भाषा भी कुछ बदल गई है। मुहम्मदका नया धर्ममत फैलानेसे समग्र भारतीय समाज-बन्धन भी क्रमसे शिथिल

---

* अभिधानके अनुसार "जाट" (Jut) शब्दसे एक "जाति," "वंश" या "विशेष कोई एक "जाति" जान पड़ती है; किन्तु "जाट" (Jut) शब्दसे "रीति" "जाति" और "कुञ्चित केश-गुच्छ" समझा जाता है। तमाम पञ्जाब प्रदेशमें इसका अर्थ, 'भेड़के बाल' या केशराशि है। किन्तु देशके उत्तर अंशमें जाट (Jut) शब्दसे अब भी ऊंट, गो, भैंसे आदि पालने-वाले या "मेष-पालक" समझना पड़ेगा; इस अञ्चलकी कृषक-श्रेणी इस जातिके भीतर नहीं है। पञ्जाबमें अब भी जाट (Jut) कहनेसे साधारणतः ग्रामवासी असभ्य समझते हैं। अन्यान्य रोजगारी और कारीगरोंसे उनकी रीति-प्रकृति स्वतन्त्र है; उनकी संख्या भी बहुत ज्यादा है। प्रायः दो शताब्दि पहले "दबीस्थान" के रचयिताने यह बातें कही हैं। (Dabistan, ii, 252.—दबीस्थान, द्वितीय खण्ड, २५२पृ०)। किन्तु लाहोरकी जाट जाति (Jut) और यमुनाके पार्श्व-वर्ती जाट सम्प्रदायके धीरे धीरे समतापन्न होनेसे; इस समय बराबर इस शब्दसे वह कोई एक सम्प्रदाय ही जाना जाता है। जाट लोग एक ओर राजपूतोंके साथ और दूसरी ओर

होता जाता है। किन्तु भिन्न जातीय विजेतृवृन्दके नवप्रचारित धर्ममतकी अपेक्षा उनके असद्व्यवहारसे पराजित जाति बहुत ज्यादा ह्रास हुई। इस समय भी जाट और अन्यान्य जातियोंमें प्रजापीड़कगण "तुर्क" नामसे अभिहित होते हैं; "तुर्क" और "पीड़नकारी" एक ही अर्थसे प्रयुक्त होते हैं। यद्यपि राजपूत जातिमें केवलमात्र मुसलमानोंको अफगानोंके साथ मिल गये हैं; किन्तु यह छोटी छोटी जाट जातिकी शाखा-सम्प्रदाय पूर्व्व अञ्चलके "राजपूत" और पश्चिम अञ्चलके "अफगान" और "बलूची"के नामसे अभिहित हैं। अन्यान्य जातियोंकी वंशावली आलोचना करनेसे बेशुबहा प्रमाणित होता है, कि वह लोग भी "अफगान" या "राजपूत" या जाट जातिके अन्तर्भुक्त हैं। कितने ही इतिहास-लेखकोंने ऐसा ही लिखा है, कि यह जाट वंश राजपूतानेके छत्तीस विभिन्न स्वेच्छाचारी राजवंशोंमें एक प्रबल पराक्रान्त राजवंश है। (Tod's Rajasthan I, 106,—टाडका "राजस्थान" प्रथम खण्ड, १०६ पृ०); अधिकतर यह जाट जाति "यदुवंशसम्भूत" और "भाटिया" लोगोंके वंशधरके नामसे परिचय देती है। पटियालेके महाराज भी ऐसा ही परिचय प्रदान करते हैं। भारतवासी नाना सम्प्रदायके अनेक अधिवासियोंके सम्बन्धमें हमारा ज्ञान बहुत थोड़ा है; इसका प्रमाण यही है, कि टाड साहबने "वर्क" (या "विर्क"—Virks) नामक विख्यात जातिका "यादुवंश" वंशीय जाट जातिके वंशधरके नामसे परिचय दिया है (i, 100,—प्रथम खण्ड, १०० पृ०),

वश्यता स्वीकार करके ही छुटकारा नहीं पाया; वह अपने दासत्वका स्मृतिचिह्नस्वरूप तुर्क देशीय मुद्राका दूसरा नाम—दासत्वद्योतक "तुर्कीना" (अथवा तुर्क देशीय मुद्रा) शब्द अपनी जातीय भाषामें ग्रहण करनेपर बाध्य हुए थे।

उन्होंने और भी कहा है, कि "काकुर" और "कुकार" सम्प्रदायकी जाट और "कुकार-कोकुर" और "काकुर" नामक अफगान जाति भी उसी वंशसम्भूत है; किन्तु "गुकार" जाति इन तीन जातियोंके भीतर नहीं है। उमरकोटका राजपरिवार "प्रामर या "शुक्रि" वंशसम्भूत है (Rajasthan I, 92, 93,—राजस्थान प्रथम खण्ड, ६२, ६३ पृ०); किन्तु हुमायूंकी जीवनी लिखनेवालेने प्रमारके राजा और उनके अनुचरोंका "जाट" के नामसे परिचय दिया है। (Memoirs of Humayoon' P. 45)। भौगोलिक समितिके समाचार-पत्र-सम्पादकगण। (Editor of the Journal of the "Geographical Society,"XIV, 207, note) कहते हैं,—पुराने और आदिम संस्कृत शब्द 'जियेसुता" शब्दसे "जाट" शब्द बना है और इससे यह आदिम अधिवासी जान पड़ते हैं। इसतरह शब्द-साधनसे स्वभावतः "गौति" और "इण्डुवि" लोगोंके उपनिवेश स्थापनके सम्बन्धमें प्रमाणित विषयपर भी विश्वास स्थापन करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती; मध्य एशियामें "जेटिया" (Jettehs) जातिके साथ तैमूर-लङ्गके युद्धादि विषयकी जो घटनावली वर्णित हुई है,—वह भी प्रतीतिकर जान नहीं पड़ती।

जाट लोगोंकी कितनी ही प्रसिद्ध शाखायें पञ्जाब, सिन्धु,

लदाख और छोटे तिब्बत, नामक सिन्धु नदकी सबसे ऊंची उपत्यका भूमिखण्डमें "भोटी" वंश, ही प्रधान और आदिम अधिवासी है। यह प्रबल पराक्रान्त विभिन्न सम्प्रदायकी "तातार" जातिकी शाखा विशेष है। इतिहास-प्रसिद्ध इस सिन्धु नदके अधःप्रदेशमें या गिलगिट और चूलास नामक स्थानमें "दार्दुश" (Durdoos) और "डूङ्गर" (Dungbers) नामक भिन्न भिन्न जातिका अंशावशेष इस समय भी वर्त्तमान है। इसकारण और गिलगि... स्थानोंमें ही एक मिली हुई जाति दिखाई देती है; वह "पामीर" और "काशगर" प्रभृति वनैली असभ्य "तुर्कमान" सम्प्रदायके अन्तर्गत है। काश्मीरके अधिवासीलोग समय समयपर उत्तर, दक्षिण और पश्चिमसे आ भिन्न भिन्न जातियोंके साथ मिले हैं। किन्तु उनकी भाषा हिन्दुस्थानी है और वह लोग मुसलमान—धर्म्मावलम्बी हैं। "तातार" जातिके साथ रहनेके सम्बन्धके कारण आदिम "कुश" और "कच" जातिके आचार-व्यवहारमें कुछ बदलाव पैदा हुआ है। काश्मीरसे सिन्धु नदके पश्चिम ओर वाले पार्व्वत्य प्रदेशमें "काका" और "बुम्बा" जाति बसती है; उसका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। सिन्धुके निकटवर्त्ती स्थानोंमें "यूसुफजई" और अन्यान्य कितनी ही संख्यक अफगान जातिने उपनिवेश स्थापन किया है। इसके सिवा और भिन्न भिन्न

चीन, गुरारष्ट्र, पुर्या, सिन्धु, कुछियास और गोंकल प्रभृति नामसे अभिहित हैं।

उपत्यकाओंमें कितनी ही संख्यक "गूजार" बसती है। इस "गूजर" जातिकी ऐतिहासिक अवस्था इस समय भी ठीक हुई नहीं है; यह लोग अरब देशीय "सय्यद" या "अफगान" और "तुर्कमान" जातिके राजाओंकी प्रजा विशेष हैं। काश्मीरके दक्षिण वितस्ता नदीके पश्चिमसे सिन्धु किनारे अटक और कालाबागतक पार्ब्बत्यप्रदेशमें "गुकार" "गुजेर" "खातिर" "अवान" और "जञ्जुस" प्रभृति बहुतसी जातियां दिखाई देती हैं। इस सम्प्रदाय-समष्टिने समय समयपर हिन्दू जातिके साथ मिलकर उनकी भाषा, भाव और प्रकृति पाई है। इनमें "जञ्जुस"—प्रधानतः गुकार जाति, वहां विशेष क्षमताशाली है। पेशावर और उसके निकटवर्त्ती चारो ओरके पार्ब्बत्य प्रदेशमें विभिन्न सम्प्रदायकी अफगान जाति बसती है; इनमें उत्तर और पश्चिम प्रदेशके "यूसुफजई" और "महमन्द" मध्यप्रदेशके "खलिल" और अन्यान्य सम्प्रदाय और दक्षिण और पूर्ब्ब देशके "अफरीदी" "खट्टक" प्रभृति लिखने लायक हैं। कोहाटके दक्षिणवर्त्ती पर्ब्बतोंमें और टाक और बन्नू प्रदेशमें बेमेल असंख्य अफगान जाति बसती है; पशुपालक "शुजिरि" प्रभृति सम्प्रदाय उनमें प्रधान है। इस प्रदेशमें और एक श्रेणीकी कृषक जाति दिखाई देती है; यह लोग उस अफगान जातिके वंशधरके नामसे प्रसिद्ध हैं। वस्तुतः सिन्धु नदके दोनो किनारेवाले पर्ब्बतमालाकी एक एक उपत्यकामें एक एक स्वतन्त्र जाति बसती है; उनका कार्य्यकलाप, भाषा, रीति-नीति, आचार-व्यवहार—सभी आपसमें अलग है। साधारणतः दिखाई देता है, कि पहले कभी

हुई गिलजे आदिम "दाई" जाति एक ओर अफगान और दूसरी ओर तुर्कमीन द्वारा प्राय: ही उत्पीड़ित होती है।

कालाबागके दक्षिण सिन्धु नदके दोनो पार्श्वस्थ स्थानोंमें और मुलतानकी चारों ओरके अधिवासी, कितने ही बलूच और कितने ही जाट सम्प्रदायभुक्त हैं; इसपर यह लोग उदोरा और रामेन जातिके साथ मिल गये हैं। सुलेमान पर्व्वतश्रेणी-के निकटवर्त्ती स्थानोंमें अफगान जाति दिखाई देती है। सिन्धु देश और शतद्रु के मध्यवर्त्ती पतित क्षेत्रोंमें "जून" "भुट्टिम" "सियाल" "खुरल" और काथि प्रभृति कितनी ही संख्यक विभिन्न जातीय अधिवासिगण बसते हैं; पशुपालन और डकैती इनका प्रधान रोजगार है। यह जाति-समष्टि और शतद्रु और चन्द्रभागाके मध्यवर्त्ती काश्मीरके दक्षिणके स्थानों-में चिब और बहाओ जाति इस अञ्चलके आदिम अधि-वासी हैं। विजेता हिन्दू और मुसलमानोंकी वश्यता स्वीकार करनेपर भी इनकी आचरपद्धतिमें कुछ भी बदलाव हुआ नहीं है। चन्द्रवंशसम्भूत होनेके कारण गर्व्वान्वित भुट्टि जाति और भी दो एक जातिके पुराने समयके विजेतृवृन्द या औपनि-वेशिकगणमें गिनी जा सकती है; बादको इन्होंने बहुत क्षमता-शाली किसी न किसी जातिकी वश्यता स्वीकार की है। बल्कि इसमें कोई सन्देह नहीं है, कि एक समय भुट्टि या भाटी जातिने भारतवर्षके उत्तर-पश्चिम भागमें प्राधान्य स्थापन किया था। यह जाति इस समय चारों ओर फैल पड़ी है; किन्तु यशुल्मीरके बालुकामयी प्रान्तरोंमें इस समय भी इनका प्राधान्य अछूता है। शतद्रु के निकटवर्त्ती, पाकपट्टनकी चारों ओर "जट्ट"

और "योहिया" सम्प्रदायकी राजपूत जातिका* वासस्थान है। शतद्रुकी अधःप्रदेशोंमें "लुङ्गा" जातिके कितने ही अधिवासी दिख पड़ते हैं; यह लोग एक समय मुलतान और "उच" प्रदेशमें राजत्व करते थे।

काश्मीर और शतद्रुके मध्यवर्त्ती पार्व्वत्य प्रदेश राजपूतोंके अधिकृत हैं। मुसलमानोंके आक्रमणके समयसे प्राकृत भारतवासिगण एक ओर राजपूताने में और बुन्देलखण्डके पर्व्वतोंमें और दूसरी ओर हिमालयके गह्वरमें विताड़ित हुए हैं। जम्बूकी चारों ओरके स्थानोंमें और पूर्व्व ओर गङ्गा और यमुनातक फैले हुए समतल क्षेत्रके लोगोंकी संख्यामें अधिकांश ही एक प्रकारकी मिली हुई जाति है; यह लोग "डोग्रा"

* टाड कहते हैं,—यह "योहिया" वंश इस समय लोप हुआ है। (Rajasthan, I, 118—राजस्थान, प्रथम खण्ड, ११८ पृ०)। ब्लपुर और भावलपुरके मध्यवर्त्ती शतद्रुके दोनो किनारोंके स्थानोंमें ऐश्वर्य्यशाली कृषिजीवी जोहिया लोग इस समय भी बसते हैं; किन्तु अब उन्होंने मुसलमान धर्म्म ग्रहण किया है, टाडकी लिखी "उहिया" (I., P. 114.) जाति शतद्रुकी निचली जमीनोंकी अधिवासी है। यह लोग मुसलमान और कृषिजीवी हैं; यह लोग वहां "डेहे" या "डाहोर" और "डाहार" नामसे अभिहित होते हैं। यह लोग और अन्यान्य कितनी ही जातियोंके कितने ही अंशने राठोरवंशीय राजपूतोंकी और कितने ही अंशने "बलचि"योंकी वंशता स्वीकार की है।

ज्यादातर इस नगर और इस प्रान्तमें धर्मप्रचारक, वणिक, रोजगारी या कारीगर सम्प्रदाय बसता है;

जाति या वंश			ग्राम समष्टि।
पठान	...	...	४८
मुगल	..	..	५
ब्राह्मण	.	..	७८
क्षत्रिय		.	६
राधेन (या आराधेन)		..	४७
कुर्म्मी	...	...	१६
मालि	..	...	१२
रङ्ग	.	...	३३
डोगर (मुसलमान हैं, किन्तु क्षत्रियके नामसे परिचय देते हैं)		.	७८
कुलाल	...	...	५
गोसाई धर्म्मप्रचारकगण		...	१
वैरागी	..	...	२
अन्यान्य २४ श्रेणीके सम्प्रदाय, जो ४६ ग्रामोंमें बसते हैं			४६
		कुल	१०५०

इस समय भी भारतवर्षके विभिन्न सम्प्रदायके लोग अपने अपने वासस्थान, वंश और धर्म्मके अनुसार भिन्न भिन्न जातियोंमें विभक्त हुए रहते हैं, सब देशोंका इतिहास सहजभावसे हृदयङ्गम करनेके लिये ऐसा श्रेणीविभाग इस तरहसे प्रयोजनीय है। गङ्गाके तीरवर्त्ती स्थानोंकी राजस्व-वहीमें

इसतरह प्राशेप्रिन्सेप राजधानीकी सब विभागोंमें पवित्र आज्ञा
सूचीपत्रमें जितने ग्रंथोंका विषय लिखा है; इससे अन्तत:
प्रत्येक ग्रन्थकी प्रबल जातिका विवरण दिखाई देता है। वह
सूचीपत्र संशोधित और परिवर्द्धित होके अनुसन्धान और फिर
संशोधनके लिये मुद्रित हुआ था।

पञ्जाब और उसके निकटवर्त्ती स्थानोंमें सिखोंकी संख्या
कुल ५,००,००० निरूपित हुई है। (Compare Burnes, Travels, i, 289, and Elphinstone, History of India, i, 275, note) किन्तु गणनासे इस निरूपित संख्याका तीसरा अंश या आधा अंश कम जान पड़ता है। इस सम्बन्धमें कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता; सुतरां इस विषयमें मत प्रकाश करना भी उचित नहीं। तब भी, सिख-सैनिकोंकी संख्या कभी ७०,०००से कम देखी नहीं गई; समय समयपर उनकी संख्या ८१ई लाखसे भी ज्यादा कही गई है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि शतद्रु और यमुनाका मध्य-वर्त्ती सिख सम्प्रदाय स्वधर्म्मावलम्बी लोगोंकी पूर्व्वोक्त संख्याके आधे लोग संग्रह और एकत्रित कर सकते हैं। तब भी यह निश्चित है, कि कृषिजीवी सिख जातिका कोई कोई सम्प्रदाय आज भी अस्त्र ग्रहण नहीं करता और अन्यान्य परिवारका अन्तत: एक सिपाही पुरुष खेती-माहगुजारीके लिये युद्धमें नहीं जाते। इस कारण सब सिख-जातिके लोगोंकी संख्या,—स्त्री-पुरुष और पुत्र-कन्या सहित कुल १२ लाख ५० हजार या १५ लाख जान पड़ती है।

सब भारतवर्षके हिन्दू मुसलमानोंकी आनुपातिक संख्याके

नामसे अभिहित और राजपूत वंशकी नामसे गर्वित हैं। यहां और भी कितनी ही मिली हुई जातियां दिखाई देती हैं। उनमें "गान्धि" नामक जाति क्षत्रियकी नामसे और "कोलि" जाति आदिम अधिवासीके नामसे परिचित है। मध्यभारतकी असभ्य पार्व्वत्य जातिके साथ इनकी आचार-पद्धति, यहां-तक, कि भाषामें भी विशेष सादृश्य दिखाई देता है। बर-फीली जगहोंमें "भूटी" नामक एक मिली हुई जाति बसती है; काश्मीरके निकटवर्त्ती स्थानों और शहरोंमें, वहांकी उपत्यकामें दूसरे प्रकारकी मिली हुई जाति दिखाई नहीं देती।

वितस्ता (झेलम) से हांसी, हिसार और पानीप-ततक फैले हुए प्रान्तरोंके केन्द्रस्थलमें और खुशाब और पुराने दियालपुरके उत्तर ओर वाले समतल [illegible]में "जाट" अधिवासी ही प्रधान हैं। किन्तु लाहौर और अमृतसरकी चारों ओर, गुजरातसे शतद्रुकी उत्तर और दक्षिण ओर वाले भातिन्डा नगर और सुनामतक सिख-राज्य फैला है। पूर्व्वोक्त अंश "माझा" या मध्यदेशके नामसे और दूसरा मालवा नामसे अभिहित है। मध्यभारतके मालवा देशके साथ उर्व्वरता और सजीवताके कल्पित सादृश्यके कारण, यह "मालवा" नामसे प्रसिद्ध हैं। दक्षिण और पश्चिमकी "भुट्टो" और "डोगार" और पूर्व्व ओरके "रायेन" "रड़" और अन्यान्य जातिके कितने ही संख्यक अधिवासी आपसमें मिल गये हैं। "गूजर" और "भट्टी"के सिवा अन्यान्य राजपूत जातियां सब जगह ही अधिक परिमाणसे वर्त्तमान हैं। किसी किसी नगर या ग्राममें "पठान नामक दूसरी एक सम्प्रदाय दिखाई देती है। पठानोंमें "कुशुर"

गाम व स्थानके असंख्य अधिवासियोंया बहुत दिनोंतक असीम-क्षमताशाली थे और राहुआके राजपूतोंने वहां विशेष प्रसिद्धि पाई थी। इनमें मध्यप्रदेशस्थ सब कृषिजीवी अधिवासियोंको समान दश भागोंमें विभक्त करनेपर दिखाई देता है, कि जाटों-की संख्या ही उस भाग-समष्टिके चार भागसे भी अधिक है; गूजरोंकी संख्या एक भाग है, ब्राह्मण बेमेल राजपूतोंकी संख्या—इसी दश भागकी दो भाग मात्र है। इसके सिवा विभिन्न स्थानोंसे आये हुए मुसलमानोंकी संख्या एक भागसे भी कम है। बल्कि सब लोक-समष्टिके तृतीयांश अधिवासी मुसलमान धर्मावलम्बीके नामसे अनुमित हैं। *

* शतद्रु और यमुनाके मध्यवर्ती इधर उधर फैले हुए १०३० ग्राम-समष्टिमें सब ४१ विभिन्न श्रेणीके कृषिजीवी सम्प्रदाय दिखाई देते हैं। यह सब स्थान १८४४ ई०में अङ्गरेजोंके अधीन थे। विभिन्न कृषिजीवी सम्प्रदाय निम्नलिखित अनुपातके अनुसार विभिन्न ग्रामोंमें बसते हैं, जहां कोई एक सम्प्रदाय सब ग्राम्य सम्प्रदायके एक अंशरूपमें गृहीत होते हैं, वह भग्नांश भी सूचीयुक्त है।

जाति या वंश	ग्राम-समष्टि।
जाट	४४३
राजपूत	१६४
गूजर	१०६
सय्यद	१७
शेख	२५

* या सच्चे मध्यदेश, मगधाय या बुंदेला भैनाय, क्षत्रिय, जरी। आर वाणिज्य-व्यवसायी वैश्यगणका भी रहे वस्त्रशिल्पि-गण थे। हिन्दुस्थानके वस्त्रविद्याविशारदगण और हीन जातिके कितने ही संख्यक नीच व्यवसायियोंने अपनी स्थापना की है। इन सब विभिन्न सम्प्रदायोंमें कोई सम्प्रदाय ही विशेष प्रधानताशाली या एकत्र स्थलमें आवद्ध हुई नहीं है; इन लोगोंकी संख्या भी इतनी ज्यादा नहीं थी, कि पारिपार्श्विक सभ्य जातिपर प्रभुत्व

सम्बन्धमें साधारणतः अनेक दुमत दिखाई देता है। बादशाह-जहाँगीर कहते हैं, (Memoirs, P. 24,) हिन्दू और मुसलमानोंकी आनुपातिक संख्या यथाक्रम ५ और १ है। किन्तु गङ्गाकी उपत्यकाके अधिवासियोंकी वर्त्तमान आनुपातिक संख्याकी अपेक्षा यह बहुत थोड़े हैं। एलफिन्स्टनकी (History of India, ii, 208 and notes) मतसे सब देशके लोगोंकी संख्याका परस्पर आपेक्षिक अनुपात यथाक्रम ८ और १ मात्र है।

* पञ्जाब और गङ्गाके तीरवर्ती स्थानोंमें ब्राह्मणगण शिक्षित सम्प्रदायकी तरह पण्डित न होनेपर भी साधारणतः "मिश्र" 'मित्र" या "मिथरा" नामसे अभिहित हैं। ऐसी कहावत है और बहुदर्शी इतिहासज्ञ अनेक भण्डतवादी अनुमान करते हैं, कि पुराने समय मुसलमान आक्रमणकारिगण यह उपाधि पहले चला गये हैं। इससे सम्भवतः जान पड़ता है, कि एकेश्वरवादी प्रतिमाभञ्जकारियोंने ब्राह्मणोंको सूर्योपासकके नामसे निर्देश किया है।

कर सकते। किन्तु जाटोंकी अवनतिके उपरान्त क्षत्रियगण ही इस प्रदेशमें विशेष क्षमताशाली और अध्यवसायशीलके नामसे परिचित हुए थे। *

---

* पञ्जाबके क्षत्रियगण वंशमर्य्यादा और जातीय पवित्रता-को इस समय भी रक्षा करते आते हैं। यह बात प्रचलित है,—जो योद्धजाति परशुरामको पराभवकर उनके हाथों मुक्त हुई थी, यह लोग उनके ही वंशधर हैं। पञ्जाबके उत्तर भाग और दिल्ली और हरिद्वारके निकटवर्ती स्थानोंमें इनकी संख्या बहुत ज्यादा है। काशी और पटनेतक गङ्गाकिनारेके शहरोंमें क्षत्रिय जाति बसती दिखाई देती है। किन्तु बङ्गदेशमें मध्यभारतमें और दक्षिणमें उनकी संख्या बहुत थोड़ी है; इन स्थानोंमें सूर्य्य या चन्द्रवंशसम्भूत दो एक राजपरिवारके सिवा और कोई क्षत्रिय जाति दिखाई नहीं देती। पञ्जाबमें पुराना दीपालपुर क्षत्रियोंकी राजधानी थी। क्षत्रियगण प्रधा-नतः चार सम्प्रदायमें विभक्त हैं,—(१) चार जाति या चार वंश (२) बारह जाति या बारह वंश; और (३) बावन जाति या बावन वंश हैं। (क) सेठ, (ख) मारोटा, (ग) खन्ना, और (घ) कपूर प्रभृति चार सम्प्रदाय चार जातिके नामसे अभिहित हैं। इनमें और भी पहले दूसरे और बादमें तीसरे प्रत्येक तीन तीन विभिन्न सम्प्रदायमें विभक्त हैं। बारह जातिकी शाखा-ओंमें चोपड़ा, तलवार, टण्डन, सेघल, कक्कर, महरा प्रभृति प्रधान हैं। बावन जातियोंमें कुन्द्रारो, भाहन्दाओ, सेठी, सुरी, सानी, उप्पल, बुद्धसिंग, शोदि, बेदी तीहुन और भल्ली प्रभृति कितनी ही जाति विशेष लिखने योग्य हैं।

यहांभूथ इधरउधर घूमनेवाली अन्यान्य जातियोंमें "छङ्गरी" की संख्या ही बहुत ज्यादा है और यह सब जगह सुपरिचित

अरोरा जाति ऐसा दावा करती है, कि उसने क्षत्रियके औरससे वैश्यानी या शूद्राणीके गर्भसे जन्म लिया है। जब दिल्लीसे क्षत्रियोंने विताड़ित हो पहले टाट्टा और सिन्धु देशके अन्यान्य प्रदेशोंमें और अन्तमें मुलतानमें उपनिवेश स्थापन किया, उस समय यह लोग भी "उच" नामक स्थानमें अधिक परिमाणसे वास करते रहे। उस समय युद्धमें क्षत्रियोंके अरोराओंसे साहाय्यकी प्रार्थना करनेपर उन्होंने साहाय्य करना अस्वीकार किया। इसलिये ब्राह्मणगण क्षत्रियोंको प्ररोचनासे अरोराओंका सब धर्मकर्म बन्द करनेपर बाध्य हुए। इसतरह अरोरा लोग तीन सौ वर्षतक समाजच्युत रहे। इसके उपरान्त दीपालपुरके "सिद्धभोजा" और "सिद्धसियामा" लोगोंने इन्हें फिर हिन्दूसमाजभुक्त कर लिया। पञ्जाबी लोग ऐसा समझते हैं, कि शिकारपुरके हिन्दू कोठीवाले अरोरा-सम्प्रदायभुक्त हैं और बुखारा और खुरासानके हिन्दू रोजगारी भी इन्हीं अरोराके वंशधर हैं। अरोरा लोग प्रधानतः दो श्रेणियोंमें बंट गये हैं; (१) "उतरदि" या उत्तरांशके अधिवासी और (२) "दक्खिनी" या दक्षिण अंशके अधिवासी। इन दक्खिनीयोंमें और भी दुहानी नामक एक प्रधान शाखा दिखाई देती है।

भिन्न पञ्जाब और सिन्धुदेशीय सब हिन्दू रोजगारी मुसलमानों द्वारा "किरार" नामसे अभिहित होते हैं; उत्तर पञ्जाबमें किरार शब्द भीरु या नीच, और घृणित अर्थमें व्यवहृत होता

है। इनके सम्बन्धमें विशेष आलोचना करनी है। तुर्क देशीय "चिङ्गानी," रूस-जातीय "टाइगन," जर्मनीय "जिगुयेनार," इटलीके "जिङ्गारस" स्पेन देशीय "गिटानो" और अङ्गरेजोंकी "जिप्सी" प्रभृति जाति और "बाङ्गारगण" एक ही जाति जान पड़ते हैं। दिल्लीकी चारों ओर बसनेवाले अधिवासी "कञ्जर" नामसे अभिहित हैं। कुलटा, नटी बालिकायें पञ्जाब प्रदेशमें "कञ्जर" नामसे परिचित हैं।

है; मुसलमानमें यह शब्द हिन्दू और रोजगारी प्रभृति शब्दोंकी तरह घृणा-व्यञ्जक है। मध्यभारतमें कैरार नामकी एक जाति बसती है; यद्यपि प्रायः एक शताब्दिके उपरान्त इन कैरारोंकी एक भिन्न जाति गठित हुई थी, तथापि उस समय मध्यभारतमें कैरार शब्द चलती बातोंमें पार्व्वत्य या बनैला समझा जाता। अध्यापक विलसन कहते हैं, कि प्राचीन आदिम "किरादि" और "कैरार" एक ही जाति है। वस्तुतः हिन्दुओंके पांच प्रस्थोंमें या प्रदेशोंमें कैरार एक है। यह पांचो प्रस्थ यथाक्रम,—"चीनप्रस्थ, यवनप्रस्थ, इन्द्रप्रस्थ, शाल्वप्रस्थ और किरातप्रस्थ नामसे अभिहित हैं। भारतवासी इस किरात प्रस्थको उज्जयनी और उड़ीसेके अन्तर्वर्त्ती प्रदेशोंके नामसे समझते हैं। (Compare Wilson, "Vishnoo Pooran, P. 175, note for the Keratas of that book) नारदुहार मारवाड़मलायुथथी गङ्गा "हाजगगर" नामसे और अहिन्दू-मुसलमान "किरियामण्डी" नामसे परिचित हैं। इस शब्दसे इनका जैयदशा अवश्य समझा जाता है।

इन सब विभिन्न जातियोंके वंश और धर्म अलग हैं; नहीं तो अलग दो जातियां साधारणतः एक जाति समझी जातीं। लद्दाखके अधिवासी और अधीनस्थ राजवंश "लामा" प्रचारित बौद्धधर्मावलम्बी हैं; अभीतक बौद्धधर्म मध्यभारतकी सब जगह ही अधिक परिमाणसे प्रचारित है। किन्तु इसकारदोकी तिब्बती जाति; गिलगिटकी "दार्द" और सिन्धके पार्वत्य प्रदेशमें "काफ़िर" और "बाल्ती" लोग "शीया" सम्प्रदायके मुसलमान हैं। काश्मीर किश्तवार, भिम्बर, पाखली और सिन्धुनद और सतपुरा पर्वत श्रेणीके पश्चिम दक्षिण पर्वतोंमें "सुन्नी" सम्प्रदायके मुसलमान बसते हैं। पेशावर सिन्धुनदकी दक्षिणवर्ती निम्नभूमि, मुलतान और पिण्डदादनखां, गुजरात और दीपालपुरतक उत्तर देशीय अधिवासी मुसलमानधर्मावलम्बी हैं। किश्तवारके और भिम्बरके पूर्व हिमालयके अधिवासी ब्राह्मण्यधर्मानुयायी हिन्दू जाति हैं। उत्तर और बौद्धमतावलम्बी कितनी ही औपनिवेशिक और उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें कितनी ही मुसलमान जाति दिखाई देती हैं। माझा और मालवेके अधिकांश "जाट" अधिवासी सिखधर्मावलम्बी हैं; किन्तु वितस्ता और यमुनाके मध्यवर्ती सब लोगोंकी संख्याकी आनुमानिक तृतीयांशने नानक और गोविन्द-प्रचारित नयाधर्म ग्रहण नहीं किया। बाकी दो तृतीयांशमें कितने ही मुसलमान और कितने ही ब्राह्मण्य धर्मानुयायी हैं।

* "वे" शहरके सिवा और प्रत्येक शहरमें, पेशावर और काश्मीरके अन्तर्गत हवलीमीनोंके अधिकृत जिलेके ग्रामोंमें

और माझा और मालवेके अन्तर्गत सिखआबादीवाले जिलोंके ग्रामोंमें प्रचुर परिमाणसे हिन्दू रोजगारी और हिन्दू दुकानदार दिखाई देते हैं। उत्तर ओरकी शहरोंमें क्षत्रिय जातिने और मुलतानकी कितनी ही अरोड़ा जातिने प्राधान्य स्थापन किया है। काश्मीरी ब्राह्मणगण, महाराष्ट्रीय पण्डितोंकी और बङ्गाली बाबुओंकी विद्या और बुद्धिमत्ताकी विशेष प्रशंसा करते हैं। उनमें कितने ही सरकारी कर्मचारी हैं; किन्तु क्षत्रिय और अरोड़ा लोग सामान्य प्रहरी और करदाता कृषिजीवी हैं। केवलमात्र मालवा देशमें अर्थात् भतिन्डा और सुनामकी चारों ओर बेमेल सिख जाति दिखाई देती है। लोग ऐसा कहते हैं, कि यहांके लोगोंके पुरोहित, सैनिक, शिल्पी, दुकानदार, कृषक, सभी सिख सम्प्रदाय-भुक्त हैं।

पञ्जाबमें और भारतकी सब जगहोंमें कितनी ही नीच जातियां बसती हैं; ब्राह्मण लोग इन्हें धर्म्मोपदेश प्रदान नहीं करते, या मुसलमान लोग कभी उन्हें दूसरा धर्म्म ग्रहण करानेपर उद्योगी नहीं होते। वह लोग ग्राम्य या वनदेवता या वंशकी आदि पुरुषोंकी उपासना करते हैं; या किसी प्रस्तरमूर्त्तिको मनुष्य जातिके सृष्टिकर्त्ताका प्रतिरूप समझ उस प्रस्तरमूर्त्तिकी ही पूजा करते हैं। इस समय उनके कितने ही सम्प्रदाय अब भी हिन्दू-संस्कारकोंके उपदेशोंसे अवगत हो अपनेको अन्यान्य सिख-सम्प्रदायका एक अपकृष्ट सम्प्रदाय समझते हैं। हिमालयके सब दूरवर्त्ती प्रदेशोंमें राजा, लामा या ब्राह्मण, किसीने बसती स्थापन नहीं की,—उन सब

सुदूर उपत्यकाके अधिवासियोंके कोई शिक्षित धर्मोपदेशक नहीं थे; या वह लोग किसी विशेष धर्मपर विश्वास भी नहीं करते थे। वह प्रत्येक ऊंचे गिरिशृङ्गकी अधिष्ठात्री देव-देवीकी उपासना करते और तुषाराच्छन्न प्रति पर्व्वतचूड़ापर अधिष्ठात्री उपास्य देव-देवीका मन्दिर बनाते थे। ईश्वरके अनुगत और आज्ञावाही पुरुष समय समयपर जिन प्रहेलिकामय बातोंसे ईश्वरकी आज्ञा प्रकट करनेपर आदिष्ट होते,—वह लोग उसपर पूरा विश्वास करते थे। उनका ऐसा ही विश्वास है, कि पर्व्वादि-उपलक्ष्यमें समारोह-यात्राके समय "दैत्य" या "टिटान"की प्रतिमूर्त्ति वहनके समय दाहने और बांयें कन्धेपर प्रतिमाका आपेक्षिक गुरुत्व,—सौभाग्य-दुर्भाग्य और सुख-दुःखका परिचायक है। *

---

* पञ्जाबमें हिमालयके नीचे "गुगा" या "गोगाके" अनेक मन्दिर दिखाई देते हैं। नीच जातिके दरिद्र पुरुष ही पुराने वीर-पुरुषोंके स्मृति-चिह्नस्वरूप इन मन्दिरोंका विशेष सम्मान करते हैं। उन वीरपुरुषका जन्मवृत्तान्त और स्वाभाविक आकृति तरह तरहसे कही गई हैं। एक कहानीमें लिखा है,—"वह वीर-पुरुष गजनीके अधिपति थे; अर्जुन और सुरजान नामक दो भाइयोंके साथ उनका घोरतर युद्ध हुआ और उसी युद्धमें वह मारे गये। किन्तु कैसा आश्चर्य है। एक पर्व्वत विभक्त हुआ और गुगा फिर युद्धके लिये सज्जित हो पर्व्वतसे घोड़ेकी पीठपर बाहर हुए।" और एक कहानी कही गई है,—"गुगा राजवाहके मध-

देवप्राप्त पदमर्य्यादा और समसामयिक धी-शक्तिका साफल्य पानेकी अपेक्षा जाति और धर्मका विशेषत्व,—सब जगहोंके लिये अधिक परिमाणसे प्रयोजनीय है। किन्तु उत्पत्ति वंशमर्य्यादा, आचार-पद्धति और धर्मसंस्कार प्रभृतिके प्रभावका विषय विशेषरूपसे आलोचना करना निष्प्रयोजन है। बुद्ध, ब्रह्मा और मुहम्मद प्रचारित भिन्न भिन्न धर्ममत एशियाकी सब जगहोंमें ही विस्तृत भावसे प्रचलित था,—इन सब विभिन्न धर्मोंके विश्वासपर सहस्र सहस्र लोगोंसे प्रात्यहिक आचार-व्यवहारका विशेष परिवर्तन साधित हुआ था। किन्तु अधिकांश स्थलोंमें इन सब धर्ममतकी उपासकगण लोगोंको उन्मत्त करनेमें समर्थ नहीं हुए। उनका धर्म इस समय जीव-नीशक्तिहीन है। इस समय इन धर्ममतोंपर सामाजिक प्रथासे सिवा अपरिवर्तनीय धर्मरीतिसे नामसे कोई विश्वास नहीं करता। उनका ऐसा ही विश्वास है, कि यह धर्ममत बहुत शता-ब्दियोंकी अभ्यस्त रीतियों प्रति स्वाभाविक और बद्धमूल सम्मान दिखानेकी सिवा और कुछ नहीं है। उस समय तिब्बतियोंमें और हिन्दू जातिमें उनका चिरन्तन पौराणिक धर्म ही प्रचलित था। असभ्य तिब्बतीयगण निःसंशय चित्तसे उस समय भी

इस प्रदेशकी डांडे-डुरेरा नामक स्थानके अधिपति थे।" इन वीर पुरुषके सम्बन्धमें टाडने जो लिखा है, उससे इस वृत्तान्तके अनेक विषयमें ऐक्य दिखाई देता है। (Rajasth in, ii, 447) टाड कहते हैं, यह वीर मेहुदमेनिकोंके साथ युद्धमें मारे गये।

इस भ्रमविषयपर विश्वास करते थे, कि जगदीश्वरने मनुष्य-शरीर धारणकर पृथिवीमें औतार लिया और भक्तगणके प्रार्थित विषय पूर्ण करते हैं। इधर हिन्दुओंने ऐसे भ्रमजनक विषय-पर विश्वास स्थापन किया था कि ईश्वर मट्टी या पत्थरकी मूर्तिमें आंशिक रूपसे रहनेमें प्रसन्न हैं। सुतरां तिब्बती और हिन्दू दोनो ही जातियां विदेशियोंके अस्वाभाविक नये धर्म-मतके प्रचारमें बाधा पहुंचाने लगीं। किन्तु जिस शक्तिबलसे ग्रीष्ममण्डलसे शीतमण्डलतक भविष्यद्वक्ता शाक्यके मन्दिर निर्म्मित हुए थे; जिस शक्तिसे ब्राह्मणगण भारतीय अन्यान्य जातियोंमें श्रेष्ठ और साहित्य और दर्शनशास्त्रमें अशेष-पारदर्शी हुए थे, जिस शक्तिबलसे उन्होंने विजयश्री पाई थी;—ब्राह्मणों और बौद्धोंमें वह पुरानी सरल और सतेज देवशक्ति अब नहीं है। अपने अपने अमरत्व पानेकी आशासे बौद्ध-मतावलम्बी और वेद-धर्म्मानुरागी दोनो ही परम सुखी थे; सुतरां जन-साधारणके इस धर्म-ग्रहणके सम्बन्धमें वह प्रत्येक ही पूरे उदासीन थे। वह लोग जैसे अपने अपने धर्म्म विषयमें दूसरेकी अनधिकार-चर्चा सहनेमें अनिच्छुक थे, वैसे ही दूसरेके या विरुद्ध धर्म्मावलम्बियोंके भविष्यतकी सम्बन्धमें आलोचना करनेमें भी बिलकुल ही निस्पृह थे। यहांतक, कि जो मुसल्मान किसी प्रत्यक्ष ईश्वरमूर्त्तिकी कल्पनाकर देव देवीकी उपासना करते नहीं थे, वह भी समझते,—मरा आदमी, ऐश्वरिक शक्तिका आधार है और उसका कब्रस्थान तीर्थस्थान स्वरूप है। सुतरां जिस शक्तिबलसे असभ्य अर्द्ध जाति और कट्टरहिन्दू स्वधर्म्मत्यागी "तुर्कमान"

सम्प्रदाय पृथिवीके भूगलभाई-भागके दूसरे पार राजत्व स्थापन करनेमें समर्थ हुए थे,—उस शक्तिको समझानेके लिये एक साधारण इशारा ठीक करना बहुत ही कठिन है; उस विषयमें वृथा पता लगानेकी भी आवश्यकता नहीं है। असलमें मुसलमान-प्रधान स्थानोंमें इस समय भी ऐसे स्वधर्मानुरागी मुसलमान और अनेक पहाड़ी जातियां और पशुपाल सम्प्रदाय दिखाई देते हैं, कि वह धर्मके लिये युद्ध करनेपर तय्यार होते और धर्म-युद्धमें धीर भावसे प्राणविसर्जन करनेमें सङ्कुचित नहीं होते। यह बात कौन स्वीकार नहीं करेगा, कि तुर्की, पारसी और पठान जातियां कर्त्तव्यानुरोधसे मुसलमान-धर्मकी रक्षाके लिये मुहम्मदके नामसे धर्मयुद्धमें जितना अलद एकतासूत्रमें आवद्ध होती हैं,—रूस, मुइडन, स्कैंडिनेवियाई, कोई उतना शीघ्र धर्मयुद्धमें एक साधारण "क्रास" या एकतासूत्रमें आवद्ध नहीं होती। मुक्तिका उपाय हाथमें करनेके कारण मुसलमान लोग अभिमान करते हैं। वह लोग जिस असभ्य जातिके नामसे घृणा करते हैं, उस घृणित और नीच जातिके पुरुषोंसे वह इस समय भी धर्मोपदेश लेनेके लिये आगे नहीं हटते। वह मुसलमान-धर्मका प्रचारकर सच्चे मुसलमानोंकी संख्या बढ़ाते हुए सुयश अर्ज्जन करनेके अत्यन्त अभिलाषी हैं; वह हिन्दू और बौद्धोंकी तरह निश्चेष्ट रहना अच्छा नहीं समझते। बौद्ध, ब्राह्मण और मुहम्मदीय धर्म्मावलम्बी प्रत्येकमें ही एक एक एक धर्मका प्रचारक-सम्प्रदाय है; प्रत्येक ही अपनी प्रमाणित धर्मसंहिता या देवनियमोंपर विश्वास करते हैं। इसतरह अपने अपने धर्ममें विशेष अनु-

रागी हों, वह अपनी अपनी विचारशक्ति और युक्तिकी आशा सम्पूर्ण निर्भर कर सकते हैं। इसलिये ही नये सब धर्मप्रचारकगण इन्हें खृष्टीय धर्ममें दीक्षित करना बहुत दुरूह समझते हैं और उनका सोचा हुआ उपाय भी कार्यकारी नहीं होता। अपने धर्मके अनुरागी इसलाम धर्माध्यक्ष विज्ञानका और समालोचनाका असार युक्तिजाल फैलाकर ही निरस्त रहते हैं; वह लोगोंकी अन्तरात्माको उत्तेजित करनेमें या कल्पना-शक्तिका प्रकाश करनेका प्रयास नहीं करते, या सुन-नेवालोंके आशातीत किसी तत्त्वका निर्णय करनेमें भी समर्थ नहीं होते। इसलामधर्मप्रचारक उपवासी हो मरुभूमिमें जाने या धर्मोपासनाके लिये निभृत पर्वत-कन्दरमें रहनेमें असमर्थ हैं। वह साधारणके बहु-जन्मपोषित मानसिक आशाके पूरणके विषयमें होनहार कहनेमें अपारग हैं। किसी नये धर्मके प्रचारके समय अस्त्रके साहाय्यसे धर्मप्रचारकी सिद्धिकी विशेष सम्भावना और इस विषयमें ईश्वरका प्रत्यक्ष अनुग्रह है,—आदि सन्देहमूलक विषयका प्रचार करनेमें असमर्थ हैं। धर्मविषयमें पवित्रताका किसी तरहके कठोर विधानसे लोगोंकी मानसिक धारणा बद्धमूल नहीं होती। कारण, पण्डित और मुल्ला लोग—तर्कशास्त्र, नीतितत्त्व, दर्शन, एवं ईश्वरवाणी प्रभृति विषयोंमें भी आपसमें विरोध है। धर्मानुरागी खृष्टीयधर्मप्रचारक इसलामोंमें जो चाहें, तो ईश्वरोपासक, इन्द्रियसुखासक्त, वैराग्ययुक्त विभिन्न सम्प्रदाय गठन कर सकते हैं; चाहें तो वह पितृमातृहीन पौत्तलिक धर्मावलम्बी बालक-बालिकाओंको शिक्षादान और प्रतिपालनके सम्बन्धमें

तरह तरहके प्रशंसनीय कार्यमें दृढ़प्रतिज्ञ हो सकते हैं; चाहे तो उनको प्ररोचनासे कितने ही अज्ञानी और दरिद्र पुरुष, यहांतक, कि कितने ही ज्ञानी और तत्त्व समझनेवाले पुरुष भी दूसरा धर्म्म ग्रहण कर सकते हैं; किन्तु भारतीय शिक्षित जाति और मुसलमानोंको क्रस्तान धर्म्ममें दीक्षित करना वह अब भी आशासे बाहरकी बात समझते हैं। *

पुराने धर्म्मानुरागी पुरुष अपने अपने सरल धर्म-

---

* शास्त्रीय युक्तितर्क द्वारा या प्रतिभासम्पन्न शिक्षित लोगों द्वारा किसी विषयमें असारत्व प्रमाणित होनेपर, लोग उस विषयका असारत्व सहज ही समझ सकते हैं। युक्ति-तर्क द्वारा शिक्षित सम्प्रदायको कोई बात समझाना निष्फल है। डाक्टर 'ली' द्वारा अनुदित "मार्टिन" का "परशियन कण्ट्रोवर्सी" भी उसका सच्चा दृष्टान्त है। इलाहाबादकी खृष्टान मिशनरियों और लखनऊके मुसलमान मुल्लाओंके आपसमें वादानुवादसे भी इस सम्बन्धमें कितनी ही बातें प्रमाणित हुई हैं। राममोहनरायकी "आस्तिकता और वेद" विषयक ग्रन्थमें और कलकत्तेकी "तत्त्व-बोधिनीसभा" की चिट्ठी-पत्रोंसे इस विषयके अनेक दृष्टान्त दिखाई देते हैं। "मूरक्रोफटका 'भ्रमणवृत्तान्त" ग्रन्थके जिस अंशमें कितने ही उदासी संन्यासीका वर्णन है, मूरक्रोफटने उनको तरह एक ईश्वरके माननेका उपदेश दिया है, अपने अपने सन्तोषके लिये हिन्दू लोग उस अंशोको पढ़कर देखें। (Moorcroft "Travels," i, 118)

मतका अनुसरण करते हैं; इससे ही वह परितृप्त हैं; दूसरे धर्म्मके सम्बन्धमें वह पूरे उदासीन हैं। किन्तु सिख लोग और एक नये धर्म्मके दीक्षित हैं;—इस नये धर्म्ममें ब्रह्मा और मुहम्मद प्रचारित दोनो तरहके ऐश्वरिक मत मौजूद हैं। इस समय वह इस नये धर्म्मके नये भावमें विभोर हैं;—इस धर्म्मके विश्वासके प्रभावसे वह एक अभिनव उत्साहसे उत्साहित हैं। अबतक उन्होंने ऐसी ही धर्म्म-शिक्षा ग्रहण की है, कि जगदीश्वर उनके साथी हैं, उनके सब कामोंमें वह साहाय्यकारी और बहुत जल्द उनके शत्रुको विध्वस्तकर वह अपना माहात्म्य प्रचार करेंगे। सभ्य अङ्ग-रेज जातिको सभ्यता और शासनप्रणालीका श्रेष्ठत्व इस ही कारणोंसे ही सिखोंके इस अभिनव धर्म्मनीतिका मनयोगके साथ पीक्षा करना उचित है। गुरुगोविन्दके शिष्यगण जब अपनी जातिकी भविष्यत भाग्यफलकी आलोचना करते हैं, तो उत्साहसे उनकी आँखे लाल होती हैं,—उत्तेजनासे मांस-पेशी कांपने लगती है। जिन्होंने गुरु गोविन्दके किसी शिष्यकी ऐसी वक्तृता सुनी है;—वही समझ सकेंगे, कि शक्तिबलसे असभ्य अरब जाति रोम और फारिस देशीय धर्म्मधारी असंख्य सैन्यके विरुद्ध अस्त्रधारण करनेके लिये साहसी हुए थे;—वही समझ सकेंगे, कि शक्तिबलसे अङ्गरेजोंके साहसी धर्म्मा-नुरत पूर्व्वपुरुषगणने एशियाकी प्रान्तसीमामें धर्म्म-युद्धके लिये यात्रा की थी। सिख जाति अलग अलग बहुत सम्प्रदायोंमें विभक्त नहीं है। वह लोग धर्म्मानुरागी और रणनिपुण हैं; उनके सैन्यकी संख्या कम होनेपर भी उनकी एकता, धर्म्म-

गुराम और इमानपुस्तकके अनुसार ही उनका सैन्यबल स्थिर करना कर्तव्य है। "खालसा" या "साधारण तन्त्र"की रक्षाके लिये वह बहुत कष्ट सहते,—यहांतक, कि जीवनविसर्जन करनेमें भी वह कृतसंकल्प थे। वह युद्धमें हारकर भी निरुत्साह होते नहीं थे; बल्कि नानक और गोविन्द प्रवर्तित दो तरहके धर्ममतका प्रचारकर बड़े उत्साहसे भारतीय अन्यान्य जातियों,—अरब, फारिस, तुर्क, प्रभृति विभिन्न सम्प्रदायको,—इस नये धर्ममें दीक्षित करनेके लिये यत्नवान् होते थे।

धर्मके विशेषत्वकी अपेक्षा जातिगत विशेषत्व ही चिरस्थायी और बहुत मजबूत संस्कार जान पड़ता है। किसी सम्प्रदायका इतिहास कहनेपर, उसकी उत्पत्ति और गठन, उसका वंश और धर्म प्रभृति एक तरहसे लिखना चाहिये। भारतवर्षके उत्तर और पश्चिम खण्डमें "जाट" या "ज्याठ" जाति मिहनती और उन्नतिशील कृषक सम्प्रदायके नामसे परिचित थी; परन्तु वह सैनिक-सम्प्रदायकी तरह युद्धके समय युद्ध करती और युद्धके उपरान्त कृषिकार्य्य करनेमें स्वभावसे अभ्यस्त थी। वह भारतवर्षकी कृषककर्म्मियोंमें सबसे श्रेष्ठ थी। यमुनाकिनारेके स्थानोंमें उनका प्राधान्य सहज ही जाना जाता है; भरतपुर उनकी क्षमताकी गवाही देता है। शतद्रुके किनारेके प्रदेशोंमें धर्म-संस्कार और राजनीतिक उन्नतिके फलसे, एक नई शक्तिकी सहायतासे वह नये बलसे बलवान थे; उनकी कार्य्यशीलता और शीघ्रता बहुत दिनोंसे प्रकाश हुई थी; इस समय वह लोग स्वार्थसिद्धिके लिये दूने साहससे सोचते हैं। *

* यह बात हमें उत्तर-पश्चिम प्रदेशके छोटे लाट मिष्टर

यद्यपि "राइनी" "भाती" और अन्यान्य कई एक सम्प्रदायके लोग जाटोंकी तरह साहसी और दृढ़प्रतिज्ञ नहीं हैं, तथापि परिमिताचार और मिहनत प्रभृति कई एक बातोंमें, वह जाट जातिकी अपेक्षा किसी अंशमें बुरे नहीं हैं। राजपूत जाति साधारणतः साहसीके नामसे सब जगह ही विख्यात है। बहु ही सम्प्रदायके राजपूतगण बहुत परिमाणसे एकत्र वास करते हैं। हिन्दू या मुसलमान,—दोनो, ही धर्मावलम्बी "गूजर" जाति कृषिकार्य्यकी अपेक्षा पशुपालन-कार्य्यको ही श्रेष्ठ समझते और गूजर लोग सब जगह ही पशुपालक सम्प्रदायभुक्त हैं। बलूची लोग बहुत दिनके अधिकृत स्थानोंमें भी यत्नपूर्व्वक-खेती नहीं करते। पहाड़ी लोग स्वभावतः ही कलह-प्रिय और दस्यु स्वभावापन्न हैं। वह लोग ऊंट पालकर प्रधानतः जीवन बिताते और ऊंटदलके परिचारक रूपमें भारतवर्षके सब उत्तर-खण्डमें घूमते हुए जीविकानिर्व्वाह करते हैं। अफगान जातिने भी इस समय कृषिकार्य्यमें विशेष पारदर्शिता

डामसनसे मालूम हुई है, कि ताल्लुकदार (जागीरदार) या पट्टेके खरीदार मालगुजारी अदा करनेमें असमर्थ होनेपर, मालिकी हक बेचनेके लिये जो अङ्गरेजी प्रथा प्रचलित है, उसी प्रथाके अनुसार उत्तर भारतकी जाट-जातिने क्रमशः अधिकांश जमीन दखल कर ली है। साधारणतः सुनाई देता है, कि कोई जाट ५०) रुपये जमा कर सकनेपर, उसे विवाहादि तथा आमोद-प्रमोदमें खर्च न कर उन्हीं रुपयों द्वारा एक कूप खुदाता या एक जोड़ा बैल खरीदता है।

पाई है। जबसे वह भारतवर्षमें आ निर्व्विघ्न शान्ति स्थापनकार रखनेमें समर्थ हुए हैं, या जिस समयसे उन्होंने अपने देशमें निरापद रखना सीखा है, तबसे वह कृषिकार्य्यमें विशेष उन्नतिशील हैं। लेकिन वह नछूचियोंकी अपेक्षा भी ज्यादा कलहप्रिय हैं; इसलिये ही सब जगह वतनभोगी अफगान-फौजें दिखाई देती हैं। वस्तुतः यह दोनो जातियां अपने अपने देशमें डाकूदलसे कितने ही अंशमें श्रेष्ठ और उन्नत हैं। विधर्म्मियोंके प्रति उनका अत्याचार प्रधानतः धर्म्मके नामसे ही समर्थित होता है; धर्म्मके नामसे ही वह दूसरेके विरुद्ध शत्रुताचरण या शत्रुके विरुद्ध अस्त्रग्रहण करते हैं और सभी धर्म्मावलम्बी एकत्रित हो आपसमें सहायता देनेके लिये समर्थ होते हैं। नगर और शहरके "क्षत्रिय" और "अरोड़ा" लोग वानियोंकी तरह अध्यवसायशील और रोजगारियोंकी तरह मितचारी हैं; वही देशके प्रधान राजस्वसचिव और धनाध्यक्ष हैं। क्षत्रिय लोग एक समय राजपदपर प्रतिष्ठित थे; अब भी उनके हृदयमें समय समयपर वीरोचित पुरानी याद जाग उठती और वह दक्षताके साथ राज्य-शासन और सैन्यपरिचालन करते हैं। * बलिष्ठ काश्मीरी लोग प्रचुर परिमाणसे शिल्पजात द्रव्य तय्यार करते हैं। कार्य्यदक्षता और

---

* रणजित्‌सिंहके 'सेनापतियोंमें हरिसिंह नामक एक सिख ही श्रेष्ठ थे; यह सिख नौरपुरुष जातिके क्षत्रिय थे। रणजित्‌सिंहके अधीनस्थ अन्यान्य शासनकर्त्ताओंमें सुहकमचन्द और सावनमलने एक ही सिख वंशमें जन्म लिया था। "अनु-

शिल्पनैपुण्यके लिये एक ओर वह जैसे विख्यात हैं, दूसरी ओर वैसे ही वह दरिद्र, दस्यु और चरित्रहीनके नामसे

वालिया" सम्प्रदायके सिख शासनकर्त्ताके अनुचर "खुना" सम्प्रदायके क्षत्रिय वंशोद्भव बुलूमलने बहुत विद्यार्ज्जन किया था और शिक्षित सम्प्रदायमें उनका विशेष आदर था। जलन्धर दोआब और लाहोरके ब्राह्मण लोग बुलूमलको इस अद्भुत शिक्षाके लिये बहुत कुछ उनसे हिंसा करते थे। जो चन्दूमल उस समय हैदराबादके निजामका राजकर्म्म करते आते थे, वह चन्दूमल भी आर्य्यजातिके क्षत्रिय-वंशसम्भूत थे और उन्होंने निजाम राज्यके वेतनभोगी सिख सैन्योंको अरब और अफगानोंके विरुद्ध अस्त्रधारण करनेमें उत्साहित और उत्तेजित किया था। इस समय सैनिक और राजपुरुषोंसे महाजन और दुकानदारकी अवस्थामें क्षत्रियोंका अधःपतन हुआ है। इतिहासमें यहूदियोंकी अवनतिके सम्बन्धमें जैसा कहा गया है, उनके साथ क्षत्रिय जातिकी इस अवनतिका बहुत सादृश्य दिखाई देता है। मिहनती और कार्य्यकुशल पुरुष अपना अपना रोजगार आप ही खोज लेते हैं। विजेता रोमनकी अधीनता स्वीकारकर और वर्त्तमान समय तुर्क नरपतियोंके अधीन रह यूनानी लोगोंकी जैसी अवस्था बदल गई,—उसकी आलोचना कर देखनेसे भी इस सम्बन्धमें अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। हम-लोग और भी जान सकते हैं, कि मध्ययुगके स्पेनियार्डको अन्यान्य प्रजाओंमें पराजित "मूर" लोग ही ज्यादा मिहनती थे। आजकल अङ्गरेजोंकी अधिकृत भारतवर्षकी मुगलजाति धीरे धीरे

परिचित हैं। काश्मीरके दक्षिण और पूर्ववर्त्ती पहाड़ी जातियोंमें जाति-धर्मगत कोई बहुमूल प्रकृत विशेषत्व दिखाई नहीं देता। तब भी, जरासा प्रभेद दिखाई देता है, कि जाति गौरव और साहसिकताके लिये कई एक बेमेल राजपूत जातियां अन्यान्य जगहोंमें आदरणीय हैं, इस समय भी कहीं कहीं, कई एक बेमेल राजपूत जातियां उस जातिके गौरव और साहसिकताका आदर करती हैं। "गक्कार" लोगोंने एक समय बाबरके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था और फिर हुमायूंके राज्य पानेमें सहायता की थी,—वह याद इस समय भी इनके हृदयमें जाग रही है। तिब्बती लोग मितचारी हैं; वह लोग उनकी श्रेणीवद्ध छोटी छोटी जमीनोंमें खेतीकर जीवन बिताते हैं। किन्तु वह लोग बड़े ही भीरु हैं। उनकी वर्त्तमान अवस्थाकी आलोचना कर देखनेसे जान पड़ता है, कि वह लोग किसी समय भी स्वाधीनता पानेमें समर्थ न होंगे। दुःसहरूपसे सताये जानेपर भी वह उसमें बाधा देनेमें अक्षम हैं। स्त्रियोंके बहुत स्वामी और बहुत विवाहकी प्रथा तिब्बतियोंमें रुचि और धर्मके विरुद्ध जान नहीं पड़ती; बल्कि ऐसा कहते हैं, कि यह एक पुरानी अनिवार्य्य रीति है। पहाड़ी कृषिकार्य्योपयोगी प्रत्येक भूमिखण्डमें बहुत दिनोंसे

व्यवसाय-वाणिज्यमें नियुक्त होती जाती है। इस समय स्पष्ट ही जान पड़ता है, कि साकूसन अधिकृत "इङ्गलण्ड" का फ्रान्सीसी विजित "गाल" का और "गथ" राज्ययुक्त इटालीका रोमनारी और धर्म्मभाजक सम्प्रदाय प्रधानतः रोमन संयुक्तमूलक है।

खेती होती है।* लोगोंकी संख्याके अनुमानसे बहुत ज्यादा जमीन मौजूद रहनेसे साधारण समभावसे प्रतिपालित होते आते हैं। हरेक परिवारका मालिकी हक और बन्दोबस्तकी क्षमता एक ही पुत्रवान् पुरुषको देनेकी वजह, यह अनुपात पहलेसे एक ही भावसे वर्त्तमान है। पश्चिम प्रदेशमें मुसलमान धर्मका प्रचार होनेके साथ ही साथ लोगोंकी विचारशक्ति बढ़ी है और कितने ही लोग भिन्न भिन्न स्थानोंमें उपनिवेश स्थापन करते हैं। मुसलमान धर्मके प्रभावसे चिरस्थायी प्रथामें बहुत अदल बदल हुआ है। यहांतक, कि अ मा-निब्बतीयगण कोई किसी समय रोजगार या दूसरे उपायसे सामान्य धनके अधिकारी होते ही, हरेक परिवारके भिन्न भिन्न पुरुष स्वतन्त्र रहनेकी जगह बना वास करते हैं। *

* लदाखमें स्त्रियोंकी बहुत खामी है। बहुत विवाहकी सम्बन्धमें मुरक्रौफट (Travels ii, 321, 322) और एशियाटिक सुसाइटीका १८४४ ई० का "जरनल" (P. 202 &c.) देखने लायक है। वास्तविक ऐसी प्रथाके चलनेसे कितने ही संख्यक जारज (दूसरे पतिका सन्तान) सम्प्रदायकी सृष्टि हुई है। शतद्रु और पिटि (या, स्पिति) दोनो नदियोंकी सङ्गमस्थलमें "चाङ्ग्राङ्" नामक छोटी ग्रामकी ७६० परिवारोंमें २६ जारज सम्प्रदाय दिखाई देते हैं और हर २८ मनुष्योंमें एक जारज मनुष्य दिखाई देता है। हरेक भिन्नस्त्रीदा पुरुषोंके ही अपना अपना जन्म-वैलक्षण्य स्वीकार करनेकी वजह, उन हिसाबसे जारज-सम्प्रदाय की संख्या और

"थिव" और "बुरुशो" प्रभृति पहाड़ी असभ्य जातियों और समतल खण्डके "जून," "काथी," "डोगर" और "भूटी" प्रभृति जातियोंकी बातोंके विस्तारके साथ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इनमें कितनी ही जातियां अलस और डाकूस्वभावकी हैं; कितनी ही पशुपालक हैं, यह लोग सत् और शान्त-प्रकृति हैं। अवस्था और स्वभावगत विशेषत्वके सिवा और दूसरा क्या कारण हो सकता है? दीर्घकाय, सुपुरुष, दीर्घजीवी "जून" और "काथि," ऊंट, गौ, भेंड़ आदि पशु पालते हैं। इनके दूधका नवनीत "पूर्व" देशसे तय्यार हो शहरमें आता है और यहांके अधिवासी यह दूध पिए परुषोंके उद्देश्यसे निवेदन करते हैं। *

भी ज्यादा हो सकती है। सन् १८८५ ई०की गिनतीमें इङ्गलण्ड और वेल्सके लोगोंकी संख्या कुल १४,७!०,०००!ठीक हुई है। इनमें (नये, Poor law प्रचलित होनेके पहले) ६५, ४७५ जारज सन्तान समाजभुक्त किये गये। उस समय हर २१६ में एककी गिनतीसे जारज-सन्तान दिखाई दिये थे। (Wade's 'British History', pp, 1041—1055) यहांतक, कि स्त्रियोंका चरित्र कलुषित होनेकी वजह, जारज मनुष्योंकी संख्या, मानी हुई संख्यासे दूनी होनेपर भी, स्त्रियोंमें बहुत विवाहकी प्रथा प्रमाणित नहीं होती।

* "On milk sustained, and blest with length of days, The Hippomolgi, peaceful just, and wise,
"Iliad, xiii, Cowper's Translation,"

पहले ही कहा जा चुका है, कि जाति-धर्मगत विशेषत्व चिरस्थायी नहीं है। अब भी भारतकी सब जगहके कृषक-सम्प्रदाय एक जगहसे दूसरी जगह उपनिवेश स्थापन करते हैं। राजनीतिक अत्याचार, अकाल और बाढ़ प्रभृति कारणोंसे भी किसी जिले या ग्रामके अधिवासी ज्यादा सुविधाजनक स्थानोंमें जा बसते हैं। ज्यादातर राजा और प्रादेशिक शासनकर्त्तागण, जिनको औपनिवेशिकोंको थोड़े करमें जमीन दे उनकी सहायता करते हैं। इसलिये ही विभिन्न सम्प्रदायोंमें जातिगत पार्थक्यमें भी बहुत कुछ बदलाव हुआ है। भारतवर्षके हरेक सम्प्रदायके लोग आपसमें अलग रहते और वंश-मर्यादा और जातिगत पार्थक्य रखना अच्छा समझते हैं; इसके लिये वह लोग विशेष रूपसे यत्नवान होते हैं। इसके फलसे भिन्न भिन्न जाति और वंशकी संख्या एक तरहसे असीम हो गई है। कुछ दिन हुए, सिन्धुनदके उत्तरखण्डके सिख राज्यपर बलूचियोंने उपनिवेश स्थापन किया था; विगत एक सौ वर्षोंमें “सिन्धियान” जातिके “राजपूत सम्प्रदायने” शतद्रु की निचली जमीनोंपर अधिकार किया। दिल्लीसे फीरोजपुरतक “डोगर” जाति और मेवाड़से शतद्रुतीरवर्त्ती पाकपट्टन नामक स्थानमें “गोहिया”ओंने उपनिवेश स्थापन किया था। इन दोनों जातियोंका दूसरी जगहोंमें जाना जनश्रुतिमूलक जान पड़ता

“ दुग्धपानकर हिपमल्गी शान्तिपर, त्यागी, न्यायवान, पुष्टकाय और दीर्घजीवी, हैं।” “इलियड, “१३श खण्ड, काउपरका अनुवाद।”

है ;—इतिहासमें भी ऐसा ही कहा है। मिहनती हिन्दू "रैटाम" लोग क्रमशः रावी और चन्द्रभागासे पूर्व्व ओर एक ग्रामसे दूसरे ग्रामको ओर बढ़ रहा साहसी, फिर भी, अपेक्षाकृत कम मिहनती सम्प्रदायोंसे धीरे धीरे भिन्न रहे हैं।

—यद्यपि वर्त्तमान समय बौद्ध, ब्राह्मण और मुसलमानोंमें धर्म्मयुद्ध उपस्थित हुआ नहीं ; तथापि बौद्ध और ब्राह्मण्य धर्म्मावलम्बियोंका धर्म्मबन्धन बहुत कुछ शिथिल हो पड़ा है ;—तथापि बौद्ध, ब्राह्मण और मुसलमान, सभी और सब जातियोंको अपने अपने धर्म्मका दीक्षित करनेमें सदा यत्नवान रहते हैं। मुसलमानधर्म्मको इस समय भी जीवनी शक्ति प्रदान कर रखनेकी वजह,—इस समय मुसलमान धर्म्मके नामसे उत्तेजना बढ़नेकी वजह, मुसलमान बहुत दिनोंतक असभ्य ज्ञानहीन मनुष्योंको अपने धर्म्ममें दीक्षित करनेमें समर्थ होंगे। इसलाम धर्म्म इसकार्दोसे ले तक सिन्धुनदके उत्तर अंशमें प्रचारित होता है और धीरे धीरे बौद्धोंको दूसरा धर्म्म ग्रहण करनेके लिये बाध्य करता है। पेशावरके सीमान्तवर्त्ती "काफिर" राज्योंकी सीमा भी धीरे धीरे सङ्कीर्ण होती जाती है। काश्मीरके दक्षिण और पूर्व्व इस समय मुसलमान धर्म्मने ही विशेष प्रतिष्ठा पाई है। यह किसी तरह अस्वीकार किया जा नहीं सकता, कि भारतवर्षके हरेक जगाधोंर्ण शहरमें और मुसलमान अधिकृत प्रदेशोंमें मुसलमान धर्म्म धीरे धीरे बद्धमूल हो आधिपत्य विस्तार करता नहीं है। सिन्धावरसे पूर्व्व हिमालयकी नीची उपत्यकाओंके उस पार विजेता राजपूत लोग ब्राह्मण्य धर्म्म फैलानेमें समर्थ हुए नहीं हैं। किन्तु अधिकतर वन्य

गङ्गोंमें,—जहां के अज्ञान अधिवासी ग्राम्य और स्थानीय देव-ताकी पूजा करते हैं,—इस समय बौद्धोंने उन दुर्गम स्थानोंमें भी बढ़ना आरम्भ किया है। जिन दुर्गम स्थानोंमें पहले कोई एक मनुष्य भी जानेके लिये साहसी नहीं हुआ, वहां "लोहित" और "पीत" सम्प्रदायके लामाओंने आधिपत्य स्थापन किया है। भारतकी जङ्गली जातियोंमें ब्राह्मणोंके प्रतिपत्तिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। "भील," "गण्ड," "कोल,"—हरेक कुछ क्षमताशाली था। धनवान होते ही "म्लेच्छ" की अपेक्षा हिन्दू नामसे अभिहित होनेके लिये आग्रह प्रकाश करते हैं। * किन्तु दूसरी ओर साधारण हिन्दुओंने कई

---

* गण्ड लोगोंका राज्य छीनकर मध्य भारतके भूपाल राज्यका अधिकांश प्रतिष्ठित हुआ है। सत्रहवीं शताब्दिके भीतर इन गण्ड लोगोंने बलप्रयोग द्वारा पश्चिम और उपनिवेश स्थापन किया था। औरङ्गजेबके बहुत चेष्टा करनेपर भी इन लोगोंने होशङ्गाबादके निकटवर्ती नर्म्मदा किनारेके स्थानोंमें अपना प्राधान्य स्थापन किया था। वहां बहुत दिन राजत्व करनेके उपरान्त एक अफगान जातीय आक्रमणकारीने राज्य-ध्वंसकी सूचना या उन लोगोंको परास्तकर राज्यपर अधिकार कर लिया। उस अफगानने पराजित जातिके कितने ही लोगों-को बलप्रयोग द्वारा या जागीर देकर अपने धर्ममें दीक्षित किया था। उनमें किसी किसीने सुनाम और चित्तप्रसन्नताके लिये अफगान-धर्म ग्रहण किया था। इस समय नर्म्मदाके दोनो किनारे छोटी छोटी जमींदारियोंमें कितने ही मुसलमान

वर्षों से धर्मप्रचार करना आरम्भ किया है। यद्यपि हिन्दुओंकी संख्यामें इस समय भी कमी हुई नहीं है, तथापि शास्त्रज्ञानके सम्बन्धमें ब्राह्मणोंका अब वैसा प्रभाव नहीं है। "गोसाईं" और शाईंदयाल-धर्मावलम्बी साधुओंने ब्राह्मणोंके प्राधान्यके अनेक अंशोंपर अधिकार किया है। सिखजाति इस समय अपने अधिकृत स्थानोंमें वहांके अधिवासियोंको सिखधर्ममें दीक्षित करती है; कारण, प्रबलपराक्रान्त अङ्गरेजोंके बाधा देनेपर सिख लोग पूर्व्व ओर आधिपत्य फैलानेमें समर्थ नहीं हुए और इसलिये ही यमुना और गङ्गाके निकटवर्त्ती "जाट" लोग पुराने पौत्तलिक धर्म्मकी ही उपासना करते हैं।

धर्म्मावलम्बी "जाट" परिवार दिखाई देते हैं। हिन्दूधर्म्मावलम्बी सबकी अपेक्षा इन लोगोंने जातीय कुसंस्कार परित्याग किया है।

द्वितीय परिच्छेद।

प्राचीन भारतका धर्ममत,—आधुनिक संस्कार और परिवर्त्तन,—
नानक प्रचारित धर्म,—
सन् १५७८ ई० तक।

(बौद्धमत;—ब्राह्मण और क्षत्रियजाति;—विजयी ब्राह्मण-धर्मपर बौद्धधर्मकी प्रतिक्रिया;—प्रतिष्ठित धर्मकी प्रतीतिकी सीमा;—शङ्कराचार्य और शैव धर्म,—भिक्षु सम्प्रदाय;—रामानुज और वैष्णव धर्म;—"माया" स्तव (योग);—मुसलमानोंका अधिकार;—ब्राह्मण्य-धर्म और मुसलमान धर्मकी आपसकी क्रिया;—रामानन्द गोरखनाथ, कबीर, चैतन्य और वल्लभ द्वारा नये धर्मका प्रचार;—नानक प्रचारित संस्कार।)

रोमराज्यके अधःपतन और खृष्टीय धर्मके प्रवर्त्तनकी अपेक्षा कुछ थोड़ा कौतूहलप्रद होनेपर भी बहुत पुराने समयसे वर्त्तमान समयतकके भारतवर्षकी अवस्था,—जगतके इतिहासमें एक आश्चर्य उपाख्यान-विशेष है। ऐसा जान पड़ता है, कि "ककेशीय" सम्प्रदायभुक्त भिन्न भिन्न योद्धाजातिने दक्षिणघाटसे हिमालयकी पर्वतश्रेणीतक फैले हुए एशियाके इस उपद्वीपमें उपनिवेश स्थापन किया था। वह पुरानी "मैदिक" और "पारसी" भाषाकी तरह एक स्वतन्त्र भाषामें बातचीत

करते और बड़ी बड़ी नदियों और समुद्रकी तीरवर्ती स्थानोंमें विभिन्न सम्प्रदायमें श्रेणीबद्ध हो वास करते थे। वह लोग वाबिलन और मिश्रमें प्रचलित धर्म्ममतकी तरह एक स्वतन्त्र धर्म्मके उपासक थे ;-उनका वह धर्म्ममत कितने ही मनुष्योंके मनमें शान्ति प्रदान करता है। धार्म्मिक और रत्नपुरुषोंकी वसतीका स्थान,—दिल्ली, लाहौर, गुजरात और बङ्गदेश—आर्य्यावर्त्तके भीतर है। प्रकृत पक्षमें, एक नई शक्तिमें अनुप्राणित होनेसे गङ्गातीरवर्त्ती उत्तर-पश्चिमप्रदेशके अधिवासियोंका छिपा हुआ तेज ही पहले प्रकटित हुआ। इसके फलसे ब्राह्मणोंकी एक नई सभ्यता प्रचलित हुई और आयोलियाकी "सुवर्ण" कार्थेजिनतक कितने ही बौद्ध परिवारोंने प्रतिष्ठा पाई। दरियासका गौरव, सिकन्दर शाहका महत्त्व, यूनान दर्शनशास्त्र और चीनकी धर्म्मशिक्षा,- सभी भारतवर्षमें सुस्पष्टरूपसे प्रकटित थी। जिस समय "रोमी" लोग "जर्म्मन" और "किम्ब्री" के लोगोंके साथ विवाद-विसम्वादमें रत थे और "गथ" और "हुन" लोग धीरे धीरे अधीनता स्वीकार करते थे, हिन्दुओंने उस समय असंख्य असभ्य सिदिक जातिको थोड़ी सिद्दमतसे ही अपना दलभुक्त कर लिया था। हिन्दुओंके प्रभावसे (Sacae)* "शाकी" जाति देशसे विताड़ित हुई ; उन

* Sacae (Sakae) शाकियोंके विरुद्ध असाधारणकार विक्रमाजितने जो' अद्भुत कार्य्य साधन किया था, उसके लिये उन्होंने "शाकारि" (Sakaree) उपाधि पाई थी। यारकन्द और मानसरोवर ह्रदके मध्यवर्त्ती तातारके जङ्गली प्रदेशमें इस

लोगोंने (Getae ? "गिति" जातिको अपनी एक प्रसिद्ध जातिके भीतर कर लिया; * और अन्यान्य और जातिको अपने रक्षकरूपमें नियुक्त किया था। † इसके उपरान्त भारतवर्ष-विजयके इच्छुक मुसलमानोंने धर्म्मकी गतिका प्रतिरोध किया था सही; किन्तु शाश्वत "तुर्कमान" लोगोंकी धर्म्मोन्मत्ततामें पूरी तरहसे बाधा देनेमें समर्थ नहीं हुए। भारतवर्षकी

जातिके अनेक विशुद्ध सम्प्रदाय सम्भवतः इससमय भी वर्त्तमान है। यहांकी "शकपी" जाति मुसलमानों द्वारा "कैलमाक" (Kelmaks) नामसे अभिहित होती है। तिब्बतके अधिवासी समय समयपर इन्हें भय दिखाते हैं।

* Getae (गिती) जाति और आदिम चीनदेशीय इउइचि (Yuechi) और इधर "जाट" या "जाट" (Juts or Jats)—एक ही जाति कही जाती है। किन्तु तर्कयुक्ति समालोचनासे उसकी सत्यता निर्णीत न होनेपर भी न्यायतः ऐसा समझा जाता है।

† क्षत्रिय या राजपूतोंको चार "अग्निकुलकी" जाते कही जाती हैं। यथा,—"चौहान" "सोलाङ्की" "पवार" (या, प्रामर) और "परिहार"। इससे साफ मालूम होता है, कि इनके आदि पुरुषोंने इस देशपर आक्रमण किया था। ब्राह्मणोंके साथ क्षत्रियोंका और वर्द्धिष्णु धर्म्मत्यागियोंका और यूनान और बेकट्रिया-देशस्थ आक्रमणकारियोंमें जब युद्ध चलता था, तो इन लोगोंने ब्राह्मणोंका पक्ष अवलम्बन किया था। इनकी चीह प्रकृति और प्रतिभा, समयोपयोगी सहाय्य और पश्चाद्-

भी मुसलमानोंके साम्राज्यके एक श्रेष्ठ राज्यके नामसे गिनती हुई थी और अरब देशीय उस धर्म्मके प्रचारककी प्रतिभा-शक्तिसे हिन्दुओंकी मानसिक अवस्थामें एक स्थायी बदलाव संसाधित हुआ था। इस समय लाख लाख रोजगारी और मिहनती भारतवासियोंका मङ्गलामङ्गल पश्चिम खण्डकी एक प्रधान जातिकी अदृष्टके साथ गुंथा हुआ है। तृतीय धर्म्म-मत और रोमदेशीय राज्यशासन-नीतियोंके आदर्शके साथ, धर्म्मानुगत ब्राह्मणोंका, शासनशक्ति सम्पन्न मुल्लाओंका और दृढ़विश्वासी सिखोंका मतविरोध बहुत दिनोंतक चलेगा।

भारतवर्षका प्रचलित पुराना धर्म्ममत ले बहुत दिनोंतक ब्राह्मण और क्षत्रियोंका वादप्रतिवाद चला था; अन्तमें धीरे धीरे उस मतके बदलनेसे प्रसिद्ध बौद्ध धर्म्मकी उत्पत्ति हुई। *

वर्णों सादृश्य प्रभृति कारणोंसे सूर्य और चन्द्रवंशसे स्वतन्त्र नामसे यह लोग अग्निवंशके नामसे अभिहित होते हैं। उज्जयिनीसे रेवातक फैले हुए काशीके निकटवर्त्ती स्थानोंमें प्रधानतः "अग्निकुल" क्षत्रिय दिखाई देते और "आबू" पर्वत उनके अलौकिक जन्म या आविर्भावके स्थानके नामसे ठीक हुआ है। ब्राह्मणधर्म्मके प्रतिपोषक विक्रमाजित साधारणतः इसी "पवार" वंशसम्भूत कहे जाते हैं।

* परस्पर तुलनामें ब्राह्मण्य और बौद्ध-धर्म्मकी आपेक्षिक अग्रगण्यता और प्राधान्यके विषयमें पण्डितोंमें बहुत तर्क-वितर्क और विवाद-विसम्वाद होता था। इसमें सन्देह नहीं, कि एक समय इस भारतवर्षमें बौद्ध धर्म्म बहुत दूरतक फैला था

खृष्ट-जन्मके कोई नौ सौ वर्ष पहले जब मनुने धर्म्मशास्त्र बनाया था ; इसके बाद सिकन्दरशाहने जब भारतपर आक्रमण किया

और दूसरे समय ब्राह्मण्य धर्म्मने विशेष प्रतिष्ठा पाई थी। किन्तु दोनो धर्म्मका मूल विभिन्न है। यह सच जान पड़ता है, कि बौद्ध और ब्राह्मण्य-धर्म्म दोनों ही एक समय सम-सामयिक-रूपसे बहुत दिनोंतक विद्यमान थे। बौद्धधर्म्म प्रधानतः दक्षिण-पश्चिम खण्डमें और ब्राह्मण्यधर्म्म अयोध्या और तिरहुतके निकटवर्त्ती स्थानोंमें प्रचलित था। एम० बारथुवा कहते हैं, बौद्ध धर्म्म केवल भारतवर्षमें ही प्रचलित हुआ और भारतवर्षमें ही इसकी उत्पत्ति हुई ; किन्तु ऐसा अनुमान युक्तिसङ्गत जान नहीं पड़ता। (“Introductional’ Histoire du Buddhisme Indien, Avertissement, i) तब भी जान पड़ता है, कि यह “बौद्ध” शब्द संस्कृत “बुद्धि” अर्थात् “बुद्धि” शब्दसे उत्पन्न हुआ है ; या “बो” या “बोदि” अर्थात् पीपलवृक्षसे (the ficus religiosa) निष्पन्न हुआ है। ब्राह्मणोंकी साधारण ब्राह्मण्य शक्ति धीरे धीरे स्फुरित और उन्नत हुई और ब्राह्मण्य प्रतिभाके बलसे हिन्दूमात्रने ही भारतवर्षकी सब जगहोंमें सबसे ऊँचा पद पाया था। किन्तु ब्राह्मणोंको इस श्रेष्ठ धर्म्मशिक्षा और शास्त्रज्ञानसे शत्रुओंसे कितनी ही सहायता पाई थी। ब्राह्मण या क्षत्रिय वंशसम्भूत गौतम, ब्राह्मणोंके इस श्रेष्ठज्ञानका अवलम्बन करके ही जान पड़ता है अधिकतर विशुद्ध वैज्ञानिक रीतिके अनुसार बौद्ध-धर्म्मका संस्कारकार्य्य संसाधनकर परवर्त्ती समयमें बौद्धधर्म्मको

था,—यहाँतक, कि यिसू खृष्टके जन्मके सात सौ वर्ष बाद भी,—जब अज्ञात-कुलशील असभ्य "येव्हिसान" जातीने सर्व्वत्र

प्रवर्त्तक और ईश्वरानुगृहीत पुरुषके नामसे प्रशंसित हुए थे। वर्त्तमान समय प्रचलित धर्म्मोंमें शैवधर्म्ममें ही वेदोक्त उपासनाकी पद्धति दिखाई देती है। (Compare Wilson "As. Res" XVII. 170 &c. and "Vishnoo Pooran", Preface. XIV) ब्राह्मण और बौद्ध-धर्म्मका वेश-भूषा विषयक दोनो विश्वासकी मिलावटसे यथाक्रम वैष्णव और जैन धर्म्म उत्पन्न हुआ है। शाक्त धर्म्ममें सबका पुराना अन्धविश्वास ज्यादातर स्पष्टरूपसे प्रकट हुआ; शक्तिके उपासक लोग दुर्भिक्ष, महामारी और मृत्युविधायकी भयङ्करी देवीके सामने भयसे मस्तक झुकाते हैं। अब भी मध्यभारतके भीतर भिलसाके निकटवर्त्ती "टोपी" या अर्द्धगोलाकार जो स्मृतिस्तम्भ वर्त्तमान है, जान पड़ता है, वही सबसे श्रेष्ठ है। एक पुरुषने पहले अङ्गरेजोंकी पुरानी कीर्त्ति-कहानीसे परिपूर्ण इस स्तम्भके मध्यस्थित काल्पनिक कोटर या माल ढूंढ़नेके लिये स्तम्भका कई अंश ध्वंसकर अङ्गरेजोंका नाम कलङ्कित किया है। इस समय अङ्गरेजोंने केवल उसका नक्शा तय्यार कर रखा है। वह ज्ञानियोंके लिये विशेष उपयोगी है। इस अद्वितीय प्रस्तर-प्राकारकी क्रितमें जो भास्कर्य ("bas-reliefs",) अशोकके राजत्वके समयके भारतवर्षके धर्म्म और आचार पद्धतियोंकी श्रेष्ठताकी गवाही देते हैं। इन सब भास्कर्य्योंके देखनेसे मालूम होता है, कि उस समयके अधिवासी इन्द्र, सूर्य्य, चन्द्र

परिभ्रमणकर ज्ञानार्ज्जन किया था,— तब भी कितने ही राज्य प्राचीन आर्य्य जातिके सिवा दूसरी जातियोंके शासनाधीन थे प्रचलित बौद्धधर्म्ममें ईश्वर-स्वारूप्य अस्वरूभावसे वर्त्तमान है तब भी, एकेश्वरवादी वेदधर्म्मकी अपेक्षा इस बौद्ध-धर्म्मके उपासकोंकी ही संख्या अधिक है। वेदधर्म्मावलम्बी प्रखर सूर्य्य वायु या अग्निके सिवा दूसरा कोई साहश्य स्वीकार नहीं करते। * इस युगमें हिन्दुओंकी प्रतिभा शक्तिसे पूरी तरह

(या टोपी) को ही पृथिवीका केन्द्रस्थित पर्व्वत या मेरुका प्रत्यक्ष निदर्शन और बुद्धको जगदीश्वरका साकार स्वरूप समझ, यथेष्ट श्रद्धा और उपासना करते थे। उस समय इस देशवासियोंमें कोई कोई कोई ऊंची टोपी और छोटा जामा व्यवहारमें लाते थे। उनका वेश-भूषा हिन्दुओंके प्रचलित वेश-भूषासे पूरी तरह अलग था।

* एलफिन्स्टन साहबने वेलसनकी "अक्सफोर्डकी" वक्तृता और विष्णुपुराणसे कुछ अंश उद्धृतकर उनके इतिहासमें लिखा है (History I. 18) "ऐसा मालूम नहीं होता, कि अर्चनीय देवताकी कोई प्रतिमूर्त्ति या प्रत्यक्ष निदर्शन है।" फिर भी, नये और पुराने दोनो धर्म्मग्रन्थोंमें (Old and New Testaments) ऐसा कहा गया है, कि अग्नि ही ईश्वरका प्रधान निदर्शन है। (Strauss Life of Jesus, 361) वेदमें ऐश्वरिक तेज (शक्ति) और गुणका मनुष्यरूप वर्णित है। यहूदियोंकी अन्यान्य देवदेवियोंकी वर्णनामें "जेहोवा" की अद्वितीय शक्तिमत्तामें कमी हुई है। किन्तु सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, संहार-

विकाश पाया था। आत्मा सीमा मङ्गलमें और बहुत विषयोंमें अ छत्वमें ग्रीक लोगोंसे प्रतिद्वन्द्वी हुए थे। ईश्वरपूर्ण पुरानी कवितायें अलौकिक कल्पना और वर्णनाशक्तिकी परिचायक हैं। रामायण और महाभारतकी कविताओंसे इस समय भी मनोभाव उत्तेजित है; लोगोंके चरित्रमें उसका प्रभाव फैलता है। गणितशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र इतना निर्मूल और सम्पूर्ण था, कि सूर्य और चन्द्रके घूमनेकी राह निःसन्देह

कर्त्ता शिव और अन्यान्य देवदेवियोंको अवतारणासे एकेश्वर प्रथामें कोई खास बदलाव नहीं हुआ। यद्यपि वैदिक प्रथाके सम्बन्धमें "कोलब्रुक"की और अन्यान्य ग्रन्थकर्त्ताका और राम मोहन रायकी टीका और अनुक्रमणिका वर्त्तमान है, तथापि वेद और वेदान्तके धर्म-सम्बन्धमें इस समय भी अनेक विषयमें शिक्षाका अभाव है। ("Asiatic Researches VIII; 'Transactions, Royal Asiatic Society', i and ii, and 'Ram mohan Roy on the Veds') इस सम्बन्धमें (Ward's Hindu's ii, 175,) वार्डके "हिन्दू" नामक ग्रन्थका "वेदान्तसार" नामका अनुदित अंश डाक्तर रोयरका परिशोधित और परिवर्द्धित अनुवाद देखने लायक है, (Journals, Asiatic Society of Bengal, Feb, 1845, No 108)। यदि अनुवाद करनेवाले इस समयकी प्रथाके अनुसार संस्कृत शब्दोंका अङ्गरेजी प्रतिवाक्य न देकर, प्रत्येक शब्दका अच्छी तरह अङ्गरेजी भाषमें व्याख्या करते, तो आदिम विचारकर्त्ताओंका धर्ममत समझनेमें खासी सुविधा होती।

निश्चितरूपसे नापी जाती थी। * कितने ही शिक्षित मनुष्योंने दर्शनशास्त्रमें विशेष ज्ञान पाया था; किन्तु जनसाधारण परमार्थज्ञान ही श्रेष्ठ समझते थे। पहले दोनो इनका दर्शनज्ञान और परमार्थ-ज्ञान दृढ़तररूपसे निकटसम्बन्धीय और अभिन्न था। शास्त्रयोंने ईश्वरका एकत्व, पृथिवीकी सृष्टि, आत्माका अमरत्व और मनुष्यजातिके दायित्वके सम्बन्धमें कई एक धर्म्मसूत्रकी रचना की थी। गङ्गाके तीरवर्त्ती पुराने अधिवासी पारलिक (भविष्यत्) जीवन और ईश्वरका एकत्व सब शक्तिमत्ताका प्रचार करते थे; किन्तु इस सम्बन्धमें मोजेसने (Moses) कोई राय प्रकाश की नहीं है; इस विषयमें वह चुप या अनजान हैं। † बहुदेववादी यूनानी और

* भारतवर्षमें साधारणतः "सौर" वर्ष ही प्रचलित है। इस तरह वर्षकी गिनतीमें बराबर दिनरातके स्वरूपके सम्बन्धमें कोई विशेष विस्तार नहीं हुआ, किन्तु नाक्षत्रिक वर्षके हिसाबसे ऐसी गिनती अनेक अंशमें सची है। सूर्यके घूमनेकी राह और विषुव रेखाका परस्पर मिलन-विन्दुसमष्टिका आवर्त्तन हिन्दू लोग बहुत पहलेसे ही जानते हैं। ऐसे प्रपन्न आवर्त्तनकी ठीक समयसे हिन्दुओंके कितने ही युगकी गिनती की गई है; (Compare Mr Davis's paper in the "As. Res." Vol ii and Bentley's Astronomy of the Hindus, P. 2—6. 88).

† ज्ञानी और विज्ञ मोजेसको,—ग्रीको नास्तिक और मिस्रके लोग धर्म्मयाजक समझते थे। (as quoted in Volney's

रोमनलोग * और इनवाद्री "मिथरेइन" जातीय विधिविधायक ईश्वरका एकत्व और सर्व्वशक्तिमत्ताके विषयमें कुछ भी नहीं जानते। आपने ऐसे मतका प्रचार किया ; कि बुरा काम करनेपर ईश्वर गुरुतर शास्तिविधान करते हैं। आपके फैलाये इस मतपर जनसाधारण बुरा काम करनेसे बहुत ज्यादा डरते थे।

Ruins, Ch, xxii, Sec, 9, note) किन्तु इस बातके स्वीकार न करनेपर भी, कि मोजेस आत्माके अनित्य होनेका पूरीतरह विश्वास करते थे, यह बात कोई अस्वीकार कर नहीं सकता, कि यहूदी लोग जेहोवाको अपना एकमात्र उपास्य देवता या अन्तिम रक्षाकर्त्ता समझते थे। यद्यपि हेरोडोटसने कहा है, कि मिस्रके लोगोंने ही पहले आत्माके अमरत्वको सप्रमाण किया है, तथापि तार्किक "सादुकी" लोग उनके धर्म-गुरुको ऐसे ही भावसे अभिहित करते हैं। अरिष्टल और प्लेटो पूरे परवश होनेपर भी, दोनोंने कहा है, कि आत्माकी और अवस्थाकी अपेक्षा अमरत्वभाव ही अधिक है। ("Phoedo", Sydiaham and Taylor's Translation, iv, 324).

* एथेन्सवासियोंके अज्ञात देवता अदृष्ट हैं (fate)। प्रतिहिंसा-परवश 'नेमिसिस' (Nemisis) और 'जियस' या जुपिटरकी क्षमताके बाहर अन्यान्य देवशक्तियोंकी वर्णनासे जाना जाता है, कि पुराने पुरुष प्रचलित पौराणिक तत्त्वपर पूरीतरह विश्वास करनेकी इच्छा नहीं करते ; इस समयकी समालोचनासे यदि कलित या झूठी बातें प्रकाश न होतीं, तो

इस विषयमें यासने प्लेटोको भी पराजित किया था। * प्रकृत पक्षमें आत्माका अविनश्वरत्व और मरनेके बाद दूसरी देह

होमारका सामयिक "थियोज" ("theos") यानी आत्यन्तिक वर्णनाके सम्बन्धसे जिस बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा की है, (Odyssey, XIV, Cowpers note, P. 48, vol ii, Edition of 1802) उसपर विशप थारवल (History of Greece, i, 192 &c) और मिष्टर ग्रोट दोनो ही अविश्वास करते हैं (History of Greece, I, 3. and XVI Part i, generally.)

* प्लेटो कर्त्तव्यज्ञान और बाध्यता स्वीकार करते नहीं थे; या वह कर्त्तव्य और बाध्यताकी नियमका अच्छी तरह अनुसन्धान करते नहीं थे। इस हेतुवादसे रिटार उन्हें इस दोषसे मुक्त करनेमें विशेष चेष्टा करते थे, कि सङ्केतसकी फैलाई हुई प्रथाके अनुसार बंधकर इस नियमके पालन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। (Ancient Philosophy, ii, 387) प्लेटो समझते थे, कि ऐसी कठोरतासे नैतिक दर्शनकी उपयोगिता थोड़ी जान पड़ती है और यही उनकी आपत्तिका प्रधान कारण है। बेकनने बहुत तुच्छरूपसे प्लेटोके इस मतका स्वतन्त्र: अवलम्बन किया था। (Compare 'Hallam's Literature of Europe, iii, 191, and Macaulay Edinburgh Review, July, 1837, P. 84.) यद्यपि ईश्वरकी ओर ऐसा कर्त्तव्यज्ञान क्रमानुषिक और नास्तिकोंके दर्शनशास्त्रकी प्रथामें यह अनावश्यक है, सामाजिक मङ्गलकामनासे ईश्वरके प्रति ऐसा कठोर कर्त्तव्य ज्ञान सब तरहसे प्रयोजनीय है। सभ्य ग्रीस देशमें

अथवा, यह दोनों मत आपसमें मिला दिये गये हैं ; कार्य्यकरी गुण (कर्म्म) की अपेक्षा दैहिक कष्ट-सहिष्णुता और मानसिक आहालौन्य ज्यादा प्रशंसनीय होता था । * ऐसा मत प्रचा-

---

और आजकलकी यूरोपके सिवा सब पृथ्वियाखण्डमें "दर्शनशास्त्र" और "तत्वशास्त्र" परस्पर निकट सम्बन्धीय और एकत्र जड़ीभूत हो रहा है । प्लेटो कहते हैं, कि मृत्युके उपरान्त आत्माका विचार आरम्भ होता है ; विचारके अनुसार दुष्ट मनुष्यकी आत्मा शास्ति पाती और उत्पीड़ित हो असह्य यन्त्रणा भोगती है ।(उदाहरण स्वरूप "Gorgias," Sydenham and Taylors Tianslation IV, 451) फलतः ऐसा नियम ही साधारणके लिये अधिकतर फलप्रद है । किन्तु यूनानी लोगोंके शास्त्रके अनुसार अविनश्वर मानुषी आत्माको परितृप्ति और उपभोग और ईश्वरके प्रति न्यायपरता ही पुण्यजनक जान पड़ती है । (Compare Schleiermacher's Introduction to Platos Dialoues, P. 181 &c, and Ritter's Ancient Philosophy, ii, 374) वासुदेवने जो स्वतन्त्रता और न्यायपरता मूलक धर्म्मशिक्षा दी है, इस समय लोग उसे ही कर्त्तव्यज्ञानके नामसे स्वीकार करते हैं । यह भी पूरी तरह कहा नहीं जा सकता, कि वही उनका कर्त्तव्य कार्य्य और उससे ही उनकी साध्यता है । सम्भवतः भारतवासियोंके लिये विवेकशास्त्रका उपदेशक होनेके बदले तत्वशास्त्रोपदेशक होना ही ज्यादा सहज हो सकता है ।

* इन्हींपर कुछ ग्रन्थकारोंने हिन्दू-तत्वशास्त्रके सम-

रित होनेसे, कि मनुष्य एक दूसरेके बराबर नहीं है और एक ही श्रेणीके मनुष्यगण पुरुषानुक्रमसे धर्म्मोपदेष्टा हो सकेंगे, इसके साथ ही साथ ब्राह्मणोंका नीतिशास्त्र पूरी तरहसे मिल गया *

न्थमें जो लिखा है, उसमें आत्माके दूसरी देह ग्रहण करनेके विषयमें अनेक वादानुवाद किया है। वह लोग कहते हैं, कि इस नीतिके अवलम्बन करनेसे मनुष्योंकी इच्छा-वृत्तिकी स्वाधीनतामें बहुत कमी होती है; पूर्व्वजन्मोंकी दोषयुक्त आत्माकी बारबार पृथिवीमें जन्म लेनेसे पहले आत्माकी अपेक्षा पर-आत्मा बहुत कुछ अलग जान पड़ती है। सुनते हैं, कि ऐसे ही मनुष्य यूनानी और रोमनोंकी भाग्यदेवीके वशवर्त्ती होते हैं। (Compare "Ward on the Hindoos" ii, Introductory Remarks, xxviii, &c.) नीतिशास्त्रके अनुसार आत्माके पूर्व्वजन्मके पापसे भाराक्रान्त होनेपर भी पूर्व्व और परवर्त्ती आत्मामें कोई भेद नहीं है; आदमके (Adam) पापोंसे आत्माके कलुषित होनेपर भी वर्त्तमान जीवनके आचार-व्यवहारमें कोई प्रभाव दिखाई नहीं देता। दर्शनशास्त्रके मतमें आत्मा दूसरी देह ग्रहण नहीं करती। केवलमात्र वर्त्तमान जीवनमें पापोंकी अवस्थितिसे और मनुष्यपर उसका प्रभाव फैलनेके परिमाण-निर्णयार्थ एक श्रेष्ठ राहके सिवा और कुछ भी नहीं।

* जातिभेदकी प्रथा भारतवर्षमें प्रचलित हुई; मिस्र और फ्रान्समें भी एक समय इसी प्रथाका प्रभाव था और पुरानी कई

ब्राह्मणोंने भारत उपद्वीपसे बौद्ध धर्म्मावलम्बियोंको विताड़ित किया था; खृष्ट जन्मकी नौ सौ वर्ष बाद जिस समय

जातियां अलग धर्मकार्य्य और पुरुषानुक्रमिक आचारका अनुष्ठान करती थीं। मध्ययुगमें और वर्त्तमान समय यूरोपमें इस प्रथाने कई अंशमें जैसा आधिपत्य फैलाया था, उन सबको इकट्ठाकर एक प्रबन्ध रचा जा सकता है। जो विद्वानके नामसे विख्यात हैं, जो बहुदर्शी हैं, जातिभेद प्रथाके सम्बन्धमें उन्हें ऐसे एक प्रबन्धकी रचना करना उचित है। पुरानी सभ्यताने धीरे धीरे परवर्त्ती जैसी विषमय उन्नति पाई थी, उसके ही फलसे यह जातिभेद प्रथा भारतवर्षमें फैली है। विगत कई शताब्दियोंसे यह प्रथा जिस भावसे अनुष्ठित होती है पुराने समय आदिम अधिवासी इसे ऐसी कठोरताके साथ मानकर चलते नहीं थे। विश्वामित्रका ब्राह्मण्यशक्ति पाना इसका एक अच्छा दृष्टान्त है। विक्रमाजित भी इस शक्तिके पानेके लिये बड़े इच्छुक थे और उसमें वह बहुत कुछ कृतकार्य्य भी हुए थे। इसी प्रकार व्यासदेव एक शूद्रको पुरोहित श्रेणीमें खींच लाये; उनके वंशधरके अपेक्षाकृत नीच जातिके होनेपर भी, वह ब्राह्मणोंमें गिने जाते हैं। (Ward on the Hindoos, i, 85 and see Munoos Institutes, chap, x, 42-72 &c,) यहां मनुने स्वीकार किया है, कि एकमात्र योग्यताके अनुसार ही जाति विशेषकी मर्य्यादा और श्रेणी विभक्त होती है और उस गुणसे चाहे कोई जाति हो, उच्च श्रेणीभुक्त हो, सकती है।) यहांतक, कि वर्त्तमान समयमें भी निम्नानवाला सम्प्रदा-

शङ्कराचार्य भारतकी सब जगहोंमें फिरकर अपना मत चलानेकी

थके कितने ही जाट-सिख परिवारने (यह लोग रणजित्‌सिंहकी सम्पर्कीय थे), राजपूतोंके सामाजिक संस्कार और व्यवहारमें एक होनेका यत्न किया था और एक समाजभुक्त होनेकी चेष्टा की थी। अगर विजयी मुगल और पठान जाति सच्चे धर्म्मपर विश्वास न करती और उनका प्रचलित धर्म्मयाजक सम्प्रदाय न होता, तो इसमें सन्देह नहीं, कि वह वेदधर्म्म ग्रहणकर क्षत्रिय या राजपुरुषोंमें गिने जाते।

जुलाहे कबीर, ब्रह्म या ईश्वरका स्वरूप जान आश्चर्य हुए थे। धर्म्मसंस्कारक रामानन्दके मुंहसे इस बातके प्रकाश होनेपर पुरोहित सम्प्रदायकी व्यादिम नीति प्रचारित हुई। (The Dabistan ii. 188.)

हिन्दुओंकी तरह भारतीय मुसलमान भी चार श्रेणीमें विभक्त हैं। जैसे;—सय्यद, शेख, मुगल और पठान। सभी श्रेष्ठके नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु इनमें पहली दो जातियां मुहम्मदके जातीय और मुहम्मदके दामाद "अली" के वंशधर इनमें सबसे श्रेष्ठ हैं। अन्ततः उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें सबका ऐसा विश्वास है, कि हिन्दूधर्म्म त्यागकारी क्षत्रिय और स्वधर्म्मवर्ज्जित सिख "शेख" के नामसे अभिहित हुए और अन्यान्य नीच जातीय स्वधर्म्मवर्ज्जनकारी "मुगल" और पठान जातिमें गिने जाते हैं। किन्तु यदि कोई ब्राह्मण अपना धर्म्म त्यागकर मुसलमानधर्म्म ग्रहण करे, तो इसमें सन्देह नहीं, कि वह उसी समय "सय्यद" श्रेणीभुक्त हो सकता है।

चेष्टा करते थे, उस समय कोई एक शिक्षित पण्डित और निष्ठुर अहिंसावादी जैनके * सिवा भारत उपद्वीपमें और कोई जाति दिखाई देती नहीं थी। उस समय केवलमात्र यह "जैन" लोग ही "म्लेच्छ" जातिके नामसे अभिहित होते थे। यही हिन्दुओंमें असभ्य थे और पौत्तलिक (मूर्त्तिपूजक) धर्मकी उपासना करते थे। क्षत्रियोंने इसी समय राज्य फैलाया। साकारवादी शैवस्थ राजाओंमें किसी किसीने उनकी वश्यता स्वीकार की थी; कोई कोई उनके धर्मसे दीक्षित हुए थे। अबतक ब्राह्मण लोग धर्म-प्रचार कामकी उपेक्षा करते आते थे। वह लोग प्रचारककी तरह धर्मका प्रचार करना चाहते नहीं थे। उनकी अपेक्षा ईश्वरके भेजे महापुरुष

---

* आजकलके जैन लोग बौद्ध धर्मके साथ अपने धर्मका निकट सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। फलतः पूर्व भारतके जैन सौदागर लोग "भिलसा" की "टोपो" को जैनियोंका मन्दिर समझते हैं। यह ठीक कहा जाता है, कि किसी समय जैन लोग जनसाधारणके सामने एक भिन्न सम्प्रदायके नामसे परिचित हुए थे। आश्चर्यका विषय यह है, कि "कोष" या अमरसिंहके अभिधानमें यद्यपि बुद्ध भगतकी प्रतिनिधि देवी, बौद्धधर्मके प्रवर्त्तक गौतमकी माता, "मायादेवीकी" नामावलीमें "जिन" शब्दका उल्लेख दिखाई देता है, किन्तु उसमें "जैन" शब्दका कोई भी दृष्टान्त नहीं है। "भागवतमें" लिखा है, कि बुद्ध "जिन"के पुत्र हैं; उन्होंने "किकुत देश" या बिहारमें जन्म लिया था।

और धर्म्मके प्रणयनकर्त्ताके नामसे परिचित होना ही प्रशंसनीय समझते थे। इसीलिये विदेशमें आत्मायोंकी स्मृतामें कमी हुई थी। किसी राजाके तत्त्व पूछनेके लिये आत्मायोंका सम्मान न करनेपर या उच्चाभिलाषी योद्धाके उनका उपदेश ग्रहण करनेका इच्छुक न होनेपर, दूर देशका कोई उनका आदर करता नहीं था। हिन्दूधर्म्म उन्नतिकी चरम सीमापर चढ़ गया था; इसलिये उन्नतिके साथ ही साथ अवनति और ध्वंसका बीज अङ्कुरित हुआ। भिन्न देशोंके आये हुए लोगोंसे मिलनेके कारण उनकी आचार-पद्धतिका कितना ही अंश हिन्दूधर्म्मके साथ मिल गया। सहानुभूति प्रकाश करनेकी जबरदस्त ख्वाहिश होनेपर, मनुष्य सहज ही आत्मोपयोगी कोई भी उपास्य देवता ढूंढ लेता है; तब फिर निराकार और निर्व्विकार देवतापर विश्वास करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती। * इन्द्रियज्ञानकी समझसे सामान्य

* एलफिन्स्टन कहते हैं, (History of India, i, 189) राम और कृष्णने मनुष्योचित भाव और कार्य्य द्वारा अधिक संख्यक उपासकोंका प्राण-मन आकर्षण किया था; क्रिस्तू ट शैवधर्म्ममें उतने लोग आकृष्ट नहीं हुए। हमारे मनमें आता है, कि "एडिनबरो रिविउ" पत्रमें देखा है, कि यह तत्त्व विशेष विस्तृतभावसे कहा गया है। उससे जान पड़ता है, कि योशुखृष्टने जैसा कष्ट भोगा था, उससे सचमुच ही खृष्ट-धर्म्मकी विशेष उन्नति साधित हुई थी; क्रूसावद्ध ईश्वरके प्रति सहानुभूति दिखानेके लिये कितनों होने खृष्टधर्म्म ग्रहण किया

एक काले प्रस्तर-लिङ्गकी पूजाकार उस समय किसीका भी मन-प्राय ठस होता नहीं था। * जिन्होंने धर्म्मतत्वकी मीमांसासे

था। सांड्के धार्म्मिक होनेपर उनके देवता गो-महिषादिका आकार धारण करते ;—जेनोफानकी यहाँ तेज सलाह सच जान पड़ती है ; क्योंकि, तब लोग साधारणतः देवताओंको मनुष्यकी आकृतिमें साकार कल्पना करना अच्छा समझते थे। (Grote, History of Greece, iv. 523, and Thirwall, History, ii 136.)

* हिन्दुओंका शैवधर्म्म या "लिङ्ग" उपासनाकी प्रथा ज्ञानमय ब्राह्मण्य-धर्म्मके एक परिवर्त्तनका निदर्शन है। जिस समय ब्राह्मण्य धर्म्म विशेष प्राधान्य पा जनसाधारणका भ्रम-संस्कार दूरकर उनलोगोंको पवित्र करनेकी चेष्टा करता था, उस समय यह बदलाव संसाधित हुआ। अबतक भी भारतके साधरण मनुष्य लोग हरेक वस्तुमें ही ईश्वरकी विद्यमानताका निदर्शन देखते हैं। ब्राह्मणोंने मूर्त्तिपूजकोंको यह शिक्षा दी थी, कि उपासनाके समय काले पत्थरको निराकार विश्वनियन्ता समझना पड़ेगा। उन्होंने बौद्धधर्म्मावलम्बी मूर्त्तिउपासकोंको भी इन्द्रियज्ञानके सम्बन्धमें उपदेश देनेकी क्षमता प्रदान की थी। यह ज्ञान आजकलका जान पड़ता है, कि लिङ्ग ही पुनरुत्पादिका शक्तिका प्रतिरूप है। ऐसा ईश्वरज्ञान थोड़े लोगोंमें ही प्रचलित है। यह लोग देवदेवीके साधारण स्वरूप-मूर्त्तिमें अतर्कित भावसे और उच्छृङ्खलरूपसे शुभ-शक्तिका आविर्भाव देखते हैं। (Compare wilson, "Vishnoo Pooran," Preface lxiv)

जड़वादी बौद्धोंको चुप किया था, जिन्होंने नास्तिक चार्व्वाकोंके *, धर्म्मविषयक घोर नास्तिक्य मत का खण्डन किया था, उस समय वह शङ्कराचार्य्य भी गुण और शक्तियोंकी उपासना स्वीकार करनेपर बाध्य हुए थे। यहांतक, कि शङ्कराचार्य्य-प्रचारित धर्म्ममें भी प्रतिमाकी अर्चना होती और देवमन्दिरमें मट्टी या पत्थरकी देव-मूर्त्ति यां मूर्त्ति-विहीन शिवलिंग (शिव लिङ्ग) स्थापनकी व्यवस्था थी। जो आत्मस्वरूप थे, उनकी कोई उपासना करता नहीं था।

---

* अध्यापक विलसन्ने ("Asaitic Researches." xvi, 18) चार्व्वाक नामक किसी योगी या मुनिके नामसे इस "चार्व्वाक" सम्प्रदायकी उपाधि निष्पन्न की है। किन्तु ब्राह्मण लोग, (अन्ततः भारतके ब्राह्मण लोग) इस सम्प्रदाय और सम्प्रदायके गुरु,—इन दोनोंका यह विशेष नाम "चारु" (प्रवृत्तिजनक अत्युत्तम) और "वाक" (वाक्य, वक्तृता) दो शब्दोंसे निष्पन्न किया है। इसतरह निष्पादित होनेसे यह सम्प्रदाय तार्किक, भाषाविद् या प्रतारक कहा जाता है। वस्तुतः अन्तमें सम्प्रदाय इस नामसे ही परिचित हुआ था। इस सम्प्रदायके सभी, बड़े जड़वादी हैं; यह लोग शारीरिक उपादानोंकी ठीक कोई अवस्था या अवस्थासमूहके एकत्रीकरणके नियमसे विवेक-शक्तिकी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं। जान पड़ता है, कि इस सम्बन्धमें उन लोगोंने शरीरतत्त्वविद् डाक्तार लरेन्सके मतका अनुभव किया था। डाक्तार लरेन्स ऐसा समझते थे, कि यकृत जैसे पित्तका आधार है, वैसे ही मस्तिष्क और चिन्ताशक्तिका आधार है।

सच्चे धर्म्मोपासक लोग पालनकर्त्ता "विष्णु," संहारकर्त्ता "शिव," सूर्य्यके प्रतिनिधि देवता और सिद्धि-विधायक गणेश प्रभृति देवताकी पूजा करते हैं ; या प्रकृतिकी पुनरुत्पादिका शक्तिको ही देवीरूप समझ उसकी उपासना करते हैं। वह समझते हैं, कि जगदीश्वर निश्चय ही उनकी प्रार्थना सुनते और पूजा ग्रहण करते हैं। *

पुराने समय ब्राह्मण लोग गृहाश्रममें या निर्ज्जनमें धर्म्मोपासना करते थे। बौद्धोंकी धर्म्मोपासना मामूली जगहमें या धर्म्मसभामें होती थी। ब्राह्मण-जातीय तपस्वी लोग जनसमागमसे अलग रहते थे ; किन्तु बौद्धोंके संन्यासी सम्प्रदाय या उपासक सम्प्रदायमें मिल जाते थे। संन्यासी होनेसे पहले ब्राह्मण लोग गृहधर्म्म आचरण करते थे ; किन्तु बौद्ध अविवाहित रहते ही प्रतिज्ञाबद्ध होते थे, और अधिकांश इन्द्रिय-सुख-सम्भोग परित्याग करते थे। विजित जातियोंके ऐसे आचार-व्यवहारका प्रभाव विजेता लोगोंमें फैला था। शङ्कराचार्य्यने विशुद्ध धर्म्मभावको दृढ़ करनेकी चेष्टामें, "सेण्टबेसिल" और "पोप हगोरियसके" ही तरहके मतका इकट्ठा समावेश किया। † उन्होंने ब्राह्मणसंन्यासियोंके लिये एक मठ बनवाया ;

---

* जिन पांच जातियोंकी बातें कही गई हैं, वह सभी हिन्दूधर्म्मके विशुद्ध दलोंमें श्रेष्ठतम हैं।

† अध्यापक विलसनने "एसियाटिक रिसर्चेके" सोलहवें और सत्रहवें खण्डमें हिन्दू जातिके लिये जो वर्णना प्रदान की है, उसके लिये हरेक विद्यानुरागी और अनुसन्धित्सु मनुष्य

उन्होंने दण्डकमण्डलुधारी असभ्य निष्कंचनवासी इन्द्रियोंको स्वतन्त्र एक सम्प्रदायमें परिणत किया; तब यह संन्यासी सम्प्रदाय "मठवासी" या "भिक्षुक"के नामसे गिना गया; यह लोग भिक्षा-वृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करने लगे और उन्होंने पवित्रताचरण करना आरम्भ किया। * शङ्कराचार्य्यका यह संस्कृत धर्म्म फिर

उनके जरूरी हैं। यह संक्षिप्त पुस्तक भारतवर्षमें कितने ही लोगोंके घर मौजूद है; विशेषतः "भक्तमाला" या संन्यासियोंका इतिहास और उसका सारसंग्रह सबके ही पास दिखाई देता है। इसके अवश्य किसी पण्डितकी टीकाके साथ मिला यह गभीर रहस्यपूर्ण विषय पढ़ना अधिकतर सुविधाजनक है। किन्तु दुःखका विषय यह है, कि अध्यापक विलसनने सम्प्रदाय समूहका धर्म्ममत और संस्कार विषयक उन्नतिकी बातें लिखनेकी चेष्टा नहीं की। हिन्दुओंके सम्बन्धमें मिष्टर वर्डने जो विस्तृत कीमती कई एक खण्ड प्रकाशित किये हैं, उनमें भी इन सब बातोंका उल्लेख नहीं है। "दबीस्थान"के लेखक मोसाय फानीकी पुस्तकमें भी घटनावलीका सामञ्जस्य और न्यायसङ्गत बातोंका अभाव है। फानीके कुछ प्रगल्भ और सरलविश्वासी होनेपर भी, इन प्रतिभाशाली मुसलमान लेखकका मत और वर्णन विशेष प्रयोजनीय है। इन्होंने प्रायः दो सौ वर्ष पहले जन्म लिया था। कप्तान ट्रायरने उनके इस "दबीस्थान"का अनुवाद किया है; इस लिये जरा तलाश करनेपर हरेक अङ्गरेज यह महामूल्य ग्रन्थ पा सकते हैं।

* शङ्कराचार्य्य दक्षिण भारतके एक ब्राह्मण थे। अध्या-

परिवर्त्तित हुआ। यह "दण्डी" लोगों शिवको ही एकमात्र उपास्य देवता ग्रहण करनेसे वह और भी ज्यादा अलग हो गये। ईश्वरके प्रकृत स्वरूपकी कल्पनाकर उस समयसे वह शिवकी ही उपासना करने लगे और शीघ्र ही और सब लोगोंने भी उनके पदाङ्कका अनुसरण किया। खृष्टीय ग्यारहवीं शताब्दिमें "रामानुजने" अपने नामानुसार ब्राह्मणोंका एक धर्मसम्प्रदाय प्रतिष्ठित किया। आचार सम्पर्कीय कितने ही परिमार्ज्जित नियम उनमें प्रवर्त्तित हुए। वह लोग विष्णुको ही प्रकृत ईश्वर समझ

एक विलसनके मतके अनुसार ('As. Res' xvii 180) शङ्कराचार्य्य आठवीं या नवीं शताब्दिमें आविर्भूत हुए। किन्तु यह गिनती सन्देहमूलक है। कारण, साधारणतः कहा जाता है, कि रामानुज शङ्कराचार्य्यके शिष्य और भाञ्जे थे; सुतरां विलसनकी गिनतीसे उनके जन्मकी तारीख एक शताब्दि या डेढ़ सौ वर्ष बाद होना ही सम्भव है। उन्होंने चार "मठ" (संन्यासियोंका मन्दिर या चार धर्म-सम्प्रदाय) की प्रतिष्ठा की थी। उनके दश शिक्षित शिष्योंमें जिन चार मनुष्योंने उनके प्रचारित धर्म-मतका दृढ़तररूपसे अवलम्बन किया था, वही उन चारो "मठ" के प्रधान पण्डा और रक्षक नियुक्त हुए। शङ्कराचार्य्यके इन चारो शिष्योंके अनुचर लोग "दण्डी" नामसे अभिहित होते हैं। वा इनके साथ छः नास्तिक सम्प्रदायके पुरुष मिल कर इकट्ठे "दशनाम" नामसे परिचित हुए हैं। (Compare, wilson, "As. Res" xvii 169 &c.)

उनकी उपासना करते थे; सर्व्वशक्तिमान् जगदीश्वरकी भिन्न भिन्न मूर्त्तियों और गुणकी कल्पनाकर साधारणके सामने उन्होंने ईश्वरकी मर्य्यादाहानि की थी। * प्रवर्त्तित संस्कृत नियमके प्रतिपालन और ईश्वराज्ञाके पालनकी आवश्यकता

* रामानुजकी वैदाइशके सम्बन्धमें कितने ही मत प्रचलित हैं। ग्यारहवीं शताब्दिके पहले भागमें बारहवीं शताब्दिके आखिरी भागके भीतर किसी समय रामानुज मौजूद थे। (wilson, "As. Res" xvi 28, note) मध्यभारतमें ऐसी किंवदन्ती है, कि रामानुजने अपने शिष्य (शङ्कराचार्य्य) को कहा था,—"उन्होंने (शङ्कराचार्य्यने) जिस पथका अनुसरण किया है, वह सच्ची राह नहीं है।" सुतरां रामानुजने गुरुत्या-गकर "मठ" या शिक्षकश्रेणीके प्रतिबोधक चार "सम्प्रदाय" या धर्म्म-सम्प्रदाय प्रतिष्ठित किये। उसी समयसे सम्प्रदायके उपयोगी समझ उन्होंने विष्णुको ही एकमात्र उपास्य देवताके नामसे ठीक किया था। रामानन्दने अपने धर्म्म-सम्प्रदायको "श्री" या "लक्ष्मी" नामसे अभिहित किया। इसके उपरान्त और भी तीन सम्प्रदाय स्थापित हुए पहला माधव द्वारा दूसरा विष्णुस्वामी और उनके परिचित शिष्य बल्लभ द्वारा और तीसरा निम्बार्क या निम्बादित्य द्वारा प्रतिष्ठित हुआ। यद्यपि यह सब लोग वैष्णव थे, तथापि इनमें हरेकका धर्म्म-सम्प्रदाय यथाक्रम ब्रह्मा, शिव और ब्रह्माके पुत्र सनकादिके नामके अनु-सार परिचित था। (Compare wilson, 'As, Ros," xvi 27 &c)

उपलब्धिके लिये ही इस नये सम्प्रदायकी सृष्टि हुई थी। आचार्योंका शरीर सब समय ही पवित्र समझा जाता था। सभी विश्वास करते, कि धार्म्मिक बौद्धधर्म्मावलम्बी इच्छा करनेसे इस जन्ममें ही आत्माको देहमुक्त कर ईश्वरमें लीन हो सकते हैं। जब शङ्कराचार्य्यने कितने ही प्रिय शिष्योंको अवाध्य और अपने धर्ममें विचलित देख सम्प्रदायसे निकाल दिया, तब रामानुजने देखा, कि इस समय निराकार ईश्वरकी ओर लोग उतने श्रद्धावान नहीं हैं; सुतरां उन्होंने उनके शिष्योंको गुरुभक्तिकी प्रवृत्ति किसी मनुष्यकी ओर अर्पण करनेका उपदेश दिया। कुछ दिनोंके बाद सभी ऐसा समझने लगे, कि "गुरु" के लिये सब चीज ही परित्याग की जा सकती है और "तन, मन, धन," (शरीर, आत्मा और पार्थिव ऐश्वर्य्य),—सबको ही गुरुके नामसे त्यागना पड़ेगा। * धर्म्मगुरुकी पूरी अधीनता स्वीकार करनेपर धर्म्मोक्त देवताओंके सम्बन्धमें जीवन्त धारणा बद्धमूल होती है। जो सब असभ्य जातियां अपना धर्म्म छोड़ दूसरा धर्म्म ग्रहण करती हैं, उनके हृदयमें ईश्वर-प्रतीति असम्भव है; धर्म्मकार्य्यमें दृढ़ मनोयोग न होनेसे धर्म्मज्ञान पाना दुर्लभ है। इस मतके बदलनेके कारणस्वरूप रामानुजने प्रतिपन्न किया था, कि ऐहिक धर्म्मकार्य्यके कितने ही उपकरण आवश्यक हैं। † शान्तिप्रिय शिक्षित

* Compare Wilson, Asiatic Researchs, xvi, 90,

† पाठकगणको शायद याद रह सकता है, कि लाभिगने एक शत्रु जीतनेके बाद थीशुमें ईश्वरविश्वास और उसकी

सम्प्रदायोंके दृढ़विश्वासोंके धर्म्ममतको परीक्षासे ही उनकी सरलता और दृढ़ताका परिचय पाया जा सकता है। इस कारण भारतीय धर्म्मसंस्कारकोंने मुक्तिप्रार्थियोंसे अन्धविश्वास और आशाकी ऐसी प्रमाणोक्ति संग्रह की थी।

जैसे धर्म्माचरणकी भिन्न भिन्न राहें प्रचलित होने लगीं; दर्शनशास्त्रीय ज्ञान और सिद्धान्त भी उसके साथ सर्व्वभावसे परिवर्त्तित हुआ। विद्या, अर्थ और लोगोंके साथ अधिक परिमाणसे मिलनेसे दारुण नास्तिकताकी ओर साधारणतः सबकी इच्छा हुई। छः नास्तिक सम्प्रदायके विरुद्धवादी छः दृढ़ धर्म्ममत और धर्म्मसम्प्रदाय प्रवर्त्तित हुए। मानसिक और प्राकृतिक दृश्यावलीकी तर्कशास्त्रकी सहायतासे आलोचनाकर, ईश्वर-ज्ञान मीमांसाकी चेष्टा होने लगी। * परमाणुका सत्त्वा और अविनश्वत्व और ज्ञान और विवेक प्रभृतिके सम्बन्धमें विचार आरम्भ हुआ।

कहानी सुन कैसा क्षोभ और अनता प्रकाश की थी। क्लोविस अपनी स्त्रीके धर्म्मसे दीक्षित हो "रीमजे" के पुराने धर्म्मोपदेशकका शिष्यत्व ग्रहण किया था। उन्होंने कहा था,—"यदि मैं अपनी साहसी फ्रान्सीसी सैन्यदलके साथ उपस्थित रहता, तो ऐसी अवस्थामें यीशुका प्रतिशोध लेता।" (Gibbon "Decline and Fall of the Roman Empire," vi 302.) मुसलमान लोग भी अलीके पुत्र हुसेन और तैमूरके सम्बन्धमें ऐसा ही कहते हैं। विजयी तैमूरने कहा था,—"सत्यपर इमामकी प्राणरक्षा करने या, हत्या का प्रतिशोध लेने सुदूर भारतवर्षसे मैं बहुत शीघ्र आता।"

* उनकी छओं श्रेणी ही युक्ति तर्क और स्वभाव (शरीर)

इन सब बातोंको उठा वादविवाद चलने लगा, कि जीवन और आत्मा दोनो ही एक दूसरेसे अलग हैं,—फिर आत्मा और

के विषयमें यूनानी लोगोंकी तीन दार्शनिक सम्प्रदायों जैसी है। या उल्लिखित बातोंमें "ईश्वरवादी" (या नीति) हेतु और इन्द्रियके सम्बन्धमें यह श्रेणी या सम्प्रदाय समूह प्रतिष्ठित हुए हैं। जैमिनीका "पूर्व्व मीमांसा" और व्यासका "उत्तर मीमांसा" या वेदान्त, वेदके अवलम्बनसे लिखा है। "पीथागरासके" नैतिक मतके साथ उनका अनेक सादृश्य दिखाई देता है। गौतमकृत "न्याय या तार्किक" मत जेनोफिल लोगोंके तर्कशास्त्रके समान है। कपिलका सांख्यदर्शन और पातञ्जलका परिवर्त्तित सांख्य-दर्शन या "योग" दोनो ही नास्तिकताके भावसे भरे हैं। वह खेलके जड़जागतिक "आइओनिक" मतके समान जान पड़ता है। किन्तु कणादके "वैशेषिक मीमांसा"का "तार्किक मत और इन्द्रिय-सम्बन्धीय मत दोनो ही मौजूद है। यद्यपि वैशेषिक मत "एटोमिक" इस विशेष नामसे सांख्य या नास्तिक मतके साथ एक ही जातिमें गिनती होती है; किन्तु वह पूर्व्ववर्त्ती मतका विरुद्धसम्पर्कीय या गौतमके न्यायशास्त्रके समान जान पड़ता है। मिष्टर वार्डने- ("On the Hindoos" ii, 113) हरेक शास्त्रकारको बराबर तुलनाकर उसका सादृश्य दिखानेकी चेष्टा की है। किन्तु अबतक भारतीय दर्शनशास्त्र या यूनानी लोगोंके धर्म्ममतके प्रकृत गुरुत्वके विषयमें हमलोगोंकी समझ सीमाबद्ध है; इतरां ऐसे सामञ्जस्यकी सत्यता और कार्य्यकारिता ठीक करना भी मुशकिल है। इन दो सम्प्रदायोंकी विशेष बराबरीके सम्बन्धमें इसफिन्सटनने

जीवन दोनों ही एक और ईश्वरके बराबर हैं। ऐसे विचार-मीमांसाके फलसे कोई कोई नास्तिक हो गये, कोई साकारकी उपासना करने लगे; परन्तु ज्यादा मनुष्योंने "माया-सूत्र" ही

जो कितनी ही न्यायसङ्गत युक्तियां दिखाई हैं वह देखने लायक है। (History of India i, 234)

आजकलके छः नास्तिक सम्प्रदायोंमें चार बौद्ध सम्प्रदाय दिखाई देते हैं। जैसे,—"स्रोतान्त्रिक, माध्यमिक, योगाचार और वैभषिक।" इसके भीतर दो जैन सम्प्रदाय भी हैं,—जैसे; "दिगम्बर" और "श्वेताम्बर"। "दिगम्बर" सम्प्रदाय समझता है, कि स्त्री जाति मुक्ति पानेमें असमर्थ और उसकी आत्मा भी अमर नहीं है। अगर भिन्न भिन्न जैन सम्प्रदायको एक बड़ी श्रेणीके भीतर किया जाय, तो ऐसा होनेपर "चार्व्वाक" या "वार्हस्पत्य" सम्प्रदाय उपरोक्त छः के षष्ठ कहे जा सकते हैं। यह लोग घोर नास्तिक हैं; प्रचलित धर्ममतमें किसीका भी यह अनुसरण नहीं करते। हिन्दू समझते हैं, कि "जुपिटर" ग्रहोंके प्रतिनिधि वृहस्पति—नास्तिकताके आदि देवता हैं। कारण साधारण लोगोंमें ईश्वरकी अर्पित क्षमताको, ही धर्म समझते हैं और बड़े आग्रहके साथ उसकी ही उपासना करते हैं। ईश्वरकी चिन्ता और सत्पथपर रह वह लोग इसीतरह धर्माचरण करते हुए धर्मके अधिकारी होने लगे। इसी समयसे ही वृहस्पतिने तरह तरहकी भ्रमात्मक बातें पैदा कीं; इसलिये ही जनसाधारणकी विचारशक्ति घटी और वह लोग कर्त्तव्यनिर्णय कर न सके।

अवलम्बन किया। इस माया-सूत्रके अनुसार इन्द्रिय-ज्ञान ही इहजीवनका एकमात्र परिचालक हो खड़ा हुआ। माया-सूत्रावलम्बी वाह्य जगत्की किसी चीजको भी सत्य और दीर्घ-कालस्थायी कहकर स्वीकार नहीं करते। इस सूत्रको परवर्त्ती संस्कारकोंने आग्रहके साथ से नीति और धर्म्म-विषयमें उपदेश देना आरम्भ किया। *

---

*हिन्दुओंका "माया-सूत्र" नीति, काव्य और दर्शन; इन तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है।

"नीति शास्त्रानुसार"—माया सलोमनका गल्प, (Eccle·i-astes, i and ii.) या जगत्की असारत्वके सिवा और कुछ भी नहीं है। इसीलिये कवियोंने कहा है, कि संभवतः माया इन्द्रजालकी तरह भ्रमात्मक और अनिष्टकर या नैतिक भ्रम-पूर्ण है। (Asiatic Researchee, xvi, 161) मिष्टर मिलमानने विज्ञताके साथ आलोचना कर देखा है, कि धर्म्मप्रवर्त्तक सेराट्जन, प्लेटो और "लगोज" के (ईश्वर-वाक्य, यीशु) जैसी व्याख्या की है; भारतीय माया-सूत्र भी उसी भावसे ही परिगृहीत हुआ है। (Note in "Gibbon"s History, iii, 312.) हिन्दुओंने पापपूर्ण जागतिक चिन्ताके "विषयमें मायासूत्र" ग्रहण किया है। सेराट्जनने यूनान और रोमनोंको जगदीश्वरके साथ यीशुख्रष्टके सम्बन्धकी प्रकृति समझा दी है; उन्होंने ईश्वरका स्वरूप कहते हुए कहा था, कि यीशुख्रृष्टसे ही ईश्वर-सम्बन्धीय ज्ञान प्रकट होगा।

"काव्य" शास्त्रानुसार,—"माया" ईश्वर और ऐश्वरिक शक्ति-

ख्रृष्ट-जन्मके हजार वर्ष बाद भी हिन्दूधर्म्म और नीतिशा-
स्त्रकी ऐसी ही अवस्था हुई थी। क्रमिक जातिविचार और

सम्पन्न वीरोंकी दृष्टिशक्ति प्रतिरोधकारी सूक्ष्म आवरण विशेष है;—इससे उनकी दृष्टिशक्ति या इन्द्रियज्ञान सीमाबद्ध हो गया है। (Heeren's Asiatic Nations, iii, 203.) उसी तरह प्लासने डाइओमिडकी आंखोंका अन्धकार दूरकर ईश्वरकी स्वर्गीया मूर्त्ति नश्वर मनुष्यकी आंखोंके आगे कर रखा है (Iliad, v)। किन्तु लोगोंका ऐसा विश्वास है, कि स्वतः-सिद्ध अपूर्ण शक्तिके कारण मनुष्य नैसर्गिक जगतके विषयमें पूरा ज्ञान पानेमें अक्षम हैं।

"दर्शन"-शास्त्रके मतसे,—वेदान्त दर्शनमें "मायासूत्र" जिसतरह वर्णित हुआ है, वह बार्कलीके मनस्तत्त्वके बराबर है। (यह वेदान्तसूत्र सांख्य-सूत्रकी प्रकृति है। जेनोफेनके सृष्टिविवरणके साथ कई अंशमें इसकी समता दिखाई देती है और हीराक्लिटासकी असीमशक्तिसम्पन्न अनन्त ईश्वरलीलाके साथ इसका पूरा सादृश्य मौजूद है।) बेकनके आइडोला-सूत्र और माया-सूत्र,—दोनो हीका उत्पत्तिस्थल एक है; ऐसा इन्द्रजाल या भ्रममूर्त्तिकी तरह माया प्लेटोके "Idea" या "सत्य" मतके विपरीत है। साधारणतः माया कहनेसे प्रकृत वस्तुके विरुद्ध धर्म्माक्रान्त अनुमेय या अनुभवनीय वस्तु ही समझी जाती है,—दृष्टान्त स्वरूप, साधारणतः रस्सीको जैसे सर्प समझकर भ्रम होता है। बड़े ही आश्चर्यका विषय यह है, कि इङ्गलैंड और भारतवर्ष,—

जातिविभागके साथ ही साथ लोगोंको पुराने धर्म्मग्रन्थोंकी उपयोगिता भी विशेषरूपसे घट गई। अधिकांश लोग मैनिक

दोनों स्थानोंमें ही बार्कलेकी स्वप्न विषयक कल्पना और ब्राह्मणोंके ऐन्द्रजालिक मतका एक ही प्रकार युक्ति द्वारा खण्डन किया जा चुका है। एक उत्तेजित हाथी द्वारा शङ्कराचार्य्य विताड़ित हुए थे। किन्तु शङ्कराचार्य्य अपनी देह और अन्यान्य मनुष्योंकी देहको असार समझते थे। जब पैरमें पत्थरके टुकड़ेकी चोट लगनेसे वह पीछे हटे, डाक्टर जनसन् समझते हैं, कि तभी उनका मत विध्वस्त हुआ था। विपक्षके अनुचरोंकी बुद्धिशक्तिकी अपेक्षा शङ्कराचार्य्यकी बुद्धिशक्ति तेज थी। जब शङ्कराचार्य्यके विरुद्धवादी मनुष्य क्षुद्र प्राणीकी हत्याकी आशङ्कासे मन्दपदविक्षेपके लिये उनका ठट्ठा करते, तो वह तिरस्कार कर कहते, कि यह सब इन्द्रजाल है। वह कहते, प्रकृतपक्षमें शङ्कर भी नहीं, हाथी भी नहीं; भागना भी नहीं,—यह सब इन्द्रजाल है। (Dedistan ii 103)

चौथे माया राजनीतिक हिसाबसे भी व्यवहृत होती है। "उशनाशास्त्र" या चौथे "उपवेद" की "नीति" या "साहित्य" के अंशमें ऐसा ही कहा है। इसके अन्यान्य विषयोंमें शासनकर्त्ताओंके कर्त्तव्य-विषयकी भी बहुत मीमांसा है; यह वाञ्छित वस्तुके पानेका उपायस्वरूप भी कहा जाता है। वक्तव्य विज्ञान-शास्त्रके अनुसार "माया" अर्थसे छिपा भाव या छलना या राजनीतिक कौशल समझा जाता है। इससे पूरी प्रतारणा समझी नहीं जाती, कारण झूठ और प्रतारणा इसमें वर्जित

और ब्राह्मण-सम्प्रदायसे पूरी तरह अलग हुए। ईश्वरका बहुत्व प्रचारकर और समाजमें संन्यासी सम्प्रदायको धार्म्मिक गार्हस्थ्य सम्प्रदायकी अपेक्षा श्रेष्ठतर स्थान अर्पणकर, ब्राह्मणोंने अपना प्राधान्य नष्ट किया था। इसलिये थोड़े दिनोंमें ही उनके देवदेवीगण आपसमें प्रतिद्वंद्वी जान पड़ने लगे और उपासक दलमें घोरतर शत्रुता शुरू हुई। इस बीच क्षत्रिय-जाति अपने इच्छानुयायी विप्र और सुनिपुण नामक पदपर अभिषिक्त हुई और एक धर्म-शासनसे दूसरा और एक ईश्वरसे दूसरे ईश्वरको श्रेष्ठतर समझने लगी। इसी समय प्रकृत धर्म्माराधनाकी प्रचार-प्रतिपत्ति कम होने लगी; अधिकांश लोग धर्म्मयाजक और प्रचारककी योग्यता, सरलता और धर्म्मनिष्ठाके प्रति सन्दिग्ध हो उठे। परन्तु इन उपदेष्टा सम्प्रदायोंमें भी आपसमें मतानैक्य उत्पन्न हुआ।

इसी समय एक दल नई जातिका आविर्भाव हुआ; और एक नये धर्म्ममतको फैलानेसे भ्रष्ट हिन्दूधर्म्म ध्वंसकी राहपर बढ़ा। "हिजरी" के पहले और दूसरी शताब्दिके भीतर भारतवर्षमें पुरानी अरब जातिका आक्रमण और लूटनेकी यातना उतनी मालूम नहीं हुई। जब अब्बासईद लोग "खलीफा" पदपर बैठे, तबसे ही वह लोग बहुत दूर फैले हुए राज्यमें दृढ़ता-सम्पादनमें मनोयोगी हुए। स्पेनके अलग होनेसे उनका राज्य बहुत कुछ दुर्बल हो गया था; सुतरां दूसरे समय वह और

है। कहते हैं, कि मायावश प्रभु प्रभुता भूल जाता है; मनुष्यजाति भी वश्यता स्वीकार करती है।

दूर देशमें राज्य फैलानेके लिये असाध्य कार्य्यमें प्रवृत्त नहीं हुए; उन्होंने मनमें सोचा, कि विद्रोहसे वह राज्य विच्छिन्न हो सकता है। अधिकन्तु अरब जातिमें वह एकता, उत्साह और वीरत्व न रहा; उनके प्रतिनिधि अरब लोग बड़े स्वार्थपर और विद्रोही हो पड़े थे। धर्म्म-प्रवर्त्तक मुहम्मदने देशवासियोंको पहले जो शक्ति प्रदान की थी, उससे वह लोग अपने राज्यके फैलानेकी क्षमता समझ सके थे। उस समय दिल्लीके हिन्दुओं और कुस्तुनतुनियाके खृष्टानोंपर आधिपत्य फैलानेके लिये मुसलमान-धर्म्ममें सहिष्णुताकी और नये विश्वासके उद्रेककी आवश्यकता हुई थी। वह उत्तेजना-शक्ति मुसलमानोंने "खुर्द" नामक पहाड़ी जाति और प्रधानतः पशुपालक "तुर्कमान" जातिसे पाई थी। इन "खुर्द" और "तुर्कमान" लोगोंने किसी अज्ञात कारणवश एकबार उपजाऊ भूमि और धनधान्यपूर्ण एशिया देश समूहपर आक्रमण किया था। खृष्टीय नवीं शताब्दिमें इस युद्धप्रिय पशुपालक जातिने सिन्धुनदको छोड़ काश्यपसागरके निकटवर्त्ती स्थानोंमें बसती बनाना आरम्भ किया। पुराने समय "गथ" और "भाण्डल" जाति और उनके आदिपुरुष "आगाष्टस" और "ऐजवर्ड" राज्यमें प्रवेश पा जिस तरह शत्रुके हाथसे राज्यपर अधिकार किया था, इन लोगोंने भी उसी तरह मुहम्मदके साम्राज्यपर अधिकारकर शासन-संस्था फैलाया था। तुगरलबेग और सलादीन,—क्लिवो और थियोडोरिककी दूसरी शाखा विशेष है। बगदादके मुल्ला और सय्यद लोग यूनानी और लाटिन धर्म्ममन्दिर सम्प्रदायके "बिशप" और "डिकन" लोगोंकी तरह काफिरोंको अपने धर्म्ममें

दीक्षित करनेके लिये उत्सुक हुए थे। भिन्न देशवासी जो सब असभ्य जातियां समय समयपर यूरोपपर आक्रमण करतीं. वह भी खृष्टधर्म्ममें दीक्षित हुई थीं। जो एशियापर आक्रमण करते, उन्होंने भी अपने लिये उपयोगी समझ अपनी इच्छासे और अनुरागवश "इसलाम धर्म्म" ग्रहण किया था। शिक्षा और सभ्यताके फलसे उनका अनिश्चित और भित्तिहीन विश्वास दूर हुआ और उन्होंने सर्व्वशक्तिमान ईश्वरपर विश्वास स्थापन किया। इस समय वह लोग धर्म्मबलसे चलते हैं; राज्य फैलाना उनका उद्देश है। इस धर्म्म और राज्य फैलानेकी लालसासे परिचालित "तुर्क" जातिने बेजनटाइन खिलाफ लोगोंके ध्वंसप्राय राज्य और भारतवर्षपर आक्रमण किया

१००१ ई० में मुहम्मदने सिन्धुनद पार किया। इसके कुछ दिनों पहले शङ्कराचार्य्यने विधर्म्मियोंकी उन्नतिमें बाधा देनेकी वृथा कोशिश की थी। जिन तरह तरहके धर्म्ममतोंके प्रचलित रहनेसे देशवासी जन साधारण किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुए थे, उन्होंने उन सब विभिन्न मतोंकी संस्कारसाधनकी चेष्टा की; किन्तु उसमें वह कृतकार्य्य हो नहीं सके। पञ्जाब इसीप्रकार मुसलमानोंका अधिकृत हुआ और मुलतानको म्लेच्छोंके पहले ही मुसलमानोंने कन्नौज और गुजरात लूटा। ११८४ ई० में "गोरियों" ने "गजनी" के लोगोंको राज्यसे विताड़ित किया। इसकी अपरान्त उन लोगों द्वारा बङ्गाल देश अधिकृत हुआ। १२०६ ई० में जब "इबैक" तुर्कोंने कृतपूर्व्वक उनके राज्यपर अधिकार कर लिया, तब हिन्दुस्थान मुसलमान राज्यके एक स्वतन्त्र अंशरूपमें बदल गया। पीछे प्रायः डेढ़ सौ वर्षके भीतर ही समग्र

भारतवर्ष पर मुसलमानोंने आधिपत्य स्थापित किया। खृष्टीय तेरहवीं शताब्दिमें मुगल और पन्द्रहवीं शताब्दिमें बहुत ज्यादा अफगानजाति भारतवर्षमें आने लगी। उनके आनेसे परवर्त्ती शासन-कर्त्ताओंकी क्षमता दृढ़ हुई; पराजित जातिकी भाषा और भावमें धीरे धीरे बदलाव उपस्थित होने लगा। खिलजी तुगलक और लोदी लोग इतने असभ्य थे कि वह अपने दुराग्रहका कारणतक ढूंढना चाहते नहीं थे। वह मातहतोंके विषयमें इच्छानुसार व्यवहार करते थे सही, किन्तु प्रचलित कानूनका उल्लंघन करते नहीं थे। धर्ममें दीक्षित करना और बहुत ज्यादा कर अदा करना,—इन दोनोंमें अन्तिमको प्रशंसनीय न समझनेपर भी वह उसे ही ज्यादातर लाभजनक समझते थे। उनकी प्रतिष्ठित कितनी ही मसजिदें उनकी धर्मनिष्ठाकी और वदान्यताकी गवाही देती हैं। उन्होंने अननुसरणीय "चान्द्र" वर्षके बदले "सौर" वर्ष ग्रहण किया था। उनके इस व्यवहारसे समझा जाता है, कि वह लोग रोज़गार कर्त्तव्यके विषयमें लापरवाही करते नहीं थे सही, किन्तु कृषिकार्यमें पूरे उदासीन थे। *

---

* अमलमें सौर या फाल्गुनिक वर्ष "शाहूर सूर्य,"—या और भी दूसरा भावमें "शूर सूर्य",—नामसे अभिहित होता है। अरबी महीनोंके वर्षका भी यही नाम है। ईस्वी चौदहवीं शताब्दीके भीतर या १३४१ और १३४४ ई० में तुगलक शाहने पहले इस "सौर" वर्षको दक्षिणमें चलाया। इस समय महाराष्ट्रीय लोगोंके बहुत जरूरी दलीलपत्र भी इस वर्षका

मुसलमान लोग रीति प्रकृतिमें भारतवासियों जैसे हो गये थे। खृष्टीय षोलहवीं शताब्दिमें अकबरने दोनों मतका उपादानसमष्टि इकट्ठाकर जातीय शासन-प्रणाली या राजतन्त्र राज्य-प्रतिष्ठाका उपाय उत्पन्न किया। मुसलमानोंके दिलमें ऐसा प्रतिघात उपस्थित हुआ, कि राजनीतिक वश्यता-स्वीकारके लिये सब समय सामाजिक एकता साधित नहीं होती। औरङ्गजेब अधीर हो पड़े। औरङ्गजेबकी चञ्चलताके फलसे मुगलवंश शीघ्र ही लोप हो गया।

उल्लेख करते हैं। हिन्दी (मरहटी) अक्षरोंमें अरबी बोलीमें यह लिखा जाता है। (Compare Princep's useful tables, ii, 30, Who refers to a Report, by Liut-Col. Jervis on Weights and Measures.) भारतवर्षके अन्यान्य स्थानोंमें जितने "फसली" या "सन्" (शस्य) वर्ष प्रचलित हैं, वह अकबर और शाहजहांके राज्यके समयमें चले हैं। इस समय भी इसका व्यवहार दिखाई देता है। यहांतक, कि अङ्गरेज लोग भी मालगुजारीके हिसाबकी बहीमें ऐसे ही वर्ष (फसली) प्रयोग करते हैं। ऐसे प्रत्येक वर्षकी गिनती, खृष्टीय शकको १ली जुलाईसे आरम्भ होती है; मुसलमान लोग हिजरी आर हिन्दू "शाक" (शक) और "सम्वत्" प्रभृति नाम व्यवहार करते हैं। इसकी अपेक्षा और सरलताका निदर्शन और क्या हो सकता है? उस समय अङ्गरेजोंके सर्वव्यापी प्राधान्यके कारण यह उपयोगी मत सहज ही प्रचलित हुआ था।

और एक नये सम्प्रदायने प्रभुत्वने भारतवर्षके अधिकांश मनुष्योंके मानसक्षेत्रमें धीरे धीरे आधिपत्य फैलाया था। वह क्षत्रियोंके समान थे; परन्तु ज्यादा जगहोंमें वह क्षत्रियोंकी अपेक्षा अधिक साहसी थे। शङ्कराचार्य्यने जिस वैदिक मतकी सरल अंशका परित्याग किया था, उन्होंने उसी अंशको फिर ग्रहण किया। यह नया सम्प्रदाय ब्राह्मणोंको अपवित्र समझा करता था। प्रमाण-प्रयोग द्वारा एकेश्वरत्व प्रचार करना और मूर्त्तिपूजामें ईश्वरकी घृणाका विषय प्रकाश करता था। किन्तु उनकी यह प्रक्रिया धीरे धीरे समाप्त हुई थी। कारण, उस समय भी लोगोंका विश्वास था, कि जाति और वंशानुक्रमसे यह लोग जिन देवदेवियोंकी आराधना करते हैं, वह सब देव-देवी खास खास ज्ञान और शक्तिकी आधार स्वरूप हैं। कई एक पुश्त पहले मनुका आईन-प्रकरण प्रचारित हुआ। इस समय मनुष्यकी शिक्षा और आचार-व्यवहार उसीके अनुसार चलने लगा। उस समय भी असभ्य विजेतृवृन्द ब्राह्मणोंके जाति-भेदमूलक गौरवमें बाधा दे न सके। शेख और सय्यद लोग अपनी जातिगत पवित्रताकी रक्षा करते थे; किन्तु मुगल और पठानोंने राजपूतजातिकी स्वातन्त्र्य-नीतिका अनुसरण किया था। नये नये कुसंस्कारसे प्राचीन धर्म्म विश्वास सम्पूर्ण दूर होने लगे। "पीर" और "शहीद" "योगी" और "संन्यासी" अलौकिक कार्य्य सम्पादनमें ब्रह्मा और भैरवके स्थान-पर अधिकार करने लगे। मुसलमानोंके अभीष्टसाधनके उपयोगी देवताकी उपासना करनेसे उनकी एकेश्वरवादिता विलुप्त हुई। इसतरह आचार-पद्धति और धर्म्ममतमें परस्पर

विरुद्ध भावापन्न हो उठे। अल्पसंख्यक व्यक्ति ही मनुष्य कुरान और वेद प्रभृति ईश्वरवाक्योंका यथारीति पालन करने लगे; किन्तु अधिकांश लोग मानसिक उत्तेजनापन्न ब्राह्मण, मुल्ला, महादेव, मुहम्मद प्रभृतिके प्रति श्रद्धाहीन हुए। *

---

* गीवनने (History ii, 356) लीक किया है, कि यूनानियों और रोमानोंकी नास्तिकतासे खृष्टधर्म्मके प्रचारमें बहुत सुविधा हुई थी। "कोयार्टार्लो रिवो"के एक लेखकने भी उसके अनुकूल राय प्रकाश की है। सिकन्दर शाहके आक्रमणके समय और रोमराज्यके प्राधान्यके समय एशिया और युरोपके कुसंस्कारोंके आपसमें मिलजानेके कारण ही आजकलकी नास्तिकताकी सृष्टि होनेकी बात कोई पूरी तरह स्वीकार नहीं करते।

मुसलमानोंकी सभ्यता और शिक्षाके प्रभावसे यूरोपवालोंका मानसक्षेत्र गठित हुआ था, इस समय गाते उससे इनकार करते हैं। किन्तु शारीरिक और मानसिक विज्ञानके सम्बन्धमें हमारी वाध्यबाधकता "हेलम" स्वीकार कर गये हैं। (Literature of Europe, i, 90, 91, 149, 150, 157, 158, 189, 190,) अक्सफोर्ड कालेजके प्रतिनिधि, समालोचक और स्वभाव-कवि विलियम्स भी (Sketch of English prose Literature, P, 22, 37) केवल एशियाकी कल्पनाशक्तिकी प्रशंसा करके ही विरत हुए नहीं हैं,—इन्होंने मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है, कि "गाथ" जातिकी बुद्धिमापर उस कल्पनाशक्तिका प्रभाव फैला था। वह लोग भी उस ज्ञानके अधिकारी हुए थे और उसे

इसतरह आपसमें मतविरोध आरम्भ हुआ। इसकी फलसे पहले चौदहवीं शताब्दिके आखिरी हिस्से में रामानुजके मताव-

---

उन्होंने सब जगह फैलाया था। पहले भारतवर्षसे मिश्रमें इसकी उत्पत्ति हुई; यूनानियों और रोमियोंने उसका परिवर्त्तित और परिमार्ज्जित अंश ग्रहण किया था। इस समय यह विज्ञान-शास्त्र आजकलके यूरोपीय लोगों द्वारा अधिक भावसे एक ठीक राहपर चलाया गया है। क्रस्तानोंकी विवेक-शक्तिकी अपेक्षा मुसलमानोंकी विवेक-शक्ति बहुत ज्यादा प्रखर और श्रेष्ठ थी, दार्शनिक लोगोंका विवेक-शास्त्र ही उसका सच्चा दृष्टान्त है। वर्त्तमान समय भी स्पेनकी राज्यशासन-नीतिमें, चिकित्सा और ज्योतिष-शास्त्रकी प्रचलित भाषामें, यूरोपके कारदराज्योंमें प्रच-लित "गीत" समूहमें, उसका प्रमाण दिखाई देता है। यह गान अरब देशीय धर्म्मप्रचारकों और तुर्क या सरासनोंके उद्दे-श्यसे गाये जाते हैं; या इसमें मुसलमान पदच्युत क्रस्तान वीर-पुरुष "कीड" की कार्य्यावली भी वर्णित और कीर्त्तित होती है।

"हूवेल" ने (History of Inductive Sciences i, 22, 276) ठीक किया है, कि अरब जातिने प्रकृत विज्ञान-शास्त्र,— प्राकृतिक-विज्ञान या दर्शन-विज्ञान-शास्त्रकी उन्नतिके लिये यदि कुछ किया है, तो उसकी गिनती बहुत थोड़ी है। अरब-जातिकी वैज्ञानिक उन्नतिके विषयमें हूवेलने एक नौकरकी कहा-नीके साथ तुलना की है।—उन्होंने कहा है, कि नौकरमें शक्ति थी सही, परन्तु उससे कोई काम साधित नहीं हुआ। जो हो;

वों रामानन्दने काशीमें एक धर्म-सम्प्रदाय प्रतिष्ठित किया। एकधर्म—एकविश्वास पहले ही विलुप्त हुआ था। इसी समय विदेशी विजेतृवृन्दके राज्यपर अधिकार करनेसे धर्मप्रचारक और धर्मयाजकोंकी कार्य-प्रणाली भी विभिन्न हो गई; ज्ञाना-र्जनका आग्रह कम हो गया; पुराण या प्राचीन इतिहासोंमें कविकी कल्पना और वंशकहानी मिलाई जाने लगी; वेदके आ-धिपत्यमें कमी आ गई। * उत्तर-पश्चिम प्रदेशके (मध्यगङ्गाके

निम्नलिखित हेतुवादसे होवेल उनका दोष कह भी सकते हैं;—अरबजातिकी सब प्रतिभा-शक्तियां धर्मप्रचारमें नियो-जित हुई थीं। उनकी चेष्टासे फारिसकी बुद्ध-नीति सत्पथपर लाई गई थी; फिर भारतवर्षमें एकेश्वरवादिताकी प्रतिष्ठा हुई थी; और आजतक यूरोपीय लोग अफरिकाके जिन सब स्था-नोंको देखनेमें समर्थ नहीं हुए, अरबजातिने प्रतिभाके बलसे वहांके घोर मूर्त्तिपूजक धर्मका भी उच्छेद साधन किया था।

* आजकलके समालोचक यह बात स्वीकार करते हैं, कि बहुत दिनों पहले पुराणकी सृष्टि हुई है। फलतः "राजपूत" "भाट" या "कवि" और "चांद" प्रभृतिके असम्बद्ध विवरणकी प्रचलित संख्यामें, पृथ्वीराज और महम्मदकी परवर्त्ती वंशावली और उनके कार्य्यकलापोंका जैसा हाल दिखाई देता है, इसमें सन्देह नहीं, कि इन सब पुराणोंमें ऐसे ही असंख्य और आजकलके असम्बद्ध विवरण मिले हैं। पुराने विषयसे नये विषयको अलग करना कठिन है; जान पड़ता है समालोचक और प्रतिसंस्कारी मनुष्य कभी समझ नहीं सके हैं, कि कथा

उपकूलप्रदेशके) इस नये सम्प्रदायने महावीर रामचन्द्रको उपास्य देवता समझ ग्रहण किया। मुसलमानोंके प्राधान्यविस्तारके साथ ही साथ ब्राह्मण और क्षत्रियोंके वंशानुगत श्रेष्ठत्वकी नीति मिट गई। साथ ही साथ रामानन्दने प्रचार किया,—"ईश्वरके सामने सभी मनुष्य समान हैं।" रामानन्दने उपासना की भेदनीति फैलाई नहीं थी। उन्होंने सब श्रेणीके लोगोंको ही समभावसे शिष्यरूपमें ग्रहण किया था। वह प्रचार करते थे, कि सच्चे उपासक समाज-प्रकृतिकी अपेक्षा श्रेष्ठतर स्थानमें उन्नीत होते हैं और स्वाधीनता और मुक्ति पाते हैं। * इस चौदह वीं

शोधित और स्वल्प-दुष्ट रामायण और महाभारत ही पुराणोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। परवर्त्ती लोगामोदकारिगण: आजकलकी वंश-परम्पराकी प्रशंसा लिपिबद्ध कर गये हैं,—इस एकमात्र कारणसे उन्होंने प्रतिष्ठित अट्ठारह पुराणोंकी असीम क्षमताकी और सारतत्त्वोंकी अवमानना करनेमें वृथा चेष्टा की है। जो हो, पुराणोंकी ऐतिहासिक घटनावलीको पुङ्खानुपुङ्ख वर्णन गंसमभाकार चिन्ताशीलका गतिनिर्द्दिष्ट ग्रन्थ ही समझना चाहिये।

* Compare "Dabistan ii, 179 and wilson As, Res" xvi 36 &c.) अध्यापक विलसन् कहते हैं, कि (idem p, 44 and also xvii 183) केवलमात्र ब्राह्मण ही शङ्कराचार्य और रामानुजके फैलाये धर्म-सम्प्रदायके भीतर हैं। बल्कि ब्राह्मणोंके पण्डितोंने ही यह मत ग्रहण किया। रामानन्दके अनुचर वैष्णव लोग बहुत दिनोंतक शैव लोगोंसे वादानुवाद करते थे। सुना जाता है, कि यह किसी तरह गङ्गोत्री नदीको

शताब्दिमें अध्यवसायशील पण्डित गोरखनाथने पञ्जाब प्रदेशमें "योगधर्म्म या सूत्र" का प्रचार किया और वहांके सब लोगोंने ही बड़े आग्रहके साथ ग्रहण किया। यह योगसूत्र प्रकृत प्रस्ता वमें बौद्धधर्म्मके एक साधन या कल्पनासे पैदा हुआ। किन्तु

पार करते नहीं थे। वह लोग समझते थे, कि यही नदी महादेव या महेशके निकट बहुत ही पवित्र है; परन्तु देश-भ्रमणके समय वह लोग इस नदीकी चारो ओर घूमकर जाते थे।

मध्यभारतके सभी समझते, कि एक न एक दिन नर्म्मदा गङ्गाकी स्थानपर अधिकारकर सबसे श्रेष्ठ पवित्र नदियोंमें गिनी जायगी। किन्तु ऐसे विचारका कोई कारण ढूंढे नहीं मिलता। इसका भी कोई प्रमाण नहीं है, कि यह नदी शिवके उद्देशसे उत्सर्गीकृत हुई है। महेश्वरका एक घूर्णा-वर्त्त है। गिरे हुए पत्थरोंके टुकड़े इसमें गोलाकृति और परि-ष्कृत हो मिलने ही "लिङ्गकी" आकृति धारण करते हैं; यह धर्म्मयाजकोंके आयका प्रकृष्ट उपाय है। हिमालयकी किसी खास हिस्सेके नारायण-चक्रमें भी वैष्णवोंको वैसा ही लाभ होता है। इस घूर्णावर्त्तका सलिलकणा पहाड़ी नदीकी चारो ओरके पत्थरोंको पवित्रताविधान करता है। देशी भाषामें कहा जाता है,—"रेवाके कङ्कड़ सब शङ्कर समान हैं," यानी नर्म्मदाके (रेवाके) हरेक पत्थरके टुकड़े ऐश्वरिकशक्तिसम्पन्न और शिवतुल्य हैं। महेश्वर "सुहेसर बाहु" या सहस्र-बाहु नामक एक क्षत्रिय राजाकी राजधानी थी, जिन्होंने उसपार

दार्शनिक मत होनेके कारण व्यास और शाक्य दोनोंके शिष्योंने ही इस मतको समभावसे ग्रहण किया था। जो हो, उस समय लोगोंका खयाल था, कि इस कलियुगमें पापी मनुष्य ऐसे महत और भयावह प्रायश्चित्त करनेमें समर्थ नहीं और पूरा मोक्ष पानेमें भी अक्षम है। किन्तु गोरखनाथने यह उपदेश प्रदान करना आरम्भ किया, कि कठोर मानसिक औदासीन्य और उपासनासे अति अधम पापीका शरीर भी पवित्र स्वर्गीय देवत्व पाता और उसकी आत्मा धीरे धीरे सर्व्वनियन्ता परमेश्वरकी आत्माके साथ मिलती है। उन्होंने शिवको ही शिष्योंके एकमात्र उपास्य देवता मान इसके उपरान्त प्रचार किया, कि यह उपास्य देवता शिव ही जातिधर्म्म निर्व्विशेषसे सबके कठोर अध्यवसायका और उपासनाका पुरस्कार विधान करेंगे। वह उस समय शिष्योंके सम्प्रदाय और धर्म्म-विश्वासके निदर्शन-स्वरूप ललाटस्थ सामान्य चिह्नसे परितृप्त नहीं हुए। अन्यान्य सम्प्रदायोंसे उन्हें स्वतन्त्र करनेके लिये उन्होंने उनके कान छेदनेकी व्यवस्था की। तबसे उनका शिष्यसम्प्रदाय "कानकटा" (कानफटा) या छिन्नकर्ण योगी सम्प्रदायके नामसे परिचित है। *

अवस्थित "निमाज" नगरसे कुछ दूर पशुरामके हाथसे वह राजा मारे गये। यह घटना ही युद्धप्रिय प्राचीन ब्राह्मण-वीर वंशके ध्वंसका आरम्भ जान पड़ती है।

* (Compare Wilson As. Res, xvii, 183, &c.) and the Dabistan (Troyer's Translation, 2, 123 &c.) मोसीन ग्रन्थमें, देवीस्थानमें, समय पानीने दिखाया है, कि योगी

इस तरह धर्मसंस्कारके पहले स्तर तय्यार हुआ। जातिभेदकी प्रथाके प्रचलित रहनेसे धनी और क्षमताशाली मनुष्योंका अभिमान और गर्व दृढ़रूपसे बद्धमूल हुआ था। धर्मका विश्वास और जीवनका सुखस्वच्छन्द-विसर्जन,—उसी जातिभेदके ध्वंसके उपायोंमें गिना गया। परवर्त्ती युगमें,

---

और मुसलमानोंमें अनेक विषयमें सादृश्य है, योगके सम्बन्धमें कहनेपर विज्ञानशास्त्रके मतसे दिखाई देता है, कि योग या औदासीन्य या आत्मज्ञान (विवेक) दोनो ही एक हैं। ऐसा ज्ञान उत्पन्न होनेपर आत्मा अमरत्व पाती और भाग्यचक्रके अधीन नहीं होती। इससे सच्चे विषयपर ज्ञान उत्पन्न होता और प्लेटोका विवेक ("Idea") या पृथिवीके आदिम गठनकी उपलब्धि की जा सकती है। और भी देखा जाता है, कि भारतवासी या यूनानी लोग कोई स्वीकार नहीं करते, कि मनुष्य इस असम्पूर्ण अवस्थामें ईश्वरमें लीन होते और सच्चे विषयमें ऐसा ज्ञान पा सकते हैं। (Compare Ritter, "Ancient Philosophy, Morrison's Translation," ii, 207, 334-386, and Wilson, 'As. Res,' xvii, 185) और भी बहुत ढूंढनेसे मालूम होता है, कि [illegible] कपिल और पातञ्जलके समान मतके साथ प्लेटोका मत अनेक अंशमें बराबर है। जैसे,—ईश्वर और प्रकृति दोनो ही अमर—चिरस्थायी है; "महान्" या विवेक या जागतिक विवेक शक्ति और नोयस (Nous) या लगोस (Logos) सभी एक हैं। ऐसे ही और भी अनेक दृष्टान्त दिखाई देते हैं।

१४५० ई०में ख्यात सन्तुवायसम्प्रदायभुक्त "कबीर" नामक रामानन्दके एक शिष्यने पौत्तलिक धर्म्म या मूर्त्तिउपासनाकी प्रथाका उच्छेदसाधन किया। उनके प्रभावसे कुरान और शास्त्रका प्रभुत्व और कार्य्यकारिता और शिक्षित भावके व्यवहारका पक्षपातित्व ध्वंस हुआ। वह हिन्दू मुसलमान दोनो जातियोंको समभावसे शिक्षा देते थे; वह उन लोगोंको कल्पित कबीरकी उपासना कराने चलते और भीतरी पवित्रता पानेमें सदा यत्नवान होनेका उपदेश देते थे। समग्र सृष्टि या जगतको वह "माया" या प्रतारणा और इन्द्रजाल-परिपूर्ण छायामूर्त्ति कहते थे। इसतरह उन्होंने मनुष्यकी दुर्ब्बलता और पापकार्य्यमें आसक्तिके सम्बन्धमें तरह तरहका भय दिखाया था। प्रकृत पक्षमें कबीर ईश्वरका बाह्य सादृश्य स्वीकार करते थे; उन्होंने प्रचार किया था, कि राम या विष्णु ही ईश्वरकी सर्व्वश्रेष्ठ विशुद्ध प्रतिकृति हैं। पूर्व्ववर्त्ती संस्कारकोंकी तरह उन्होंने भी भ्रमवश जगदीश्वरको नाना आकृति प्रदान और अद्भुत गुणोंसे भूषित किया था। वह कहते थे,—गृहस्थाश्रम परित्याग करना अच्छा है; "साधु" या पवित्र, निष्पाप या विशुद्ध मनुष्य, सहिष्णु, धीर या निरीह उपासक ही इहजीवनमें सर्व्वशक्तिमानकी जीवन्त प्रतिमूर्त्ति स्वरूप हैं, किन्तु ऐसे मतके प्रचारसे उनकी धर्म्म-संस्कार-नीति सीमाबद्ध हुई थी। जो हो, कबीरका यह संस्कृत मत सुशृङ्खलरूपसे प्रचारित या लिपिबद्ध नहीं हुआ, या कोई पूरी तरहसे हृदयङ्गम भी कर नहीं सका। किन्तु वह जिस आचार-पद्धतिको रचना करे थे और उन्होंने जिन प्रचलित भाषाका प्रयोग किया था, इससे उनकी

प्रचारित ग्रन्थ समूह भारतवर्षकी नीच श्रेणीमें विशेष आदरणीय हुए और बहुत फैले थे। *

---

* (Compare the Dabistan, ii,184 &c, wilson "As Researches" xvi, 53 and ward's Hindus iii 406. कबीर एक अरबी शब्द है ; इसका अर्थ सबसे श्रेष्ठ है। अध्यापक विलसन कहते हैं, कि सन्देहकी बात है, कि कबीर नामका कोई मनुष्य था या नहीं। मोसन फानीने जिन कबीरका विषय कहा है, वह काल्पनिक पुरुष जान पड़ता है। जान पड़ता है, कि छद्मवेशधारी कोई ब्रह्मज्ञानी हिन्दूने यह उपाधि ग्रहण की थी। यद्यपि कबीर नाम विशेष संशयनिर्द्धारक है, किन्तु आजकल इसका बहुत प्रचार है। कबीर पितृमातृ-हीन असहाय अवस्थामें एक जुलाहे द्वारा प्रतिपालित हुए, और अन्तमें रामानन्दने उन्हें शिष्यरूपमें ग्रहण किया,—ऐसी ही साधारण कहानी प्रचलित है और यही कबीरका परिचय देनेमें यथेष्ट प्रमाण जान पड़ता है। सुना जाता है, कि उनकी मृत्युके बाद हिन्दू मुसलमान दोनो जातियोंने ही उनके शरीरको लेनेकी चेष्टा की थी। मोसन फानीने कहा है, कि कितने ही मुसलमान वैरागी या उस समय वैष्णव सम्प्रदायके योगी हुए थे। रामानन्द और कबीरके शिष्य लोग ही इस सम्प्रदायकी कईएक शाखा विशेष हैं। (Debistan ii 193) उस समय चिन्ताशीलता और धर्ममतका आपसमें जो मेल था और इस समय जो उसको उन्नति साधित होती है,—उसके और भी दृष्टान्तस्वरूप मक्का."काबा"-रक्षकोंके प्रति अज्ञानी हिन्दू अवाम-

खृष्टीय षोड़शवीं शताब्दिके पहले हिस्सेमें चैतन्य नामक नदियाके एक ब्राह्मणने बङ्गालमें रामानन्दका धर्म्म-संस्कार प्रवर्त्तन किया। कितने ही मुसलमान उनके इस धर्म्ममें दीक्षित हुए। चैतन्य सब सम्प्रदायके और सब धर्म्मके लोगोंको ही अपना सम्प्रदायभुक्त करते थे। वह दृढ़ताके साथ कहते थे,—एकमात्र "भक्ति" या "विश्वासके" बलसे ही अपवित्रको पवित्रता साधित होती है। वह विवाह और गार्हस्थ्य-धर्म्मका अनुमोदन करते थे; किन्तु उनके शिष्योंने गुरुभक्तिके साधारण नियमका भङ्ग किया था। उनमें कोई कोई कहते, कि ईश्वरके सामने गुरुको उपासना करना भी कर्त्तव्य है* इस शताब्दिमें ही वल्लभ स्वामी नामक तैलिङ्गके एक ब्राह्मणने

नाथका उपदेश उद्धृत किया जा सकता है। अकमनाथने पहले उनके गृहस्वामीकी अवस्थितिका विषय पूछ उनकी निन्दा की। बाद कोई प्रतिमा नष्ट की गई थी, उन्होंने वह उनसे पूछा। रक्षकोंने कहा, कि मनुष्यके हाथकी बनी मूर्त्ति उनके लिये उपास्य नहीं है। उन लोगोंको यह बात सुन उन्होंने कहा,—"यह मन्दिर भी तो मनुष्यके हाथका बनाया है; सुतरां मन्दिरके लिये भी सम्मान दिखाना उचित नहीं।" (Dabisan ii, 117)

* चैतन्य और उनके साथियोंके सम्बन्धमें निम्नलिखित किताबें देखने लायक हैं;—जैसे,—Wilson, "Asiatic Researches" xvi, 109 &c, and Ward on the Hindoos, iii, 167 &c, अधिकन्तु भक्ति या विश्वासके सम्बन्धमें कितनी ही

प्रचलित उन्नतिशील संस्कृत धर्म्ममें फिर एक नवशक्ति प्रदान की। यह कहते थे—केवलमात्र विवाहित धर्म्म-गुरु ही ज्ञानोपदेष्टाके नामसे गिने जायेंगे, ऐसा नहीं। गृहस्वामी मात्र ही धर्म्मगुरुके पदपर वरणीय हैं और गुरु और शिष्य दोनो ही समभावसे संसार सुखभोगके अधिकारी हैं। शान्ति-प्रिय रोजगारी (वणिक) सम्प्रदायने इस नीति (धर्म्मोपदेश)को आग्रहके साथ ग्रहण किया। गोसाईं लोग पारिवारिक धर्म्माधिकरणके एकमात्र उपदेष्टा ठीक होनेपर वह लोग देशवासी सब भिन्नमती शान्तिप्रिय लोगोंपर आधिपत्य करने लगे। तब विट्ठलनाथजीको एकमात्र ईश्वरस्वरूप समझ उन लोगोंने "बाल गोपाल" यानी शिशु श्रीकृष्णकी उपासना करना आरम्भ की। इसतरह एक नई ईश्वरमूर्त्तिकी उपासना फैलानेसे प्रचलित पौत्तलिक धर्म्मकी गिनती फिर बढ़ी। *

सोलहवीं शताब्दिके शुरूमें इसतरह हिन्दुओंका मन उन्नतिकी राहपर दौड़ा। मुसलमानोंके साथ ही साथ हिन्दुओंके मनमें भी एक नवशक्तिका सञ्चार हुआ था। हिन्दुओंके धर्म्मने नवोन्नतिलाभके लिये बहुप्रकार एवं सजीवभाव

बच्ची रायके लिये, wilson, "As, Res, xvll, 312, देखने लायक है।

* See Wilson "Asiatic" Researches XVI, 85 &c. माधवके एक मतावलम्बी वैष्णव सम्प्रदायकी,—जो सम्प्रदाय इस समय शैव लोगोंके साथ मिलनेकी चेष्टा करती है,—विवरणके लिये भी Wilson As, Res, xvi 100 देखने लायक है।

धारण किया। रामानन्द और गोरखने धर्म्मकी समताका प्रचार किया था। चैतन्यने उस समधर्म्माक्रान्त सम्प्रदायका फिर संस्कारसाधन किया। पौत्तलिक धर्म्मके उच्छेदसाधनके समय कबीरने देशप्रचलित भाषामें जनसाधारणको उपदेश दिया। वल्लभने जगतके साधारण कर्तव्य कार्मोंके साथ सकाम उपासनाके सम्बन्धकी बातें सिखाई थीं। किन्तु इन सब सदाचारी और उन्नताशाली मनुष्योंने नरजीवनके नश्वरत्वपर इतना विश्वास स्थापन किया था, कि यह नहीं समझे, कि मनुष्यकी सामाजिक अवस्थाकी उन्नतिसाधनमें विशेष कोई उपकार हो सकता है। उन लोगोंका प्रधान लक्ष्य था, कि बहुत देवार्चना, घोर मूर्त्तिपूजकता और पौरोहित्य-कार्य्यसे मुक्ति मिलती है। उन्होंने सन्तुष्ट शान्तिप्रिय मनुष्योंको ले भिन्न भिन्न पवित्र सम्प्रदाय बनाया था। वह लोग भावी सुखकी आशासे भविष्यत् चिन्तामें डूबे हुये थे। परन्तु वह लोग स्वजातिवर्गको समाज और धर्म्मबन्धन छोड़नेका उपदेश देते नहीं थे; या उन्होंने पुराने समयकी दूषित कुरीतियोंसे उन्हें छुड़ाकर उन्नत करनेकी चेष्टा नहीं की। उन लोगोंने जातिगठनका बीज बिना रोपे; अपने अपने विभिन्न धर्म्ममतकी परिपुष्टि साधन की थी। उन्होंने जो आदेश प्रदान किये थे, उनका सम्प्रदाय इस समय भी उन उपदेशोंके अनुसार ही काम करता है। समाज और धर्म्मकी ऐसी अवस्थामें नानकने धर्म्म-संस्कारका प्रकृत उपादान पाया था। नानकके प्रतिष्ठित उस दृढ़ और पत्थरकी भीतिको अवलम्बनकर उनके अनुवर्त्ती गोविन्दने स्वदेशवासियोंके मनमें जातीयताकी एक नई आग

बताई। उसीपर निर्भरकर उन्होंने प्रतिपन्न किया,—जाति, वंश, राजनीतिक अधिकार, धर्म्ममत, इन सब विषयमें ही ऊंचे और नीचे सभी समान हैं।

१४६९ई०में लाहोरकी निकटवर्त्ती स्थानमें नानकने जन्म लिया।* उनके पिता कालू जातिके हिन्दू थे। कहते हैं,वह पुराने युद्धप्रिय

* कहा जाता है, कि लाहोरके उत्तर इरावती (Ravee) नदीके किनारे तलवन्डी गांवमें नानकने जन्म लिया। उस समय "भूटी" जातीय "राई-भुइयां" वंश वहां राजत्व करता था। (Compare Malcolm, "SKetch of the SiKhs" p, 78, and Forster, 'Travels" i. 292-3)। किन्तु एक हाथकी लिखी पुस्तकमें लिखा है, कि नानकके पिता तलवन्डी गांवमें रहते थे सही, किन्तु धर्म्म-गुरु नानकने लाहोरसे पन्द्रह मील दक्षिण "कनाकच" गांवमें मामाके घर जन्म लिया था। किन्तु यह आश्चर्य्यका विषय नहीं है, कि पञ्जाब अञ्चलकी स्त्रियां प्रसवके समय विशेषतः पहले सन्तानके प्रसवके समय पित्रालयको ही उपयुक्त स्थान समझती हैं। ऐसे सन्तान माताके पित्रालयमें जन्म लेनेके कारण अक्सर "नानक" (स्त्रीलिङ्गमें "नानकी"—"ननके" शब्दसे निष्पन्न,—माताका पित्रालय है) के नामसे अभिहित होते हैं। दक्षिण और हिन्दू-मुसलमान दोनों जातियोंमें ही "नानक" एक साधारण प्रचलित नाम विशेष है। नानककी जन्मवर्षके सम्बन्धमें अनेक मत दिखाई नहीं देता। किन्तु किस महीनेमें किस दिन उनका जन्म हुआ, इस विषयमें मतभेद दिखाई देता है। किसी किसी

क्षत्रिय जातिकी "बेदी" सम्प्रदायके भीतर थे। नानकके पिता अपनी जातिके अधिकांश मनुष्योंकी तरह अपने गांवके एक सामान्य रोजगारी थे। * नानक बचपनसे ही स्वभावतः धार्म्मिक और चिन्ताशील थे। अनेक जगह प्रमाण मिलता है, कि उन्होंने यौवनकालमें ही हिन्दू मुसलमान दोनों जातियोंका प्रचलित धर्म्ममत सीखा और कुरान और शास्त्रोंके शास्त्रमें साधारण व्युत्पत्ति पाई थी † सुबुद्धि और स्वाभाविक

जगह दिखाई देता है, नानकका जन्मदिन, १५२६ विक्रमाब्दकी १३ वीं कार्त्तिक है; कहीं देखा जाता है, कि इस वर्षकी १८ वीं कार्त्तिकको नानकने जन्म लिया। १५२६ विक्रमाब्द, ईस्वी १४६६ अब्दके शेष भागका समसामयिक है।

* सैरुल मुताखरीनमें ("Brigg's Translation i, 110) लिखा है, नानकके पिता शस्यके व्यवसायी थे। देवीस्थानमें (ii, 247) देखा गया है, नानक स्वयं ही शस्यके गोलादार थे। सिखोंके विवरणमें नानकके पिताका कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु नानककी एक बहनके साथ जो एक शस्यव्यवसायीका विवाह हुआ था, वह सिखोंके इतिहासमें लिखा है। इस इतिहासमें और भी देखा जाता है, कि नानक स्वयं अपने बहनोई (भग्नीपति) के पास रोजगार सीखते थे या उनकी सहायता करनेके लिये नियुक्त हुए थे।

† फारसी भाषाकी एक हाथकी लिखी किताबमें देखा गया है,—पहले एक मुसलमान नानकके गुरु थे। केवल मुताखरीन पढ़नेसे मालूम हुआ, (i, 110) कि नानकने सय्यद

व्यग्रताके कारण धर्म्ममतके नीच कुसंस्कारोंसे उन्हें विरक्ति हुई। वह शिक्षित और पण्डितसम्प्रदायके औदासीन्यपर असन्तुष्ट थे; दर्शनशास्त्रके आपातःमधुर गूढ़तत्त्वके आश्रयग्रहणमें उन्हें तृप्ति नहीं हुई थी। यह भी असम्भव नहीं, कि कबीर और गोरखनाथके धर्म्मोपदेशने उनकी धारणशील धी-शक्ति

हुसेन नामक एक मनुष्यसे शिक्षा पाई थी। वह नानकके प्रतिवेशी थे; नानकके पिताको बहुत चाहते थे; वह निःसन्तान और धनवान् थे। इस पुस्तकमें और भी लिखा है, कि नानक मुसलमानोंकी प्रसिद्ध पुस्तक पढ़ते थे। मेलकमके मतसे (Sketch, P, 14) मुसलमान लोग कहते थे, कि खिजिर या भविष्यद्वक्ता इलियाससे नानकने सबतरहका नैसर्गिक विज्ञान सीखा था। मुसलमानोंका प्रचलित विवरण पढ़नेसे मालूम होता है, कि नानकने बहुत बचपनमें वर्णमालामें पहले वर्णके उत्पत्ति विषयक दृढ़तत्त्व पूछ शिक्षक महाशयको बहुत चमत्कृत किया था। अरबी और फारसी भाषाकी वर्णमालामें यह वर्ण एक छोटी सरल रेखा या दागमात्र है; दूसरी भाषामें यह ईश्वरकी एकता प्रतिपन्न करता है। यीशुखृष्टने बारह वर्षकी उम्रके समय वर्णमालाओंका गूढ़ मर्म्म समझा शिक्षकको कितना चमत्कृत किया था,—वह प्रमाणसिद्ध बाईबेलमें जैसे लिखा है, पाठकोंको शायद उसकी याद आ सकती है। (Strauss, Life of Jesus, 272)

पर सम्पूर्ण ही स्थायी प्रभाव फैलाया था। * जिस समय उन्हें चित्तोन्मत्तता उत्पन्न हुई, उसी समय नानकने गृह-परित्याग किया। वह अनुताप, चिन्ता, अध्ययन, मनुष्यजातिके साथ बहुत ज्यादा और विस्तृतरूपसे बातचीत परिचय और आचार-व्यवहार द्वारा विवेक या आत्मज्ञानकी चेष्टा करने लगे। * सम्भवतः नानकने भारतवर्षकी सीमाके पारतक

---

* कबीरके ग्रन्थकी किसी किसी स्थानका मर्म या सारसंग्रह "आदि ग्रन्थमें" बहुत जगह दिखाई देता है। आदिग्रन्थमें सब जगह ही,—कहीं, गोरखका और अधिकांश स्थलमें कबीरका मत उल्लिखित या उद्धृत हुआ है।

* कुछ फकीरोंके साथ समय समयपर मुलाकात (Malcolm Sketch, P. 8, 13) करने और एक दरवेशसे (Dabistan, ii, 247) और भी नियमितरूपसे उपदेश पानेसे नानकका हृदय अभिभूत हुआ था। ऐसी शिक्षा पानेसे नानकने अपने जीवनकी भविष्यत् गति ठीक करनेकी क्षमता पाई थी। जेनकमकी विवरणमें लोकप्रीतिकर और भी कहानी देखी गई है, कि नानक कभी कभी ईश्वरकी शक्तिसे अनुप्राणित हो अपने बहनोईके गोलेका सब शस्य बांट देते थे; तब भी, वह शस्य-गोला सदा शस्यसे भरा रहता था। नानकके बहनोईके मुनीब दौलतखां लोदी जब जानते, कि सब शस्य बांट दिया गया है, तो वह जमाखर्चका हिसाब मिला देखते, कि आयव्यय सभी ठीक हुआ है।

सिखोंके इतिहासमें लिखा है, कि बादशाह बाबरके साथ

भ्रमण किया था। वह एकान्तमें उपासना करते और वेद और मुहम्मदके उच्च विषयमें चिन्तारत रहते थे। वह बराबर व्यग्रताके साथ पण्डित धर्म्मयाजक और सरल धर्म्मानु-रागियोंके साथ, ईश्वरकी इच्छा और सुखका उपाय—इन दो विषयोंपर तर्कवितर्क करते थे। * प्लेटो, बेकन, डेकार्टे और सुलाकालकार नामकने बातचीत और आचार-व्यवहार द्वारा उस दुःखाकुलित बादशाहको अनेक विषयमें शिक्षा दी थी। उन्होंने बादशाहसे कहा था, कि हम दोनों ही बादशाह हैं; दोनों ही एक मनुष्योंका पंथ स्थापन करनेकी चेष्टा करते हैं। यह सब बातें सुन बाबर बड़े ताज्जुबमें आये थे। हम केवल दो उदाहरण संग्रह कर सके हैं; उनमें एक स्पष्टतः "आदि ग्रन्थ" "आत्माराम" और "तैलङ्ग" के अंशसे उद्धृत है। इन दोनोंमें ही साधारणतः एक गांवके ध्वंस होनेका हाल और बादशाही देशमें उनके राज्यपर आक्रमणकी बात लिखी है। मोहसन फानीने (Dabistan, ii, 249) एक अमूलक घटना लिखी है। उन्होंने कहा है, कि नानक अफगानोंकी ओर असन्तुष्ट हो मुगलोंको भारतवर्ष लाये।

* साधारणतः सभी कहते हैं, कि नानक समग्र भारतवर्षमें घूमे थे; वह फारिस गये थे। इसके उपरान्त उन्होंने मक्का देखा था। (Compare Malcolm, Sketch, p. 16, and Forster, "Travels," i, 295-6)। किन्तु उन्होंने कितने वर्ष-तक इसतरह देशपर्य्यटन किया और किस दिन अपने देश लौट आये,—इस सम्बन्धमें कोई ठीक हाल मालूम नहीं होता।

असाधारण सभी ही जगत्के प्रचलित दार्शनिक मतोंकी आलोचना की है; किन्तु चिन्ताशक्तिकी कार्य्यकारिताके विषयमें कोई सत्यकी प्रबल दीवार खड़ी कर नहीं सका। धर्म्मात्मा नानकका हृदय भी एक विश्राम या विराम स्थानके लिये व्याकुल हो उठा; किन्तु वह उस विराम स्थानको खोज-

---

उनके कितने ही साथी थे। उनमें "रबाबी" या वीणावादक (या साधारण भाषाके गायक, या सितारकी तरह तारविशिष्ट वाद्य यन्त्र-वादक) मरदाना, उनके अनुवर्त्ती लेहना, "बाला" नामक सिन्धु देशके एक जाट और बुड्ढ या प्राचीन नामसे अभिहित रामदास प्रभृतिकी बातें ही बराबर प्रकट हुई हैं। चित्रित तसवीरोंमें भी मरदाना और नानक,—दोनो ही इकट्ठे दिखाई देते हैं। प्रचलित कहानीसे मालूम होता है, कि जब मक्का जा नानक वहांके एक मन्दिरकी ओर दोनो पैर फैला सोते थे, उस समय एक मनुष्यने क्रोधवश हो उनसे पूछा,—"तुमने किस साहससे ईश्वरके मन्दिरकी ओर अवमानना प्रकाश की?" नानकने उत्तर दिया;—"ऐसा क्या कोई स्थान है, जहां ईश्वरका मन्दिर न हो; और जिधर हम फैलावें?" (Malcolm Sketch of the Sikhs, p, 159.) अन्ततः कुछ दिनोंके लिये नानकने मुसलमान दरवेशका वेश ग्रहण किया था। उन्होंने मुलतानमें एक दल मुसलमान दरवेशोंके साथ मुलाकात की। नानकने उनके दलमें जा कहा था, कि गङ्गाकी सोतकी तरह वह पवित्रता-सागरमें प्रवेश करते हैं? (Compare Malcolm, Sketch, P. 21, and the "Seirool Mutakheren"i, 311)

कार न पानेसे हताश हुए। अन्तमें मनुष्यका परस्पर विरोधी वंश और जातिपरम्परा और उनकी आचार प्रकृति उनका लक्ष्यस्थल बनी। नानक कहते थे,—सभी भ्रान्ति है। उन्होंने कुरान और पुराण दोनो ही पढ़ा था; किन्तु कहीं ईश्वरको देख नहीं सके। * नानक अपने देशमें लौट आये। उन्होंने कठोर संन्यासधर्म्म परित्याग किया; वह संसारमें घुसे गार्हस्थ्यधर्म्मका प्रतिपालन करने लगे। उनके दीर्घ जीवनका बाकी अंश धर्म्मके प्रचारमें बीता। वह सबको ही एकनिराकार चैतन्यस्वरूप जगदीश्वरकी उपासना करने, सत्पथपर रह धर्म्मार्ज्जन और जीवन-यात्रा निर्व्वाह करने और क्षमा और सद्गुण सीखनेका उपदेश देते थे। नानकका सद्व्यवहार, एकाग्र ईश्वरनिष्ठा और प्रवृत्तिजनक सहृदयता—सभी प्रशंसाका

* नानककी उर्दू भाषासे एक कविता प्रचलित है। उसका मर्म्म यों है; —

"बहुत शास्त्र धर्म्मग्रन्थ किया अध्ययन।
न पाया किसीने ईश्वरका निदर्शन॥
कुरान पुराण आदि है शास्त्रजितने।
पथय उनका किया कब है किसने॥"

आदिग्रन्थमें इस मर्म्मकी और भी कितनी ही कवितायें हैं। अधिकन्तु "रत्नमाला" नामक क्षोद्रपत्रांशमें नानकने कहा है,—"वेद और कुरान प्रभृति धर्म्मग्रन्थ पढ़कर मनुष्य क्षणिक स्वर्गीय सुख पा सकता है; किन्तु ईश्वरके सिवा मुक्ति पाना मुशकिल है।"

विषय है। नानक बहुसंख्यक उत्साही, कर्त्तव्यनिष्ठ और दृढ़विश्वासी शिष्योंको छोड़ ७० वर्षकी उम्रमें परलोक गये। *

---

* नानककी मृत्युका समय निर्णयके लिये सब ग्रन्थोंमें ऐसा ही हाल दिखाई देता है; सब पुस्तकोंमें ही १५९६ विक्रमाब्द वर्ष या १५३९ ई० नानककी मृत्यु वर्षके नामसे निर्दिष्ट है। एक "गुरुमुखी" सार ग्रन्थमें लिखा है, कि नानक सात वर्ष पांच महीने और सात दिन धर्म्मगुरुके पदपर अधिष्ठित रहे और हिन्दुओंके "अशोक" महीनेकी १० वीं तारीखको उनकी मृत्यु हुई। फरस्टर ("Travels" i, 295) कहते हैं, कि नानकने १५ वर्षतक देश-पर्य्यटन किया। लाहोरसे चालीस माइल दूर इरावती (Ravee) नदी किनारे "कर्त्तारपुर" गांवमें उनकी मृत्यु हुई। वहां उनके पवित्र नामसे एक धर्म्म-मन्दिर प्रतिष्ठित है। उनके दो पुत्र-सन्तान थे। ज्येष्ठ "श्रीचन्द्र"—एक संन्यासी थे; उदासी नामक एक हिन्दू-सम्प्रदायकी प्रतिष्ठाके लिये वह प्रसिद्ध हैं। छोटे "लक्ष्मीदास" सदा सुखसम्भोगरत थे। उनके सम्बन्धमें कोई खास विवरण नहीं मिलता। नानकके वंशधर नानकपुत्र लोग "साहबजादा" या प्रभुपुत्रके नामसे परिचित थे। सिख जाति उनका बहुत सम्मान करती है। वणिकसम्प्रदायके नानकपुत्रोंने देशके राजासे विशेष सम्मान या स्वाधीनता पाई थी। मोहसन फानीने (Dabistan ii, 253) प्रमाण द्वारा दिखाया है, कि नानकके प्रतिनिधि लोग "करतारी" नामसे अभिहित थे। वह लोग केवल करतारपुरके अधिवासी होनेसे ही इस नामसे अभिहित नहीं हुए; परन्तु वह लोग

नानकके पूर्ववर्ती धर्मसंस्कारकोंके प्रचारित मतका सबसे श्रेष्ठ सार अंश ले उसके शुरुतर भागोंको परित्याग किया था। रामानन्द और कबीरकी फैलाई हुई नवाकृति और सीमाबद्ध क्षमताविशिष्ट ईश्वरकी उपासनाके बदले नानकने गर्व्वके साथ प्रचार किया, कि ईश्वर अद्वितीय निरवच्छिन्न और समयातीत सत्ता विशेष हैं। वह सृष्टिकर्त्ता हैं; वह स्वयम्भू हैं; वह ज्ञानातीत हैं; वह अविनश्वर हैं, वह कहते थे,—सत्य और सर्व्वशक्तिमान ईश्वर—दोनो ही एक हैं। सत्य सृष्टिके पहलेसे वर्त्तमान है। हम चारो ओर जो देख सकते हैं और समझ सकते हैं, उसका अन्तिम ज्ञान और कारणस्वरूप सत्य या ईश्वर चिरकाल वर्त्तमान रहेगा। * सुला, पण्डित

ईश्वरके काममें विश्वासी था बहुत पवित्र होनेसे ही इस नामसे परिचित थे।

* दृष्टान्तस्वरूप "आदिग्रन्थ"के "गौरी" राग नामक अंश और "जप" नामक सुखवन्ध (सूचना) या "अनुयोग और स्तुति" के विषयमें प्रार्थनाका अंश देखने लायक है।

"अकालपुरीक" या समयातीत सत्ता सिखोंमें ईश्वरके नामकी एक साधारण संज्ञा है। अङ्गरेजी भाषाके प्रचलित "अलमाइटी" (Almighty,—सर्व्वशक्तिमान) शब्दके साथ इसका सादृश्य है। तब भी गोविन्दने दूसरे ग्रन्थके "हजारा शब्दके" अंशमें साफ कहा है, कि "समय ही" एकमात्र प्रकृत और सत्य ईश्वर है; जगदीश्वर पहले भी वर्त्तमान थे, प्रलयके समयतक भी वर्त्तमान रहेंगे; ईश्वर असीम अनन्त इत्यादि हैं।

दरवेश और संन्यासी,—सबको ही नानक समभावसे शिक्षा देते थे। जिन्होंने असंख्य मुहम्मद, विष्णु और शिवका अवतार ग्रहण और लयप्राप्तिको प्रत्यक्ष किया था, नानकने उन्हीं सर्वशक्तिमान अनन्तकालस्थायी, अक्षय, अव्यय ईश्वरकी ईश्वरको याद करनेका उपदेश प्रदान किया था। * नानक कहते थे,—

मिलटनने "समयका" सामयिक और परिमित प्रयोग निर्देश किया है। शेक्सपियरने भी समयकी एक सीमा स्थिर की है :—

"कालगति अनन्तके पथपर प्रधावित।
पार्थिव स्थायित्वमें उसकी सीमा निरूपित॥
वर्तमान. भविष्यत्, भूत कालत्रय।
शान्तभावसे अनन्त-सीमा निरूपा॥"
"Milton, 'Paradise Lost,' v"

"चिन्ताशक्ति जीवनकी होय खरीदी दासी।
जीवन-समय क्रीड़ा करे;पुतली जैसी खासी॥
कालकी जगत्गति निर्णयमें प्रयास।
एकदिन अवश्य ही अवसान है उसका॥"
"Shakespeare, 'Henry IV, Part First' v. 4."

भारतवर्षमें इस समय दर्शन-शास्त्राध्यायी धर्मसम्प्रदायकी "सांख्य," 'पौराणिक' और "शैव" नामक तीन शाखायें हैं; उनके मतसे "काल" या समय मानसिक और भौतिक जगतका यथाक्रम २७, ३० या ३६ सार-समष्टि या प्रपञ्च समूहका एक है। इसतरह समयका अलग काम और स्वतन्त्र सत्ता निर्दिष्ट होता है।

* आदि ग्रन्थकी परिशिष्टमें नानककी निम्नलिखित कविता

"पुण्य, दया-दाक्षिण्य वौरोचित कार्य्यकलाप और ज्ञानालोग सभी अमूलक हैं। जो ज्ञान अनन्तव्यापी और अनन्त-कालस्थायी है,—वही एकमात्र ईश्वरज्ञान है।" * जो सब गर्व्वित मनुष्य अपने कामपर विश्वास करते और उस विश्वाससे ही जो अनन्त जीवन या मुक्ति पानेमें प्रयासी होते हैं,—उनका तिरस्कार करनेके अभिप्रायसे ही मानो नानकने कहा है, कि केवल मात्र ईश्वरानुगृहीत मनुष्य ही उनके एकमात्र ईश्वर हैं। † परन्तु इच्छाशक्तिके अनुशीलनके और मानसिक वृत्तिसमूहके सद्व्यवहारके साथ ईश्वरानुग्रह विजड़ित है। इन सब मानसिक और इच्छाशक्तिको जो जैसा चलायेगा, वह उतना ही ईश्वरानुग्रह पायेगा। नानक कहते थे,—"तरह तरहके पुण्यकार्य्य, साधुता और सदाचार द्वारा मनुष्य मुक्ता या

मिलती है। कुछ धर्म्मप्रवर्त्तक गुरु-सन्यासीदलके विवरण-पर यह कविता लिखी गई थी;—

"ईश्वरके जो ईश्वर हैं, वही हैं ईश्वर।
सर्व्वशक्तिमान वही हैं वही हैं परात्पर॥
हे नानक! तू यही जान निश्चय।
अनन्त गुणकी कभी धारणा नहिं होय॥"

* आदिग्रन्थके "आशा" नामक (Assa) अंशका आखिरी हिस्सा देखने लायक है।

† "आदिग्रन्थका" "आशा" राग (Assa Rag) और अंशका आखिरी हिस्सा और "रत्नमाला" (Ruttun Mala) नामक परिशिष्ट देखने लायक है।

ईश्वरमें लीन हो जाता है। मृत्युके उपरान्त जगदीश्वर मनुष्यसे पूछते हैं,—"क्या काम किया है?" * अधिकन्तु धर्म्मगुरु मनुष्यके कामोंके लिये यथायोग्य अनुताप करनेका उपदेश देते हैं। वह कहते हैं,—"यदि पापी मनुष्य मृत्युके समयतक ईश्वरसे क्षमा-प्रार्थना नहीं करता और अपनेको पतित नहीं समझता, तो ऐसी अवस्थामें वह कठोर शास्ति पाता है।" †

नानकने खदेशवासियोंका प्रचलित धार्म्मिक मत ग्रहण किया था। वह कहते थे,—जन्मान्तर और देहान्तर ग्रहणसे आत्मा शास्ति पाती और पापमुक्त होती है। ईश्वरानुग्रह लाभ होनेसे आत्मा देहान्तर ग्रहणमें विरत होती है। वह परम सुखको ही आत्मा और ईश्वरका आवासस्थान समझते थे। उनके मतसे जीवन उड़नेवाली चिड़ियोंका प्रतिविम्बस्वरूप

* The Adee Grunth, Pubbatee Ragiee. Compare Malcolm (Sketch, P. 161 &c.) and Wilkins, (As. Res, 1, 289, &c.)

† "नसीहत नामा" या (Nusseeut Nameh) फिरोन नामक एक कल्पित राजाके प्रति नानकका तिरस्कारमूलक ग्रंथ देखने लायक है। किन्तु ग्रन्थमें इस विषयका कोई उल्लेख नहीं है। जान पड़ता है, कि मनुष्यगत या निर्दिष्ट प्रयोग ग्रन्थके साधारण भावके उपयुक्त न होनेके कारण इसका विवरण लिखा नहीं गया। फलतः यद्यपि इसमें नानकका मानसिक भाव वर्तमान है, तथापि निश्चित रूपसे रचित मालूम नहीं होता।

है, किन्तु मनुष्यकी आत्मा आलातचक्रकी तरह उसकी चारों ओर अनवरत आवर्त्तन करती है। * अन्यान्य विषयमें भी प्रचलित भाषा और सामयिक ज्ञान उत्पन्नकर नानकने ऐसी ही राय जाहिर की थी। वह कहते थे,—"अन्धकारमें भी (Un-jun—अंजन) उज्ज्वल और रोशन होता है, इन्द्रजाल और प्रतारणामें (Maya—माया) भी जो विचलित और मुग्ध नहीं होते; जो प्रलोभनमें रहकर भी विशुद्ध और अकलङ्कित हैं,—वह पुरुष ही सुखके अधिकारी हैं ऐसा समझना न चाहिये, † प्लेटो और आलसकी रीतिके अनुसार नानक भौतिक जगत् और सत्ताके सम्बन्धमें चिन्ता करते थे। ‡

* "Adee Grunth", end of the 'Assa Rag'.

† "Adee Grunth", in the 'Sohes' and 'Ramkull-ee' (आदिग्रन्थका "सही" और "रामकली" अंश देखने लायक है)।

‡ अध्यापक विलसन, (As. Res', xvii 233 and Continuation of 'Mill's History of India', vii 101, 102) नानकके धर्मज्ञान और मतोंको अकिञ्चित्कर समझते थे; कारण, यह वेदान्त दर्शन और जड़ जागतिक औदासीन्यको आदर्शबोधक सूत्रानुसार उपलब्धि है। जगदीश्वरकी सर्वव्यापिताके सम्बन्धमें राय जाहिर करना बहुत ही कठिन है। ऐसा होनेसे किसी न किसी विशेष सम्प्रदाययुक्त होनेके दोषसे कलुषित होना ही पड़ेगा। राजनीतिक कवि मिल्टन जब मानते थे,—"शरीर आत्माकी ओर दौड़ता है,"—तब प्रायः

नानक ऐसी धर्मशिक्षा देते नहीं थे, कि मनुष्यकी देह फिर जीती है, और आत्मा चिरकालव्यापी पाप और नरकाग्निकी अन्यथ

किसी विशेष सम्प्रदायके प्रति उनकी श्रद्धा थी, Paradise Lost, v); किन्तु धर्मगुरु प्रेमोन्मत्त सेण्टपालने जब कहा है; "भौतिक देह रोपित हुई है और स्वर्गीय देह उत्तीत होगी" (Corinthians, xv. 44.) तब क्या उनकी अवज्ञा करना उचित है? या उनकी बातोंपर अविश्वास करना पड़ेगा? "क्या जगदीश्वरने स्वर्ग और पृथिवीको पूर्ण नहीं किया? या जगदीश्वर पृथिवी और स्वर्गमें विराजमान नहीं हैं, "(Jeremiah xxviii, 24)" "जिन जगदीश्वरमें हमलोग वास करते, गमनागमन करते और जिनसे हमारा जीवन अधिष्ठित है" (Acts, xvii, 24); "जिनसे, जिनके लिये और जिनके द्वारा हम सब द्रव्य पाते हैं" (Roman xi 36) इन सब बातोंको पढ़कर भी क्या कहना होगा, कि ईश्वरके भेजे दूत और भविष्यद्वक्तागण नास्तिक और देहात्मवादी थे? जी हीं, साफ समझमें आता है, कि जेरिमिया, पाल और नानकका दार्शनिक मत फैलानेके सिवा और दूसरा भी उद्देश्य था। उन्होंने लोगोंके दिलमें ईश्वरका महत्त्व और सत्यता बद्धमूल कर देनेकी चेष्टा की थी। जो भाषा सर्व्वसाधारणमें प्रचलित थी और जो भाषा कभी किसीको विपथगामी न करती, उन्होंने उस प्रचलित भाषाके साधारण प्रयोगसे ही इस कार्य्यसाधनको बहुत उपयोगी समझा था।

सिख और ब्राह्मण्य धर्म,—इन दोनोंमें यथाक्रम जो

भोगती है। पुण्यकार्य्य द्वारा घोर नारकी, पापासक्त आत्मामें भी पवित्रता उत्पन्न होती है और आत्मा पर्य्यायक्रमसे नई देह धारण करती है,—ऐसे धर्म्मोपदेशको प्रदान करना ही श्रेष्ठ

सादृश्य और मतभेद प्रचलित है, उसकी सम्बन्धमें अध्यापक वेल-सनके (As. Res. xvii 233 237 238) के साथ मोहसन-फानीकी (Dabistan ii 269, 270, 285, 286)को मिलाना उचित है। फिर इन दोनोंके साथ "सैरुल मुताखेरीन" को मिलाकर देखना चाहिये। इन सबकी बातें सच्ची हैं। उनमें एकने सिखोंका—प्रधानतः गङ्गाके निकटवर्त्ती प्रदेशके सिखोंका—अधूरा और कुरीतिमूलक धर्म्मविश्वास पूरी तरह लिखा है; दूसरे नानकके फैलाये जिस धर्म्मशिक्षाका पण्डित लोग हमेशासे प्रचार करते हैं, उस प्रचलित धर्म्मका सच्चा हाल लिपिबद्ध कर गये हैं।

यहां एक बात याद रखना उचित है, कि नानक और गोविन्दकी प्रवर्त्तित शिक्षापर सिखोंका ऐसा विश्वास है, कि वह मुहम्मद प्रभृति प्रचारित ईश्वर-भक्तिकी समाधि और समाप्ति मात्र है। मूसा, इब्राहीम, माइकेल और गेब्रिल प्रभृति स्वर्गीय दूतोंके प्रति मुसलमान लोग जैसी भक्ति दिखाते हैं, उसकी अपेक्षा सिखोंको ब्रह्म, विष्णु और सन्यास स्वर्गीय देवताओंकी उपा-सना,—व्यवहारतः अयौक्तिक जान नहीं पड़ती। मध्ययुगके खृष्टधर्म्मप्रचारकोंने खृष्टधर्म्मकी सार नियमको परित्यागकर, केवलमात्र भाषापर निर्भर रह निरवच्छिन्न बहुत देवार्चना फैलाई थी। सिखोंकी ईश्वरोपासना खृष्ट-प्रचारकोंकी एकेश्वरवादि-

सम्भनेके कारण नानककी ओर उपेक्षा दिखाना युक्तियुक्त नहीं। * नानक अरबदेशीय धर्मप्रवर्त्तक मुहम्मद और

ताकी अपेक्षा ज्यादा उपेक्षणीय है।---Hallam, "Middle Ages" iii, 346.

— नानक पौराणिक बातोंका मैलिक व्यवहार करते थे। इस सम्बन्धमें वार्डकी "हिन्दू" नामक पुस्तक देखने लायक है। (Ward on the Hindoos, iii, 465) वस्तुतः नानक सदा ही हिन्दुओंके धर्मग्रन्थका उल्लेख करते थे; किन्तु वह मूर्त्ति पूजक नहीं थे। और एक बात सदा याद रखना उचित है, कि सेण्टपाल यूनानी लोगोंके दर्शनशास्त्रसे "दृष्टान्त" संग्रह करते थे, जिससे सेण्टपाल भी यूनानी कवियोंके काव्यका उपयुक्त प्रयोगकर सकते थे। बहुत दिन हुए मिल्टन ऐसा प्रतिपन्न कर गये हैं, (Speech for the Liberty of Unlicensed Printing) प्राचीन समयमें "डाइनि" इच्छाका फल योशु खृष्टके दौत्यका भविष्यवाक्य कहा जाता था। इन सब बातोंसे ही कृत्रिमताकी पहचान हुई है; खृष्टधर्मप्रचारकगण अब बहु-देवार्चना-दोषसे दूषित नहीं हैं। इस समय वह लोग एमाक्षिया या जुपिटरकी धात्रीको। कुमारी "मेरी" की प्रबल प्रतिकृति समझ कलुषित नहीं हैं।

* आत्माके "देहान्तर-ग्रहणके" सम्बन्धमें साधारणतः मुसलमान लोग ऐसा कहकर आपत्ति करते हैं, कि इस जन्मकी दुष्ट आत्मा दूसरे जन्ममें उसके पहलेकी अवस्था और गुणकी इसकी बातें याद नहीं करती; सुतरां दूसरेजन्मकी पवित्रताके

हिन्दुओंके ईश्वरावतारसमूहका भी उल्लेख करते थे। वह उन लोगोंको प्रतारक या कुरीति फैलानेवाले समझते नहीं थे। वह कहते थे, कि यह सब महात्मा सचमुच ही ईश्वरके भेजे हुए हैं। तब भी, उन लोगोंकी इतनी चेष्टा होनेपर भी पापका प्राधान्य वर्त्तमान रहनेको वह बड़ा दुःख प्रकाश करते थे। नानकके मतावलम्बी नानकको ही अवतार समझते थे। वह लोग विश्वास करते थे, कि पतितआपियोंके उद्धारके लिये— अपने और अपनी जातिके लोगोंमें, ज्ञानकी रोशनी—फैलानेके लिये— मानो वह स्वर्गसे उतर आये हैं। इच्छा करनेपर नानक

सम्बन्धमें आत्मामें कोई स्वाभाविक उत्तेजना-शक्ति नहीं रहता। आदमकी पाप-ज्ञान और उसके फलस्वरूप आदमके वंशधरोंकी प्रायश्चित्तकी बातें मुसलमान कभी स्वीकार नहीं करते। ब्राह्मणोंकी ऐसी नीति है, कि इन्द्रियसमूहकी परिवर्त्तनशील प्रकृतिसे आत्मा अन्तमें पूरा स्वातन्त्र्य अवलम्बन करती है। मिश्र देशीय प्रचारकोंका मत ऐसा है, कि विचारके दिन नश्वर और पाप-देह पुनर्जीवन पाती है। निरपेक्ष चिन्ताशील पुरुष इस विषयमें मिश्र देशवासियोंकी अपेक्षा ब्राह्मणोंका मत ही श्रेष्ठ समझेंगे। यद्यपि मोजेस इस विषयमें उदासीन थे, तथापि, इसराईल लोगोंके मनमें यह खयाल जमा रहा। इससे अन्यरूप धर्म्ममत प्रचारके लिये बहुत दिनोंतक बाधा पड़ी थी; अलौकिक कार्य्योंपर लोगोंका विश्वास होनेसे लोगोंके मनमें भी ऐसा विश्वास पुनर्जीवित हुआ था। (See also note, p. 33-34.)

भी अपनेको वैसा ही समझ सकते थे; किन्तु उन्होंने वैसा नहीं किया।—नानकने किसी खास देवताकी उपासनाकी प्रथा नहीं चलाई और शिक्षा नहीं दी। सब जगह सब समय उनका धर्म्ममत सभी ग्रहण कर सकते थे। नानक कहते थे,—वह ईश्वरके एक खरीदे गुलाम और सर्व्वशक्तिमानके एक आज्ञावाही दूत मात्र हैं। नानकने सर्व्ववादिसम्मत सत्यधर्म्मको ही अपने जीवनकार्य्यका एकमात्र मूलस्वरूप ग्रहण किया था। * उनके ग्रन्थ विवेक और आत्मोत्सर्ग विषयक उपदेशोंसे भरे

---

* नानकके उपदेशका मर्म्म यों है;—जगदीश्वर ही सर्व्व-कर्त्ता है; मानसिक पवित्रता ही पहला धर्म्म और सबसे श्रेष्ठ, प्रार्थनीय और साधनीय वस्तु है। नानक सबको आत्मोत्सर्ग और आराधना सीखनेका उपदेश देते थे। वह कहते थे, पहलेके प्रवर्त्तकोंका प्रचारित धर्म्म ईश्वर-नीति सभी अकिञ्चित्कर है। वह भी अपनेको और प्रवर्त्तकोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ और असाधारणगुण और शक्तिशाली समझते नहीं थे। वह कहते थे, कि और सब लोगोंकी तरह लोगोंमें वह भी एक छोटे प्राणी विशेष हैं। अपने स्वदेशवासियोंको पवित्र जीवन वितानेका वह सदा उपदेश देते थे। (Compare the Dabistan, ii, 249, 250, 253; and see wilson, As. Res. xvii. 234, for the expression "Nanuk thy slave is a free-will offering unto thee," अर्थात् "हे परमपिता! नानक आपका ही भृत्य है। आपने उसे स्वाधीन इच्छा प्रदान की है; मैं आपकी आराधना करता हूँ।")

हैं। * नानकने यह बात कभी प्रकाश नहीं की, कि वह अपनी रचनावलीको ईश्वर-वाक्यको प्रधान अनुलिपि समझते हैं और न वह उसकी कोई अभिनव योग्यता या गुणकी व्याख्या करनेके प्रयासी हुए। उन्होंने कभी अपने धर्म्मके प्रचार करनेमें अलौकिक कार्य्यकी सहायता नहीं ली और न यह कहा, कि अलौकिक कार्य्यकलापसेही उनके फैलाये धर्म्मकी सत्यता बढ़ेगी। † वह कहते

---

* मुसलमान पुस्तक-रचयिताओंने नानकको पन्थकी और उपदेशसमूहकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। (Compare the "Seir-ool-Mutakhereen", P. 110, 111, and the 'Dabistan, ii. 251, 252.)

एशियावासियोंके इन सब प्रमाण पाण्डित्यपूर्ण नीतियोंके साथ युरोपके "वेरेन हेष्टिंग"का मत मिला देखनेसे, बहुत असमाव दिखाई देता है। वेरेन हेष्टिंग (Travels, p. 283) कहते हैं, गुप्त, अनिर्दिष्ट, असार और झूठे तत्त्वको मिलावटसे ग्रन्थ (Grunt'h) भरा है। उन्होंने स्वीकार किया है, कि सिख लोग एक ही ईश्वरकी उपासना करते थे; पौत्तलिकतासे घृणा करते थे और अन्ततः काल्पनिक जातिभेदको अवमानना करते थे।

† आदि ग्रन्थका ('Adee Grunth) श्रीराग (Sirree Rag) अध्याय अच्छी तरह देखने लायक है। इस ग्रन्थके "मझवार" (Majhvar) अंशमें लिखा है, कि नानकने अलौकिककार्य्यसम्पादनमें पारदर्शी एक प्रतारकसे कहा था,—"तुम अग्निमें अक्षत देहसे वास करो; चिरतुषाराच्छन्न

थे,—"एक ईश्वरकी वाक्यकी सिवा दूसरे किसी अस्त्रकी साहाय्यसे युद्ध न करो धर्मनीतिकी पवित्रताके सिवा निष्ठावान् धर्मगुरु कैसा कोई उपाय या अस्त्र नहीं है" । * नानक कहते थे,—"पृथिवीमें पुण्यकार्य्यरत धार्म्मिक लोगोंके लिये संन्यास-धर्म्म ग्रहण या संसार-धर्म्म परित्याग करना अकर्त्तव्य है। सर्व्व शक्तिमान् जग-दीश्वरके सामने साधु और गृही बराबर प्रिय और आदरणीय हैं।" यद्यपि उनके अपने दृष्टान्तसे मालूम होता है, कि हरेक मनुष्यका ही अपना स्वभावजात धर्म्म-कार्य्य-साधन कर्त्तव्य है; तथापि उन्होंने उनके समसामयिक मक्काभक्तो तरह विवाहित गुरुको ओर घृणाका भाव प्रकाश नहीं किया। † हिन्दू गोशालिकी पूजा करते और मुसलमान सुअर (शूकर)

स्थानमें अक्षत शरीरसे समय बिताओ; पत्थरका टुकड़ा तुम्हारा खाना हो; तुम ठोकर लगाकर बहुत मट्टीका ढेर दूर फेंक दो और तराजूसे सामग्री तौलो। इसके उपरान्त तुम पूछना, कि नानक क्या अस्वाभाविक काम कर सकता है?"

ष्ट्रसने (Strauss, 'Life of Jesus', ii' 287) ठीक किया है, कि यीशुख्रृष्टने भी अलौकिक कार्य्यके साधनका उपाय ढूंढनेमें बहुत घृणा प्रकाश की है। (John, iv, 48); ष्ट्रसने कहा है, कि ईश्वरादिष्ट दूतोंने कभी वाक्यसे या लेखनी-मुखसे किसी अस्वाभाविक कार्य्यका उल्लेख नहीं किया।

* Malcom, "Sketch, P. 20, 21, 165.

† "Adee Grunth" particularly the "Asa Ragi-nee" and "Ramkullee" Raginee (Compare the Dat-

की ओर घृणा दिखाते हैं। दो परस्पर विरुद्ध भावाक्रान्त विषयकी आलोचनाके समय नानकने विज्ञता और समदर्शिताका परिचय दिया था। इस प्रसङ्गसे जान पड़ता है, कि नानकने शिक्षाजनित कुसंस्कार और स्वाभाविक नम्रताको बहुत आदर दिया था। वह कहते थे,—"विधर्म्मियोंके दो अधिकार हैं। एक श्रेणीका गोजातिकी ओर सम्मान दिखाना; दूसरी श्रेणीका—शूकर जातिकी ओर जाति-क्रोध। किन्तु जो किसी जीवित प्राणीकी प्राणहानि नहीं करते, गुरु और पण्डित लोग उनकी ही प्रशंसा करते हैं। *

---

istan, ii, 271);—" आदिग्रन्थको अश्विनी रागिणी और रामकली रागिणी अच्छी तरह देखने लायक है।

* आदिग्रन्थ "माझ" अध्याय (Adee Grunth, Majh chapter) मेलकमका सारसंग्रह ३६ पृष्ठ देखने लायक है (note and Page 137) यहां लिखा है, कि नानकने शूकरका मांस खानेसे मना किया। किन्तु प्रकृत-प्रस्तावमें हिन्दुओंके लिये धरपलुआ शूकर-छौना सुअरका बच्चा का मांस सब समय ही जाति-धर्म्म-नाशक है। ("Munnoo's Institutes" V, 19) "देबीस्तान" (Dabistan, ii, 28) में लिखा है, नानकने मादक द्रव्य (शराब) और शूकरका मांस खानेसे मना किया। वस्तुतः खाद्य लिङ्गके सम्बन्धमें विपरीतमतव्यञ्जक बहुत दृष्टान्त दिखाये जा सकते हैं। वार्डने (Ward "On the Hindoos" iii., 466) प्रमाणित किया है, कि जो मांस भक्षण करते, नानकने उन्हें निर्दोषी कहा था।

इस तरह नानकने बहुत दिनोंकी प्रचलित पुञ्जीभूत कुसंस्कार और कुरीतिसे अपने शिष्योंको मुक्त किया था। चित्तकी एकाग्रता और स्वाभाविक आचार-व्यवहारका उत्कर्ष-साधन

नानकने और भी कहा है, कि शिशु मातृस्तन्य पीता है, वह शिशु असलमें मांस भक्षण करके ही जीवन धारण करता है। "गुरु रत्नावलीग्रन्थ" (Coor-Ratnaolee") के रचयिताने भी इस मतको बहुत कुछ अनुसरण किया है। उन्होंने पूछा था,—"मनुष्य स्त्रियोंसे विवाह करता है या नहीं? धर्म्मपुस्तक पशुचर्म्ममें बांधी जाती है या नहीं?"

किसी विशेष सम्प्रदायके पुरुषोंने और सिखधर्म्मावलम्बी पण्डितोंने समय समय पर नानकके साधारण नियमोंपर अन्यथा व्याख्या दी है। उनकी ऐसी व्याख्यासे व्यवहारिक भावमें पशु-जीवन रक्षाका विषय समझा जाता है। (Wilson, As. Res, xvii, 233) किन्तु सिखोंका ऐसा कोई मनोभाव जान नहीं पड़ता। जैन और अन्यान्य सम्प्रदायके मनुष्य मक्खी और मकड़ी प्रभृतिके सम्बन्धमें इतने ज्यादा सावधान हैं, कि इस प्रथाको पूरीतरह अवलम्बन करनेसे लोग उनका उपहास करते हैं। भारतवर्षके कुछ "रोमन-क्याथोलिक" खृष्टान सम्प्रदायने भी यही नीति अवलम्बन की है। भूपालकी "क्याथोलिक" सम्प्रदाय आदि "लेण्टकी" समय (चालीस दिनका उपवास-पर्व) निज व्यवहारकी मैली चीनी व्यवहारमें लाते नहीं थे; क्योंकि चीनी तय्यार होनेके समय बहुत प्राणियोंका प्राण नष्ट होता है।

ही श्रेष्ठ और प्रथम कर्त्तव्यके रूपमें निर्द्दिष्ट हुआ था। उन्होंने शिष्योंको साहस और स्वाधीनता प्रदान की; उनलोगोंके मनका बन्द छूट गया। किन्तु नानकने कोई निर्द्दिष्ट नियम फैलाकर शिष्योंको सिकड़ीमें बांध नहीं दिया। इसतरह सब बातोंमें स्वाधीनता पानेसे दृढ़ विश्वासी उपासकोंका दल परिपुष्ट होता रहा; एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय तय्यार हुआ। नानककी संस्कार-नीतिका साक्षात् फलस्वरूप धर्म्मविषयक और नैतिक उन्नति बाधित होती रही। धर्म्मजिज्ञासो "सिख" या शिष्य नामसे अभिहित होते थे; उन्हें कोई अधीनस्थ प्रजा समझता नहीं था। ऐसे सिद्धान्तमें उपनीत होना असम्भव और गैर-जरूरी है, कि समाजसंस्कार और राजनीतिक-उन्नति-विधानमें नानक किसी सहजबोध्य धीर-गम्भीर मतके अधिकारी थे। समयके स्रोतमें शिष्योंका उन्नति-विधान छोड़; उन्होंने इहधाम परित्याग किया। अपना धर्म्म-सम्प्रदाय सङ्कीर्ण और समाजको अवस्थाके अनुपयोगी समझ उन्होंने अपनेको धर्म्मविधि-प्रणयन-कर्त्ता समझ वह घोषणा कर नहीं सके। उनका विधि-विधान, या जाति और वंशपरम्पराकी स्मरणातीत नीतिका बदलाव,—उन्होंने सम्भवपर समझा नहीं; उनके लिये वह विषय सहजसाध्य भी नहीं था। * जिससे उनके शिष्य कोई

* मेलकम ('Sketch' PP. 44'147) कहते हैं,—नानकने हिन्दुओंके सामाजिक नियमोंमें कुछ भी बदलाव नहीं किया। वार्ड (Hindoos, iii, 463) कहते हैं, कि सिखोंका अदालत या फौजदारी सम्बन्धी कोई कानून नहीं था। पुराने खण्डोंको-

एक सम्प्रदाय विशेष तय्यार कर न सकें, और जिससे उनका सर्व्वसामञ्जस्य अक्षुण्ण धर्म्मनीतिसमूह सङ्कुचित हो संसार-विरागी संन्यासियोंके धर्म्ममतकी तरह अलग न

संहिता या कानून आदिके सम्बन्धमें भी ऐसी ही निन्दा या प्रशंसा की जा सकती है। हम जानते हैं, कि सिखोंके सन्देह और कुसंस्कारके लिये और प्रमाण-सिद्ध किसी नीतिके अभावसे खृष्टधर्म्मप्रचारकोंको कितना कष्ट सहना पड़ा था (Acts, xv, 20, 28, 29, and Other Passages)। इङ्गलण्डकी धर्म्ममन्दिर-विषयक सप्तम संख्यक नियमावली और "स्काट" लोगोंके धर्म्मस्वीकारका उन्नीसवां अध्याय पढ़नेसे धर्म्म-प्रचारके आजकलके धर्म्माचारियोंका वर्त्तमान विरक्तिभाव मालूम होता है। यहूदियोंके कानूनके लिये खृष्टान लोग कैसे दायी और सिखोंके जाति-व्यवहार और मनुप्रवर्त्तित नियमसमूह सिखोंको अग्राह्य करना चाहिये या नहीं,—इसमें सन्देह नहीं, कि इस सम्बन्धमें बहुत दिनोंतक वादानुवाद चलेगा। पहले "जुड़ा" जातिका एक खृष्ट-सम्प्रदाय था; इस समय ब्राह्मण जातीय सिख वर्त्तमान हैं। उनका एक सम्प्रदाय शूकर नहीं छूता; दूसरे सम्प्रदायके मतसे गोजाति पवित्र है। एक ही वंश और एक ही जातिके परिवारमें आपसमें, विवाह-कार्य्य निर्व्वाह हो सकता है,—ऐसे खयालमें बंधनेसे जातिभेद रहित होना असम्भव है। (Compare 'Ward on the Hindoos,' iii, 469, Malcolm 'Sketch,' P. 157 note; and 'Forster's Travels' i 293, 295, 308 ।)

हो,—इस सम्बन्धमें उन्होंने असाधारण चेष्टा की थी। अपने इकले अपने चिन्ताशील विद्वान् संन्यासी पुत्रको धर्म्माधिकरणके उत्तराधिकारित्वसे वञ्चितकर वह अपने उद्देश्य-साधनकी विषयमें कृतकार्य्य हुए थे। ऐसा कहते हैं, कि नानककी मृत्युका समय नजदीक आनेपर, उन्होंने अपने प्रिय शिष्योंको बुला उनकी योग्यता और आनुगत्यकी परीक्षा ली थी; अन्तमें सरल और अनुरागी लेहनाको "श्रेष्ठ" पदपर रख कर गये। शिष्योंके साथ जब नानक पैदल आगे बढ़ते थे, तो पास ही एक मनुष्यकी मृतदेह दिखाई दी। उसे देख नानकने कहा,—"यदि हममें तुम लोगकी भक्ति हो, तो यह खाना (मृतदेह) खाओ।" लेहनाके सिवा और सभी इधरउधर करने लगे। लेहनाने घुटनाभर भार दे बैठ मृतदेहका कफन खोला, मृतदेह स्पर्शकर उसी नरमांस भक्षणका उपक्रम करते ही सबने आश्चर्यान्वित हो देखा कि वहांकी मृतदेह अन्तर्द्धान हुई है और उसकी जगह नानक पड़े हुए हैं। तब गुरुने अपने विश्वासी शिष्यका आलिङ्गन किया; कहा,—उनमें और शिष्यमें कोई प्रभेद नहीं; उनकी आत्मा सदा शिष्यदेहमें विराजमान रहेगी। * तब नानकने लेहनाका नाम बदल

---

* अनेक पञ्जाबी ग्रन्थकारोंने यह कहानी लिखी है। डाक्तर मेकग्रीगरने भी अपने सिख-इतिहासमें (i, 41) प्रकारान्तरसे इसका उल्लेख किया है। दबीस्तानमें ऐसा लिखा है, कि प्रायः चारो युगमें ही गो, घोड़ा, हाथी और नर-बलिकी प्रथा प्रचलित थी। इससे मालूम होता है, कि नर-

"अङ्गे खुद" या "अङ्गद" (अपनी देह) नाम रखा। * ऐसे गप्पकी भीत चाहे जो हो, मृत्यु-साधन सच हो या झूठ—किन्तु सिखोंका पूरा विश्वास था, कि परवर्त्ती प्रत्येक गुरुकी देहमें नानककी आत्मा अवतारस्वरूपमें आविर्भूत होती है। † "अङ्गद" सिखोंके गुरुपदपर प्रतिष्ठित हुए। नानक जिस भयसे भीत हुए थे, उनके पुत्र श्रीचन्द्र‡ कार्य्यतः वही कर बैठे;

मोक्षप्राप्त पुण्यात्मा लोग मुक्ति पाते और इतर मनुष्य फिर शरीर धारणकर पृथिवीमें अवतीर्ण होते हैं।

* (Compare Malcolm, Sketch of the Sikhs p 24 note,

† यही विश्वास सिख-धर्मका एक मौलिक विशेष है। Compare the Dabistan, (ii, 253, 281)—दबीस्तान देखने लायक है। "देबीस्तान" के रचयिता मोसन फानीके पास गुरु हरगोविन्दने "नानक" के नाम दस्तखतकर एक चिट्ठी लिखी थी।

‡ उदासियोंके कुछ हालके लिये विलसनका "एशियाटिक रिसार्च," के सतरहवें अध्यायका २३२ पृष्ठ देखना चाहिये। (wilson "Asiatic Researches" xvii, 232) यह सम्प्रदाय इस समय चारों ओर फैल पड़ा है। इस सम्प्रदायके सभ्य लोग सिखोंके साथ घनिष्ठताके लिये बहुत अभिमानी हैं। यह सभी नानकके ग्रन्थका व्यवहार करते और उनके प्रति भक्ति रखते हैं।

टिप्पणी।—नानकके सम्बन्धमें और बातोंके लिये ... इच्छा

वह उदासी (पार्थिव चिन्तामें सम्पूर्ण उदासीन) नामक एक हिन्दू-सम्प्रदायको प्रतिष्ठाकर उसके गुरुपदपर वरित हुए।

होनेपर उत्सुक पाठकगण मेलकमका "सार-संग्रह" (Malcolms Sketch) "दैबीस्थानकी" दूसरी पुस्तक (Second volume of the Debistan) और डाक्तर मेकग्रीगरके इतिहासका पहला खण्ड, नव संस्करण (Dr. Macgregor's History first volume) को आलोचनाकर देख सकते हैं। स्वल्पस्य या "नोटमें" इसके लिखानेकी जरूरत जान नहीं पड़ी।

तृतीय परिच्छेद ।

सिख-गुरु या शिक्षकगण ; गोविन्द द्वारा सिख-धर्मका संस्कार-साधन ।

१५२९—१७०६ ।

(गुरु "अङ्गद,"—गुरु अमर-दास और "उदासी" सम्प्रदाय ;—गुरु रामदास ;—गुरु अर्जुन ;—"प्रथम ग्रन्थ" और सिखोंका समाज-गठन ;—गुरु हरगोविन्द और सिखोंका सैनिक सम्प्रदाय ;—गुरु हरगोविन्दराय ;—गुरु हरकृष्ण ;—गुरु तेगबहादुर ;—गुरु गोविन्द और सिखोंकी राजनीतिक अवस्था ;—गोविन्दके अनुवर्ती बान्दा वैरागी ;—सिखोंकी प्रसार वृद्धि ।)

सन् १५३९ ई०में नानक परलोक गये । उनके प्रियतम शिष्य अङ्गद सिखोंके गुरुपदपर अभिषिक्त हुए । अङ्गदने क्षत्रिय जातिके "तिहुन" वंशमें जन्म लिया था । विपाशा नदीके तीरवर्ती मेघालके पास कादूर नामक स्थानमें १५५२ ई०में उनकी मृत्यु हुई । अङ्गदके धर्म्माधिकारके समयका ज्यादा विवरण कुछ पाया नहीं जाता । तब भी, उन्होंने नानकके पुराने सहचर बाला-सिन्धुसे नानकके सम्बन्धमें जो सुना था, नानकको अर्चना या सेवाके समय जो सब उपदेश पाया था और नानककी प्रकृतिके सम्बन्धमें स्वयं जो अनुधावन किया था,—केवलमात्र वही लिपिबद्ध कर गये हैं । दूसरे सदय एवं इच्छा

कर "ग्रन्थ"में मिलाया गया। महात्मा नानकने उन्हें जो शिक्षा—जो नीति प्रदान की थी, अङ्गद जीवनभर उसीपर दृढ़ विश्वासी थे और उसका ही अनुसरण करते थे। अङ्गदने अपने दोनो लड़कोंमें किसीको भी धर्म्माधिकरण या अपने उत्तराधिकारीके उपयुक्त नहीं समझा। इसलिये ही अमरदास नामक एक परिश्रमी और धर्म्मनिष्ठ अनुचरको प्रचारकार्य्य और धर्म्माधिकरणपर प्रतिष्ठित कर गये थे। *

अमरदास भी गुरुकी तरह क्षत्रियवंशसम्भूत थे; किन्तु वह "भाले" शाखामें थे। बहुत मनुष्योंको अपने धर्म्ममें शिष्यरूपमें दीक्षितकर अमरदास धर्म्मप्रचारमें बहुत कृतकार्य्य हुए थे। कहा जाता है,—सहिष्णु अकबर भी दिल लगाकर उनका धर्म्मोपदेश सुनते थे। शिष्यमण्डलीकी तरह नानकके पुत्र श्रीचन्द्रके अनुचर लोग भी "प्रथम गुरु" के शिष्य नाम

* बहुत लोग कहते हैं, कि अङ्गदने १५६१ संवत् या १५०४ ईस्वीमें जन्म लिया था। फिर कोई कोई कहते हैं,—१५५७ संवत् या १५०० ई०में अङ्गद पृथिवीमें अवतीर्ण हुए। साधारणतः सभी १६०९ संवत् (१५५२ ई०) उनका मृत्यु काल ठीक करते हैं। कहीं कहीं उनकी मृत्युका वर्ष कुछ दिन पहले निर्द्धारित होता है। सिखोंके विवरणमें महीना और कितनी बातें लिखी हैं; किन्तु उसपर विश्वास किया नहीं जाता। फरष्टरने (Forster Travels i, 296) १५४२ संवत् अङ्गदकी मृत्युकी तारीख बताई है। शायद भ्रमवश १५५२ संवतकी जगह १५४२ संवत् मुद्रित हुआ हो।

पड़ते हैं। अमरदासने घोषणा प्रचार की, कि संसारत्यागी "उदासिगण" कर्मकुण्ठ संसारासक्त "सिख" सम्प्रदायसे बिलकुल अलग हैं। इस घोषणाके प्रचारसे अमरदासने उसका उपाय विधान किया, कि उक्त सम्प्रदायके आधिपत्यकी वजह सिखधर्म कलुषित या विलुप्त न हो। * अमरदास भी नानककी तरह गर्व्वके साथ कहते थे,—"अग्निमें जिसका विनाश नहीं, किन्तु अनुतापानलसे जो दग्धीभूत है, वही असली सती है; अनुतप्त दीन मनुष्य ही ईश्वरोपासना व आत्मप्रसाद पाता है। अमरदासने धीरे धीरे कुप्रथाका विनाश किया; कठोर विधि-निषेध न फैलाकर प्राणके भीतर विश्वासका बीज बो दिया; लोगोंको सद्व्यवहारसे वशीभूतकर उन्हें दोषसंशोधनकी राह दिखा दी। † अमरदास प्रायः साढ़े बाईस वर्ष

---

* मेलकमने (Malcolm Sketch, P. 27) साफ कहा है, कि अमरदासने ही यह अलगाव किया, दैबीस्थानमें (Dabistan, ii, 571) लिखा है, कि साधारणतः सिखोंके गुरुओंने ही यह स्वातन्त्र्य फैलाया था। अबके कितने ही शिक्षित सिख समझते हैं, कि उदासी और नानकके प्रकृत शिष्योंमें यह अलगाव अर्ज्जुनने ही पहले पहल प्रमाणग्रन्थों द्वारा प्रतिपन्न किया था।

† "आदिग्रन्थ" के (Adee Grunth, Soohee Chapter) सोही अध्यायका जो अंश अमरदास-रचित है,—वही इसके सायक है। फरष्टर कहते हैं,—नानकने सतीदाह छुड़ाया था और विधवाविवाहका अनुमोदन किया था।" किन्तु नानकने

गुरुपदपर अधिष्ठित रहे। सन् १५७४ ई०में वह परलोक गये। उनके एक पुत्र और एक कन्या थी। * कन्याकी असीम पितृभक्तिसे और सेवाव्रतसे वह मुग्ध हुए थे; कहते हैं, इसी-लिये और शिष्योंकी अपेक्षा अपने दामादको वह श्रेष्ठ समझते थे और अन्तमें उन्हें ही उन्होंने "बरकत" या गुरुकी तरह गुणसम्पन्नकी नामसे प्रचार किया था। ऐसा और भी कहा जाता है, कि उनको उस उच्चाभिलाषिणी कन्यासे गुरु प्रतिज्ञा-बद्ध हुए थे, कि कन्याकी सन्तान-सन्तति ही कायदेके साथ गुरु-पदपर प्रतिष्ठित होगी।

अमरदासके दामाद रामदास क्षत्रिय वंशकी "सोधी" शाखामें थे; इन्होंके प्रेमके और गुरुके मनोनयनके वह उपयुक्त पात्र थे। बादशाह अकबर रामदासको बहुत चाहते थे; रामदा-

इस सम्बन्धमें कोई खास नियम विधिबद्ध नहीं किया था। पहले अकबर और जहांगीर (Memoirs of Jehangheer) और इसके बाद अङ्गरेजोंने इस प्रथाका नाश किया था। इससे पहले प्रमाणप्रयोग द्वारा ऐसे आत्मोत्सर्गके निवारणकी कोई चेष्टा हुई नहीं थी।

* उमरदासके जन्मकी तारीखके सम्बन्धमें सब जगह ऐसा ही हाल दिखाई देता है। उन सब वर्णनोंके अनुसार उमरदासने १५६६ सम्वत् या सन् १५०६ ई०में जन्म लिया। उनकी मृत्युका समय १६३१ सम्वत् (१५७४ ई०) स्थिर किया गया है। यहां एक विवरणमें व्यतिक्रम दिखाई देता है; इससे मालूम होता है, १५८० ई०में उनकी मृत्यु हुई।

सको उन्होंने कुछ भूसम्पत्ति भी दी थी। इस जमीनपर रामदासने एक पुष्करिणी बनवाई, वह पुष्करिणी ही "अमृतसर"✽ या "अमरत्वके आधारके" नामसे विख्यात है। रामदासका प्रतिष्ठित धर्म्ममन्दिर और उसकी चारो ओरकी पर्णकुटी उनके ही नामानुसार "रामदासपुर" के नामसे अभिहित हुई थी। * रामदास सिख गुरुओंमें श्रेष्ठ और श्रद्धाभाजन थे। लोगोंके यज्ञोपयोगी किसी "मन्त्र" या नीतिका उन्होंने प्रचार नहीं किया; किसी तरहका कार्य्यकारी नियम भी कुछ बांध नहीं गये। वह सात वर्ष गुरुपदपर प्रतिष्ठित रहे। नानकके बादके सिखगुरु बयालीस वर्षकी चेष्टासे भी दूनीसे ज्यादा सिख-संख्या बढ़ा नहीं सके। इससे साफ जान पड़ता है, कि नानकके फैलाये धर्म्मने किसतरह धीरे धीरे उन्नति पाई। †

---

* Malcolm, 'Sketch, p, 29, Forster Travels i, 297 the Dabpistan ii, 275, सिख लोग कहते हैं, कि एक बैरागी अकबरके दिये इस दानके दखलके लिये विवाद करनेपर तय्यार हुआ था। बैरागीको ऐसा विश्वास था, कि यहांकी प्राचीन पुष्करिणी उसके सम्प्रदायके पृष्ठपोषक देवता रामके नामसे दी गई थी।—ऐसा कहकर ही वह विवाद करता था। किन्तु सिख गुरुने खड्डोंके साथ कहा था, कि वही उन बीरोंके सच्चे प्रतिकृति हैं। बैरागी कोई प्रमाण दिखा न सका; रामदासने मट्टीके गम्भीरतम तलदेशको खुदवाकर अपने अनुचरोंको अपने कहे ... दिखाई।

† ... ... न्दिके आरम्भमें भाई कानसिंहने एक ... की

सन् १५८१ ई०में रामदासके पुत्र अर्ज्जुन सिखोंके गुरुपदपर वरित हुए। इस तरह उनकी माताकी (अमरदासकी कन्याकी) मनोवाञ्छा पूर्ण हुई। * अर्ज्जुन ही सबसे पहले नानकके दिये धर्म्मोपदेशोंका प्रकृत तात्पर्य समझ सके।

लिखी हुई पोथीका उद्धार साधन किया है। उसमें लिखा है, कि वह (नानक) अपने ८४ शिष्योंके साथ धर्म्म-विषयक बात-चीत करते थे। उपर्युक्त प्रसङ्गका ऐसा ही मर्म्म है।

रामदासने १५८१ सम्वत्में (सन् १५२४ ई०में) जन्म लिया। सन् १५४५ ई० में उनका विवाह हुआ। सन् १५७७ ई० में अमृतसर (अमृतसरोवर) की प्रतिष्ठाकर उन्होंने सन् १५८१ ई०में इहधाम परित्याग किया।

* इसमें सन्देह है, कि रामदासके दो पुत्र थे या तीन। पृथ्वीचन्द्र (बनाम भारतमल या धीरमल) अर्ज्जुन और महादेव उनके इन तीन पुत्रोंका परिचय मिलता है। इसमें भी संशय है, कि अर्ज्जुन और पृथ्वीचन्द्रमें कौन बड़ा और छोटा था। तब भी, यह स्थिरनिश्चय है, कि यद्यपि पृथ्वीचन्द्र पिताकी मृत्युके बाद धर्म्माधिकारके दावी नहीं हुए, किन्तु भाईकी मृत्युके बाद उन्होंने उत्तराधिकारित्वके लिये जिद की। अर्ज्जुनको विष देनेकी चेष्टा करनेके कारण सबने ही उन्हें दोषी ठहराया। (Compare Malcolm, 'Sketch', p. 80 and Dabistan', ii, 278). शतद्रुके निकटवर्त्ती स्थानमें, विशेषतः फीरोजपुरके दक्षिण "कोटहारसहाई" नामक स्थानमें पृथ्वीचन्द्रके वंशधर आज भी रहते हैं।

सबसे पहले उन्होंने यह अवधारण किया, कि यह सब नीति जीवन और समाजको किस अवस्थामें किस भावसे प्रयुक्त होती हैं। अमृतसरमें इनके शिष्योंका प्रधान धर्म्माधिकरणका स्थान ठीक हुआ था। पार्थिव भोग-लालसासे आकृष्ट हो इस पवित्र स्थानमें वह लोग एकता-सूत्रमें आबद्ध होते थे। जहां एक समय रामदासकी निर्ज्जन पर्णकुटी और पुष्करिणी मौजूद थी, वह स्थान इस समय बहुजनाकीर्ण शहर हो गया है,—वह सिखोंका एक महत् तीर्थस्थान गिना जाता है। * पूर्व्ववर्त्ती गुरुओंके सूत्र या नीतिको संग्रहकर अर्जुनने एकत्र रचना की थी। † इससे कोई शताब्दि पहले धर्म्मसंस्कारकोंके बहुत परि-

---

* सिखोंके साधारण विवरणमें देखा गया है,—अर्जुनने अमृतसरमें ही वासस्थान ठीक किया था। किन्तु वह कुछ दिनोंतक "तारन तारन" नामक स्थानमें वास करते थे; यह स्थान अमृतसर और शतद्रु, विपाशा दोनो नदियोंके सङ्गमके बीचमें है। (Compare the 'Dabistan,' ii, 275)

† Malcolm, "Sketch," p. 30. लोगोंकी बातोंसे और कितने ही ग्रन्थकारोंका विवरण पढ़नेसे मालूम हुआ है, कि अर्जुनने ही "प्रथम-ग्रन्थ"की रचना की है; किन्तु नानकके अनेक धर्म्मोपदेश अङ्गदने संग्रह कर रखे थे। फरष्टर (Forster, Travels, i, 297) कहते हैं, रामदासने पहले अपने पूर्व्ववर्त्ती गुरुओंका इतिहास और मतामत, सङ्कलनकर, उसमें टीका मिलाई। उन्हीं ग्रन्थकर्त्ताने प्रतिवादसूचक वाक्यसे और भी ठीक किया है, कि अङ्गद ही इसके सङ्कलनकर्त्ता हैं।

चित और उपयोगी ग्रन्थसमूह संयोजित हुए। अन्तमें वह जैसे अपने हाथसे लिख और उन्हें ईश्वरोपासनाकी विधि और सदुपदेशोंसे ग्रथितकर अर्ज्जुनने घोषणा की, वह सङ्कलन ही सबसे श्रेष्ठ "ग्रन्थ" या धर्म्मशास्त्र है। शिष्योंके नैतिक और धर्म्म-सम्बन्धी आचारपद्धति चलानेके लिये अर्ज्जुनने कई एक नियम बांधे। उन नियमोंके फैलानेके समय उन्होंने कहा,—साधारण लोग, यहांतक, कि धर्म्माचार्य ब्राह्मण भी वेदाध्ययनमें अकर्म्मण्य हो पड़े हैं; इस समय उनपर रत्तिभर भी विश्वास रखना न चाहिये। * इससे पहले शिष्यलोग जो सब पूजोपहार (प्रणामी) देते थे, अब वह रीतिके अनुसार कररूपमें परिणत हुई। अर्ज्जुनके प्राधान्यके समय उनके शिष्य और सहचरोंने हरेक शहर और प्रदेशमें बसती फैलाई थी, धर्म्मोपदेष्टा गुरुको ओर सम्मान दिखाने और उनको पूजा और प्रणामी देनेमें सिख लोग आप ही आरूढ़ होते थे। सामाजिक रीति और स्वाभाविक गुरुभक्तिवशतः वार्षिक धर्म्मसभामें उपस्थित हो गुरुके पादपद्मपर सिख लोग जो प्रणामी प्रदान करते थे, धर्म्मनिष्ठ मनुष्योंसे संग्रह करनेके लिये अर्ज्जुनके प्रतिनिधि

---

* "Adee Grunth," in that Portion of the "Soohee" Chapter written by Arjoon. (आदिग्रन्थके "सूही" अध्यायका जो अंश अर्ज्जुनने लिखा है,—वह देखने लायक है।) "आदि या प्रथम ग्रन्थका" कुछ विवरण जाननेके लिये परिशिष्टका प्रथम अध्याय देखना चाहिये। (See Appendix i, "Adee" or "First Grunth.")

देशको सब नगरोंमें हो घूमते थे। समसामयिक मोहन फानीने कहा है,—इस प्रथाके फैलनेसे सिख लोग कार्य्यके मुताबिक राज्यशासन-तन्त्रमें अभ्यस्त हो गये थे। * अर्थ संग्रह और प्राधान्य फैलानेके और उपाय पैदा करनेमें भी अर्ज्जुन अमनोयोगी नहीं थे। शिष्योंको अर्ज्जुन विदेश भेजते थे। शिष्य लोग धर्मके जैसे विश्वासी और अनुरागी थे, वैसे ही व्यवसाय-वाणिज्यमें भी प्रखरप्रतिभासम्पन्न थे। उनके शिष्य तुर्किस्तानसे घोड़े खरीद सौदागरी करते थे; सौदागरी व्यवसायमें भी उन्होंने बहुत ख्याति-प्रतिपत्ति पाई था। †

धर्म्मनिष्ठ तपस्वियोंमें अर्ज्जुनने बहुत प्रतिष्ठा पाई थी। उनके जीवनचरित-लेखकगण कहते हैं, कि कितने ही योगी और धार्म्मिक पुरुषोंने उनसे शिक्षा पाई थी। वह धनी और सद्दंशजात मनुष्योंके भी बहुत श्रद्धाभाजन थे। अर्ज्जुनने लाहोर प्रदेशके राजस्व-सचिव चन्दूशाहकी कन्याके साथ अपने पुत्रका विवाह करना नामञ्जूर किया था। ‡ वह

---

* The 'Dabistan,' ii, 270 &c, Compare Malcolm, 'Sketch,' P, 80,

† सिखोंके साधारण विवरणमें ऐसा ही लिखा है। (Compare the 'Dabistan,' ii, 271)

‡ Compare Forster, 'Travels' i, 298. (पारसके "अमवरतान्त" पहली पुस्तकका २६८ पृ० देखना चाहिये) सिखोंका विवरण पढ़नेसे मालूम होता है, कि अर्ज्जुनके पुत्र ही चन्दूकी कन्याके विवाहके उपयुक्त पात्र कहे गये थे। चन्दूने

पञ्जाब राजनीतिज्ञ होनेके कारण बहुत समय उनसे परामर्श लेते थे। जहाँगीरके पुत्र शाहजहाँने जब राजद्रोहको दबाकर कुछ दिनों पञ्जाबपर अधिकार किया, तब अर्ज्जुनने ईश्वरसे उनकी मङ्गलकामना की थी। बादशाहने एक समय गुरुको अपनी मुलाकात करनेके लिये बुलाया; कहते हैं, प्रधानतः चन्दू

शृगालभावसे इस प्रस्तावका अपमान कर कहा था,—"यद्यपि अर्ज्जुन एक विख्यात और धनी पुरुष हैं, तथापि वह एक भिक्षुकमात्र हैं।" ऐसी बात सुन उपहासके लिये अर्ज्जुन क्रुद्ध हुए थे। उनके क्रोधकी शान्तिके लिये और फिर उनसे मित्रता स्थापन करनेके लिये चन्दूने बहुतेरी चेष्टायें की थीं; किन्तु अर्ज्जुन उस विवाहके लिये किसी तरह सम्मत नहीं हुए।

नामके अन्तमें "शा" (शाह) शब्दका मेल,—भारतवर्षमें विस्तृतभावसे प्रचलित एक कुसंस्कार रूप उपाधि मात्र है। यह फारसी भाषाका शब्द है; इसका अर्थ "राजा" है। किन्तु धर्मनिष्ठ-हिन्दुओंमें जैसे "महाराज" की उपाधि प्रचलित है, मुसलमान फकीरोंमें भी उसी तरह "शा या शाह" उपाधि प्रयुक्त होती है। इससे एक प्रधान सौदागर समझे जाते हैं; या "साहु" या "साहुकार" शब्दके अपभ्रंशमें व्यवहृत होता है। यह शब्द "शा" या "सुहाई" शब्दके अपभ्रंशरूपमें "नाम" या "पदवी" स्वरूप प्रयुक्त होता है। मुसलमान-धर्ममें दीक्षित नर्मदाकी तीरवर्त्ती "गव्ह" लोग सबके नामके "शाह" शब्दका व्यवहार करते हैं।

शाहकी प्ररोचनासे बादशाहने उन्हें शृङ्खलियोंमें बंधवाया था। अर्जुनके चन्दू शाहसे साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापनमें इनकार करनेपर अवसर पा बादशाहसे चन्दू शाहने प्रकट किया,—अर्जुन उच्चाभिलाषी पुरुष है; उसके द्वारा भविष्यत्‌में अनिष्ट हो सकता है।" * सन्‌ १६०६ ई०में अर्जुनकी मृत्यु हुई। कितने लोगोंका विश्वास है, कि कारागारकी असह्य यन्त्रणा ही उनकी अकाल मृत्युका कारण है। किन्तु उनके शिष्योंका दृढ़ विश्वास है,—

---

* "Dabistan" ii, 274, 273, सिखोंका सब विवरणसे ही गुरुके अपमान और विचारके सम्बन्धमें एक मत है; कहीं उनकी राजद्रोहिताका हाल दिखाई नहीं देता। उन सब लोगोंने एकवाक्यसे घोषणा की है, कि बादशाह गुरुकी धर्म-निष्ठता और निर्दोषितासे सन्तुष्ट हुए थे; फिर भी, वह लोग कहते हैं, चन्दूकी ईर्षविष और आज्ञा न माननेसे गुरु बारबार कारारुद्ध हुए थे। (Compare, Malcolm, Sketch, p 32) मोसन फानीने भी कहा है, खुसरूको मङ्गलकामना करनेसे एक थानादार और एक मुसलमान संन्यासी भी जहांगीर द्वारा निर्वासित हुए थे। (Dabistan ii, 278) बादशाह जहांगीरने खुद स्वीकार किया है, कि जब वह लाहोरके मार्गसे विद्रोहियोंको विध्वस्तकर शहरमें लौट रहे थे, तो उन्होंने थानादार शेखनिजाम नामक एक पुरुषको एक उपहार प्रदान किया। (Memoirs p. 81) जान पड़ता है, इसके उपरान्त उसके विद्रोहिताचरणकी बातें समझी थीं।

बादशाहकी रणभूमिसे गुरु एक दिन इरावती नदीमें स्नान करने गये थे ; पहरादारोंको भीत और चमत्कृत कर उस स्वच्छ-सलिला स्रोतस्विनीमें वह अन्तर्हित हुए। *

अर्जुनके धर्माधिकारके समय, उनके शिष्योंके दिलमें नानककी भक्तिसम्भ्रम मजबूत जम गई थी। † गुरुदास नामक उनके एक शिष्यने जैसा उदार मत प्रकाश किया था उससे गुरुके उद्देश्यमें स्पष्ट ही तरक्की हुई थी। गुरुदास अपने गुरुको व्यास या मुहम्मदके समाभिषिक्त समझते थे। उन्हें विश्वास था,—"नानक ईश्वरके भेजे थे ; वह बाह्य और आभ्यन्तरीण विशुद्धता और पवित्रताके फिरसे प्रतिष्ठाता थे ; पृथिवीका बढ़ता हुआ पापभार और विभिन्न सम्प्रदायका निष्ठुर आचार व्यवहार दूर करनेके लिये ही नानकका आविर्भाव हुआ था। वह मुसलमानोंके अन्ध धर्म-विश्वास और उनकी उद्धत प्रकृतिके विरुद्धवादी थे ;—हिन्दुओंके संन्यास धर्मसे

---

* Compare Malcolm Sketch. p. 33 ; the Dabistan, ii, 272-3 ; and Forster Travels i, 298.

एक विवरणके अनुसार मालूम हुआ है।—सन् १५६५ ई०में अर्जुनका जन्म हुआ था ; किन्तु उनके जन्मका वर्ष सन् १५५३ ई० होनेहीकी ज्यादातर सम्भव है। १६६३ सम्वत् १०१५ हिजरी या १६०६ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

† मोहसन फानीने ('Mohsun Fanee, Dabistan ii, 270) लिखकर रखा है, अर्जुनके समय सिख लोग देशके सब जगहोंमें ही फैले पड़े थे।

घृणा करते थे। उन्होंने पापपथको छोड़, धर्मपथपर रह जीवन बितानेकी आशा फैलाई थी। नानक जिन सत्यस्वरूप ईश्वरका विषय ठीक कर गये थे, उन्हीं अद्वितीय ईश्वरकी उपासना करनेका उन्होंने उपदेश दिया था। कहते हैं, इन धर्मनिष्ठ शिष्यकी कठोर, फिर भी, अनुरागपूर्ण विधानोंको अर्जुनने "आदि ग्रन्थमें" मिलाना अस्वीकार किया। शायद उन्होंने समझा था, कि नानक जो नीतिसमूह लिख गये हैं, वह उनके उद्देश्य या अभिप्रायके लिये उपयोगी हैं; क्योंकि नानकके नीतिसमूह कभी किसीके दिलमें घृणा या भय नहीं दिखाते। बल्कि गुरुदासके हाथके लिखे ग्रन्थ व्यवहारिक कार्य्यकलापका रूपकवर्णना विशेष है; उसे ईश्वरका गुणानुवाद-मूलक सरल स्तोत्र कह नहीं सकते। उनके बनाये नीतिसमूहमें नानकका उद्देश्य और भी साफ साफ कहा जा चुका है। नानकका प्रधान उद्देश्य था,—हिन्दू-मुसलमान सभी उनका फैलाया अभिनव-धर्ममत ग्रहणकर नये भावसे विमोहित होंगे, गुरुदासने जो नीति प्रवर्तन की थी,—वह भी नानकके उद्देश्यसे बहुत फैली थी। नानकका गूढ़कथनाप्रसूत दिव्यज्ञान परिवर्तित भावसे लोगोंके दिलमें जम गया था; सभी उस नीतिका अवलम्बनकर नये उत्साहसे उत्साहित हुए थे। इन सब कारणोंसे गुरुदासको हस्तलिखित नीतिसमूह उपेक्षणीय नहीं हैं। नानक कभी छलते या धोखा देते नहीं थे; वह मनुष्यकी पापासक्तिके लिये सदा ही आक्षेप करते थे; वह स्वदेशवासियोंको दिलसे चाहते थे। गुरुदास प्रमुख सिखजाति नानकको सर्वोत्कृष्ट समझते थे; उन्हें ईश्वरका अंश समझ

उनकी भक्ति करती थी; उनका विश्वास था, कि जातका पाप-ताप मिटानेके लिये ईश्वरकी प्रतिनिधिके रूपमें उनका आविर्भाव हुआ था। भारतकी विभिन्न जातियोंकी भविष्यत आशा और चिन्ताके विषयकी आलोचना करनेसे, नानकप्रचारित नीति-समूहके शुभ उद्देश्यका उज्ज्वल प्रमाण मिलता है। *

---

* भाई गुरुदास बल्लभके इस नामयुक्त या "ज्ञानरत्नावली" नामक ग्रन्थ सिख बड़े आदरसे पढ़ते हैं। (Malcolm, Sketch, p. 30, note) यह पुस्तक चालीस अध्यायोंमें सम्पूर्ण और तरह तरहकी कविताओंसे रचित है। इसका कुछ अंश परिशिष्टके तृतीय भागमें उद्धृत हुआ है। मेलकम कृत "सार संग्रह" के १५२ पृष्ठमें यह देखा गया है। (Appendix iii, and in Malcolm, "Sketch" p. 152 &c.) गुरुदास अर्जुनके साथ थे; वह अभिमान और गर्व्वके कारण गुरुके विरागभाजन हुए और इसीलिये गुरुने उनकी नीतिसमूहको "ग्रन्थमें" मिलाना अस्वीकार किया। समय और चिन्ताके आवर्त्तनमें,—सिख लोग और एक अलौकिक कामकी बात कहते हैं,—गुरुदास अपने दोष और नीचताकी उपलब्धि कर सके थे। शिष्यका अनुताप समझ अर्जुनने कहा, उनकी हस्तलिपि "ग्रन्थ" मिलाई जायेगी। किन्तु गुरुदास अन्तमें इतने धीर और नम्र हुए थे, कि गुरुसे उन्होंने प्रकाश किया था,—उनकी नीति-समूह "ग्रन्थमें" मिलानेके उपयुक्त नहीं हैं। इसके उपरान्त गुरुने इस निर्णयका प्रचार किया; कि चाहे कुछ भी क्यों न हो; सिख जाति यह नीतिसमूह अवश्य पढ़ेगी। वह कहते हैं;

अर्ज्जुनकी मृत्युके बाद उत्तराधिकारित्वके नियमानुसार उनके एकमात्र पुत्र गुरुपदपर अभिषिक्त होनेके अधिकारी हुए। लेकिन वह उस समय बालक थे, सुतरां अर्ज्जुनके भाई पृथ्वीचन्द्र उस गुरुपदको पानेकी लिये चेष्टा करने लगे। अर्ज्जुनके विरुद्ध भी उन्होंने कईबार षड़यन्त्र चलाया था,—उस विश्वासपर सिखोंने जल्द अर्ज्जुनके पुत्रको ही अपने गुरुपदपर प्रतिष्ठित किया। इसके भीतर ही पृथ्वीचन्द्रने कुछ शिष्य चुने थे; उन्होंने पृथ्वीचन्द्रकी नियमावलीका अनुसरण किया। इसतरह स्वतन्त्र सम्प्रदायका बीज अङ्कुरित हुआ;—विवाद और विच्छेदका सूत्रपात आरम्भ हुआ। अन्तमें सम्प्रदाय और धर्म्ममत जितना बढ़ा, विवाद और लड़ाई भी उतनी ही बढ़ गई। *
अर्ज्जुनकी मृत्युके समय उनके पुत्र हरगोविन्दकी उम्र ग्यारह

(Malcolm, "Sketch" p. 30 note) पिता अभिषेक या प्रतिष्ठाके सिवा अर्ज्जुन गुरुपदपर प्रतिष्ठित हुए। यह इस गुरुके असाधारण अनुशासनक क्षमताका एक उज्ज्वल दृष्टान्त है।

(Malcolm "Sketch" p. 30) मेलकम कहते हैं—चन्द्र प्राह (या दुर्गोचन्द्र) गुरुदास एक ही पुरुष था; जो ही यहां वह भ्रममें पड़ गये थे।

* Malcolm, "Sketch," p. 30, and "Dabistan" ii, 273. इस सम्प्रदायके धर्म्मावलम्बी "मीना" (Meena) नामसे अभिहित हैं। मोहन फानी कहते हैं, पञ्जाबमें यह शब्द "दुष्ट और अत्याचारितचक" अर्थमें साधारणतः प्रयुक्त होता है।

बालसे क्याशा की नहीं थी। लेकिन सिक्खोंसे चन्दूशाहकी दुश्मनीकी बात मालूमकर वह बहुत ही क्रुद्ध हुए। इसके बाद उन्होंने तरह तरहके उपायोंसे चन्दूशाहके विरुद्ध बादशाहको उत्तेजित किया; बादशाह द्वारा चन्दूशाहकी हत्या प्रचारित हुई। ऐसा भी कहा जाता है, कि बादशाहकी आज्ञाकी कुछ भी प्रतीक्षा न कर हरगोविन्दने खुद चन्दूशाहका निधन साधन किया। * चन्दूकी मृत्यु और हरगोविन्दके गुरुपद पानेके प्रथम समयका विवरण चाहे जैसा हो,—किन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि हरगोविन्दने बहुत थोड़े समयमें सिक्खोंके धर्म्मगुरु और नेतृपद पाया था। नानकने गार्हस्थ्य धर्म्मका नीतिसमूह फैलाया था; नानकके अनुशासे वह सब नीतिसमूह अर्जुन द्वारा व्यवहारोपयोगी हो गये थे। अब हरगोविन्दने जो नई शक्ति प्रदान की; उससे वह सब चटपट विस्तृत और सर्व्ववादिसम्मतरूपमें परिगृहीत हुई। अवस्थावश और स्वाभाविक प्रतिभाके बलसे हरगोविन्दने जो नई प्रथा चलाई, उससे प्रचलित रीति-नीति आचार-पद्धति और धर्म्म-कर्म्मका अनेक अंश बदल गया। पिताकी अपमृत्युसे उनकी मानसिक वृत्ति विचलित हुई थी, उन्होंने पितृप्रदर्शित नीतिके अतिक्रम करनेकी इच्छा की थी। हिन्दू-धर्म्मशास्त्र बहुत नीच आदमीको भी आत्मरक्षाके लिये उपदेश देता है;

मतविरोधकी ओर आदिम खृष्टानोंका झुका समझ पालने उनका तिरस्कार किया। (I Corinthians, i, 10-13)

* Compare Forster, Travels," ii, 298.

हरगोविन्द बादशाह जहांगीरके एक अनुचर हुए थे। जीवनकी अन्तमें वह असमसाहसिक योद्धृ पुरुष और उन्नत

होने स्वीकार किया है, कि मुसलमानोंके विरुद्ध धर्म्मविषयक वैरतावरणमें प्रवृत्त होनेसे हरगोविन्द बहुत ज्यादा इस बदला-वके साधन करनेपर बाध्य हुए थे। हरगोविन्दकी पितृ-मृत्युका बदला लेनेकी इच्छाने ताकत पकड़ी! उन्होंने सिखोंको अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित किया, जैसे योद्धाकी तरह सैन्यपरिचालनाकर उन्होंने शत्रुके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। सिख गुरु हरगोविन्दने जिस कारण ऐसे युद्धकी सजावट की, मोसन फानी-ने उसे आश्चर्यजनक और अस्वाभाविक नहीं समझा; सुतरां "दबीस्तान" नामक अपने ग्रन्थमें उन्होंने इस विषयका कोई कारण ठीक करनेकी चेष्टा नहीं की। नानकके फैलाये धर्म्म-मतके संस्कारके सम्बन्धमें सिख लोग आप ही कहते हैं, कि मिथिलादेशके पौराणिक "जनक"के द्वार्थ-भाषिक नीतिके साथ उसका मेल है। नानकके शरीरमें उन महात्माकी सुक्तात्माके प्रविष्ट होनेसे, नानक उनकी शक्तिसे अनुप्राणित हुए थे। ('Dabistan', ii 268)। व्यक्तिगत पौराणिक कहावतकी बातोंको मिलावटसे उन्होंने उनके शासनकर्त्ताके आदर्शको भारग्रस्त किया है।—अर्ज्जुनकी स्त्रीके पुत्र-सन्तान नहीं था; वह इसजीवनमें पुत्रकी माता न होनेके कारण हताश होने लगीं। वह नानकके एकमात्र पुराने बन्धु "भाई बुधा"के पास उनका आशी-र्व्वाद लेने गईं। लेकिन भाई बुधाने उनकी अवस्था और बहु-मूल्य पुष्पोपहार देख असन्तुष्ट हो उनकी ओर दृष्टि नहीं फेरी।

धर्म-विश्वासोंके क्रमसे परिचित हुए, उसका स्वाभाविक गुण जगह फैल गया था। सम्राटकी फौजके साथ वह काश्मीर

इसके बाद वह नङ्गे पैर गरीब प्रजाके उपयुक्त कुछ सामान्य खानेकी चीज सिरपर ले अकेले उन महात्माके पास गई। तब भाई बुधाने उनके प्रति दयार्द्र हो हंसकर कहा,—उनके एक पुत्र-सन्तान होगा और वह पुत्र "देग" और "तेग" ('Deg and Teg.') दोनोंका आधिपत्य करेगा। अर्थात् सरलभाषामें— साधारणतः खाद्य और तलवारभाण्डार (अस्त्रशस्त्र) है; लेकिन चार बातोंमें ईश्वरप्रसाद और राजशक्तिका अधिकारी होगा। जनककी "राज" और "योग" (१) शब्द भारतीय मुसलमानोंके "पीरी" और "मीरी" शब्द, यहूदियोंके भावी योशुखृष्ट (Messiah) और "मेलचीजेदक"के पौरहित्य और राजत्व-

---

(१) राज मेन योग कुमाऊँमें (Raj men jog koomaio) हमेशासे ऐसा वाक्य व्यवहृत होता है, कि अविनश्वर पुरुष और धर्म अर्ज्जन करनेमें, या पृथिवीमें ऐहिक राजशक्ति परिचालनाके समय, सुख-स्वच्छन्दसे वास करनेमें और ईश्वरकी कृपा पानेके अभिलाषी होनेमें "राज और योगका आचरण करो।" आदि ग्रन्थमें भी ऐसा ही लिखा है। कुछ भाट कवि "सिउवइयास" (Suwelas) में भी इसका व्यवहार करते हैं। इसलिये बीका नामक एक मनुष्यने कहा था, "रामदासने (चौथे गुरु) उमादासको 'राज और योग'के सम्बन्धमें तख्त (Tukht) या सिंहासन पाया था।"

गये थे; उन्होंने एक समय मुगलोंके धर्मोपदेष्टा मुल्लाओंके साथ पवित्र धर्म्म विषयपर तर्कवितर्क किया था। सिपाहि-

---

विषयक ज्ञानके साथ "तेग और देग" शब्द तुल्यार्थव्यञ्जक है। कहते हैं,—इसतरह हरगोविन्दने दो (तलवार) अस्त्रग्रहण किये थे;—एक उनको परमार्थिक शक्ति और दूसरा उनका शासन-कर्त्तृत्व प्रकट करता था। वह समय समयपर ऐसी घोषणा करना अच्छा समझते थे, कि एक उन्होंने पिताकी मृत्युके बदला लेनेकी इच्छासे और दूसरा मुसलमान धर्म्मके उच्छेदसाधन-कल्पसे धारण किया था। •(See Maloom, "Sketch," P. 35),

जो हो अर्ज्जुनकी मृत्यु और पुत्रकी योद्धृ-प्रकृति, इन दोनो कारणोंसे ही सिख जाति अस्त्र ग्रहण करनेपर वाध्य हुई थी। किन्तु उनका यह परिवर्त्तन कैसे साधित हुआ, वह साफ साफ मालूम नहीं होता; या उसका अनुसरणकर सच्ची घटना ढूंढ निकालनेके लिये भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। पुराने खृष्टानोंके ऐतिहासिक विवरणोंके सम्बन्धमें भी ऐसा ही सिद्धान्त पाया जाता है। सीजरके समय जो युद्ध और राज्यशासन-कार्य्यसे हुआ करते थे, उन्होंने जिस परिवर्त्तन और उन्नतिके बलसे "डाइयूक्लिसियन" के राजत्वके समय सैन्यदलयुक्त हो सैन्यसंख्यासे राज्य भर दिया था। और अन्तमें "कनसटानटा-इन" नामक एक मनुष्यको इउरोपीय सैन्यदलका अधिपति माना था,—उसके सम्बन्धमें हम अनजान हैं, कि वह परिवर्त्तन और उन्नति कैसे संसाधित हुई थी।

योंको भी तनखाह देना पड़ेगी, उस तनखाहका रुपया अपने पास रखनेके लिये एक समय सम्राटके साथ हरगोविन्दका मतान्तर हुआ था। हरगोविन्दके बहुत ज्यादा शिष्य और अनुचर थे। पशुशिकारका उन्हें बड़ा शौक था; मनुष्योंके गुरुरूपमें वह स्वाधीनताकी चिन्तामें विभोर हुए थे। वन और शिकारका कड़ा कानून लङ्घन करनेसे बादशाह उनकी ओर असन्तुष्ट हुए थे। अधिकन्तु अर्ज्जुनपर जो अर्थदण्ड हुआ था, अर्ज्जुनने उसे कभी परिशोध नहीं किया। इन सब कारणोंसे बादशाहने क्रुद्ध हो गवालियरके किलेमें हरगोविन्दको कैद कर दिया। वहां उनके लिये बहुत सामान्य आहारका बन्दोबस्त हुआ था। किन्तु विश्वासी सिक्ख लोग उसपर भी अपने नेताको अलौकिक क्षमतासम्पन्न और प्रकृत गुणशाली समझा किया करने लगे। इसके बाद वह सब गवालियरके दुर्ग-प्राकारके पास इकट्ठे हुए; जिस किलेमें उत्पीड़ित गुरु कैद थे, उस दुर्ग-प्राचीरके सामने वह लोग साष्टाङ्ग दण्डवत करने लगे। गुरुकी कारामुक्तितक उन लोगोंने ऐसा ही किया था। अन्तमें बादशाहने दयावश या कुसंस्कार प्रणोदित हो गुरुको कारागारसे मुक्त किया था। *

---

* Compare the Dabistan, ii, 273, 274 and Forster "Travels" i, 290, 299, । देशी इतिहासपर निर्भरकर काश्मीर-भ्रमण और मुसलमान मुल्लाओंके साथ धर्म्मकी बातचीतका दृष्टान्त उद्धृत हुआ है। मोसन फानीके समझमें हरगोविन्द बारह सालतक कैदमें बन्द थे। फरिष्टर कहते हैं,

सन् १६२८ ई०में जहांगीरकी मृत्युके बाद, हरगोविन्द मुसलमान बादशाहके अधीनमें ही काम करने लगे। लेकिन कुछ दिनोंके बाद ही उन्होंने पञ्जाबके राजकीय मुसलमान कर्मचारियोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। उनका एक शिष्य तुर्कदेशसे कई एक बहु मूल्य घोड़े लाया था। कहते हैं, वह सब घोड़े बादशाहकी सम्पत्ति समझ अवरुद्ध हुए; एक घोड़ा पुरस्कार स्वरूप लाहोरके काजी (विचारकर्त्ता) ने पाया। गुरुने उस घोड़ेके खरीदनेका छलकर उसका फिर उद्धार किया। इस तरह अपमानित होनेपर विचारकर्त्ता काजी हरगोविन्दपर क्रुद्ध हुए। और भी एक कारणसे उनका क्रोध बढ़ा। सिखलोग कहते हैं, काजीकी कन्या और मुसलमान लोग कहते हैं काजीकी उपपत्नी गुरुपर आसक्त हुई थी और गुरुने उन्हें अपहरण किया था। और और कारणोंसे भी हरगोविन्द मुसलमानोंके विरागभाजन हुए थे; सुतरां उनपर हमलाकर उनके सैन्यदलको विच्छिन्न करनेके लिये

पहले एक मुसलमाननेताने हरगोविन्दको बादशाहकी वश्यता स्वीकार करनेपर बाध्य किया; इन नेताकी मध्यस्थतामें उनकी कारामुक्ति हुई।

बादशाह जहांगीर अपने जीवनवृत्तान्तमें योगी और ऐन्द्रजालिक लोगोंकी ओर विश्वास और सम्मानके सम्बन्धमें बहुत दृष्टान्त दिखा गये हैं। खासकर उनके जीवनवृत्तान्तके १२९ प्रभृति पृष्ठ देखने लायक है। उनके एक ऐन्द्रजालिकके साथ उनके मुलाकातकी बात लिखी है।

मुसलमान लोग हतप्रतिज्ञ हुए थे। मुखलिस खाँ नामक एक सेनापतिने उनपर आक्रमण किया। लेकिन अमृतसरके निकट-वर्ती स्थानमें बादशाहकी सब सैन्य सिखों द्वारा पराभूत हुई थी। कहते हैं,—इस युद्धमें उनकी पाँच हजार सैन्यसे राज-कीय सात हजार सैन्य हार गई। इसके बाद सिख धर्मावलम्बी एक डाकू लाहौरसे बादशाहके दो श्रेष्ठ घोड़े चुरा ले गया था; इसके लिये प्रादेशिक सैन्य द्वारा गुरु फिर आक्रान्त हुए। लेकिन युद्धमें वह सब सैन्य विध्वस्त हुई और सेनापति लोग मारे गये थे। तब हरगोविन्दने विचार किया, कि शतद्रुके दक्षिण भातिन्दा नामक निर्जन वन्य-प्रदेशमें जा कुछ दिन बसना ही अच्छा है;—सोचा, कि वहाँ वह निरापद रह सकेंगे; राजकीय सैन्य वैसे दुर्गम स्थानमें जा उनपर फिर आक्रमण करना निष्प्रयोजन या विपत्सङ्कुल समझेगी। वह सुयोगकी प्रतीक्षा करने लगे। किन्तु वह सुयोग फिर न आया। नये झगड़ेमें पड़नेके लिये ही मानो वह फिर पञ्जाबमें आये। पायेन्दाखाँ नामक एक मनुष्यकी माता हरगोविन्दकी मजदूरनी थी। इस स्त्रीने एक समय बहुत प्राधान्य पाया। हरगोविन्द उस धात्री-पुत्रपर इतने दिनों बहुत दयापरवश थे और उसके साथ सरल व्यवहार करते थे। किसी समय घटनावश गुरुके ज्येष्ठ पुत्रका एक बहुमूल्य बाज-पक्षी उड़कर पायेन्दाखाँके घर चला। पायेन्दाखाँने उस बाज-पक्षीको खुद रखनेके लिये उसको पिञ्जरेमें बन्द कर दिया। उस पक्षीको कैद करनेके कारण पायेन्दाखाँ कुछ अपदस्थ हुआ था। पायेन्दाने गुरुसे छलना की और वह धीरे धीरे गुरुका

आखिर दुश्मन ही खड़ा हुआ। पञ्जाबमें हरगोविन्दकी उपस्थितिसे उत्तेजना बढ़नेपर उनकी चमता मिटाने और शत्रुदमनकी इच्छासे पायेन्द खाँ बादशाहका सेनापति निर्दिष्ट हुआ। पायेन्दखाँने गुरुपर आक्रमण किया। लेकिन युद्ध-कुशल धर्मगुरुने उसके जवान भाईको अपने हाथों मार फिर युद्धमें जय पाई थी। इस युद्धमें एक सैनिक मनुष्यने उन्मत्तकी तरह गुरुपर आक्रमण किया था; गुरुने उसकी अस्त्राघातसे आत्मरक्षाकर, उसे मार पैरों तले गिरा दिया था; साथ ही ऊँचे स्वरसे कहा,—"तुमने जैसे पागलकी तरह मुझपर आक्रमण किया था, तलवार उसतरह व्यवहृत नहीं होती। मैंने तुम्हें जिसतरह निपातित किया है, उसीतरह शत्रु-ध्वंसके लिये तलवारका इस्तेमाल होता है।" गुरुके इस उपदेशपूर्ण वाक्यका अवलम्बनकर "देबीस्थानके" रचयिता इस सिद्धान्तपर आये हैं,—"हरगोविन्द क्रोधपरवश हो किसीपर अस्त्राघात करते नहीं थे; वह मरे मनुष्यको उपदेश देनेके लिये बहुत विचारके साथ उसके मर्म्मपर आघात करते; कारण, शिक्षा-विधान करना ही गुरुका एकमात्र कार्य्य है।" *

---

* See the "Dabistan," ii, 275 (देबीस्थानकी दूसरी पुस्तकका २७५ पृष्ठ देखो)। खासकर घटनास्थलोंका ज्यादा हाल इस देशवाली मुसलमान और सिखोंके वैशीय विवरणसे संग्रह हुआ है। जो हो, गुरुके एक शिष्यके घोड़ेके अवरोधके सम्बन्धमें देबीस्थानका दूसरा हिस्सा—२८४ पृष्ठ देखने लायक है। (Dabistan ii, 284)

जान पड़ता है, इसके सिवा हरगोविन्दको और भी अनेका-नेक विपद्सङ्कुल और दुःसाहसिक काम पूरा करना पड़ते थे। इसी वजह वह समय समयपर घोर विपत्जालमें जड़ित होते थे; लेकिन उनके अनुचर सिख लोग हमेशा सुसज्जित रहते थे। धर्मविषयमें उनकी सुख्याति दिन दिन बढ़ने लगी। उनकी मृत्यु आनेसे पहले फारिस देशीय एक पुराने और विख्यात धार्मिक योगि पुरुष उनसे मुलाकात करने आये थे। * सन् १६४५ ई०में शतद्रुके तीरवर्त्ती कीरितपुर नामक स्थानमें हरगोविन्दने सुख-शान्तिसे इहधाम परित्याग किया। कालुर नामक स्थानके पहाड़ी राजाने हरगोविन्दको यह स्थान प्रदान किया था। इसके बाद गुरुभक्तिके निदर्शन स्वरूप सिखोंने आत्मत्यागकी भयावह मूर्त्ति धारण की। हरगोविन्दके एक राजपूत शिष्यने गुरुका चिताग्निमें कूद कई कदम आगे बढ़ गुरुके पदप्रान्तमें आत्मसमर्पण किया। "जाट" जातीय एक शिष्यने भी ऐसा ही भयावह काम किया था। इन सब दृष्टान्तों द्वारा प्रणोदित हो और शिष्य भी ऐसे कामका अनुसरण करनेपर तय्यार हुए थे; लेकिन परवर्त्ती गुरु हररायने उनके ऐसे आत्मोत्सर्गमें बाधा दी। †

The "Dabistan" ii, 280.

† देबीस्थानके लिखे अनुसार ऐसा ही प्रकट हुआ है। ('Deabistan', ii, 280, 281,) देबीस्थानके मतपर ही कहा गया है, कि ३ यं मुहर्रम, १०५५ हिजरी या सन् १६४५ ई०की १०वीं फरवरीको हरगोविन्दकी मृत्यु हुई है। मैं मैकालिफने

हरगोविन्दके समय सिखोंकी संख्या बहुत ज़्यादा बढ़ी थी। अर्जुनकी राजस्व-विषयक नीतिके फलसे और उनके पुत्रके अस्त्रधारण करनेके नामसे बृहत् साम्राज्यमें सिखोंका एक

"सारसंग्रह" (Malcolm Sketch P. 37) और फरष्टरके "भ्रमण-वृत्तान्त" ('Forster Travels' i. 299)—दोनों ही ग्रन्थोंमें लिखा है, कि सन् १६४४ ई०में हरगोविन्दकी मृत्यु हुई। यही हाल सच्चा और सम्भवपर है। ऐसी गिनतीसे प्रायः उन्होंने साफ समझा था, कि १७०१ संवत्, सन् १६४४ ई०के साथ बिलकुल बराबर है। लेकिन इस विषयमें उन्होंने विचार नहीं किया, कि केवल सन् १६४४ ई०के पहले नौ महीनेसे १७०१ सम्वत्के अन्तिम भागका मेल है। वर्तमान इतिहासकी और भी तारीखकी गिनतीके सम्बन्धमें यही भ्रम दिखाई देता है। हाथकी लिखी पुस्तककी आलोचना करनेसे मालूम हुआ, कि हरगोविन्दकी मृत्युके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न तारीख बताई गई है;—देखा गया है, कि उनकी मृत्युका समय यथाक्रम सन् १६३७, १६३८ और १६३९ ई० ठीक ठीक है। लेकिन चाहे जैसी वर्णना क्यों न रहे,—सभीमें एक गड़बड़ सिद्धान्त मिलता है। मोसन फानी कहते हैं,—उन्होंने १६४३ ई०में हरगोविन्दको जीवित देखा था; ('Dabistan', ii. 281) लेकिन इन सब विवरणमें उनकी मृत्युका समय कुछ पहले लिखा गया है। देशवासियोंकी गिनतीसे भी हरगोविन्दके जन्मका समय १६५२ संवत्के प्रथम भागसे निर्दिष्ट होता है; १५९५ ई० मध्यभागके साथ यह एक है।

स्वतन्त्र राज्य संस्थापन हुआ। जब गुरु अपने सरल-विश्वासी मुसलमान भाइयोंके साथ कौतुक करते, या अभिमानके लिये बन्धुका तिरस्कार करते, तब उनकी स्वभावसिद्ध गुप्त शक्ति प्रकाशित होती थी। एक दिन उनके बन्धुने कहा था,—"उत्तर देशके राजाने दिल्लीके विषय और वहांके राजाका नाम और उनका वंश-विवरण जाननेके लिये एक दूत भेजा है; मैं बहुत ही ताज्जुबमें आया हूं, कि वह धार्मिक-प्रवर नरपति-श्रेष्ठ जहांगीरके नामसे अवगत नहीं हैं।" * लेकिन हरगोविन्द अपने वैचित्र्य जीवनमें प्रकृत कार्य्य भूले नहीं। सिखोंका दृढ़ विश्वास है,—नानककी आत्मा परवर्त्ती स्थलाभिषिक्त प्रत्येक गुरुकी आत्मामें प्रवेशकर उन्हें, अनुप्राणित और नई शक्ति प्रदान करती है। † अपने शिष्योंके इस विश्वासको

* See the 'Dabistan', ii, 276, 277. (दबीस्तान द्वितीय पुस्तकका २७६, २७७ पृष्ठ देखो) मोबिद फानी खुद ही इस प्रसङ्गमें मुसलमानबन्धु हैं। इस बातसे मालूम होता है, कि सिखलोग मुसलमानबन्धुको स्वरूप ही आडम्बर-प्रिय समझते हैं। जिस समयकी बात कही जाती है, उस समय शाहजहां बादशाह थे। दबीस्तानके अनुदित खण्डमें बन्धनीके मध्यस्थित अंशमें जहांगीरके बदले शाहजहांकी ही बातें लिखी हैं। सन् १६२८ ई०में जहांगीरकी मृत्यु हुई। ऐसा जान पड़ता है, कि हरगोविन्दके साथ मोबिद फानीका परिचय, गुरुके जीवनके अन्तिम भागमें या १६४० ई०के बाद हुआ था।

† Compare the 'Dabistan', ii 281

और सम्मान दिखानेके लिये हरगोविन्द साधारणत: अपनेको नानकके नामसे ही अभिहित करते थे। हरगोविन्द जितना दर्शन-विज्ञान जानते थे और जितना ज्यादा उन्होंने ज्ञान पाया था, इससे उन्होंने समयके प्रचलित मतोंको ही ग्रहण किया। उनके मतसे,—ईश्वर अद्वितीय, विश्वसंसार इन्द्रजालमय;—सारतत्त्वहीन बाह्याकृति मात्र हैं। इसतरह वह ज्यादातर नास्तिक मत ग्रहण करनेमें प्रवृत्त हुए थे और इस विश्वब्रह्माण्डको उन्होंने ईश्वरका प्रतिकृति समझा था। तब भी, ऐसे विचारने उनके मनमें ज्यादा दिनों जगह नहीं पाई, या उनका हृदय उसमें मग्न नहीं हुआ। एक दिन एक ब्राह्मणने ऐसा कह उनका तिरस्कार किया था,—"यदि विश्वसंसार और ईश्वर एक ही है, तो यह जो थोड़ी दूरपर गदहा चरता फिरता है, गुरु होकर भी वह इस गधेके बराबर हैं।" ब्राह्मणकी इस भर्त्सनावाक्यपर धीर-सहिष्णु हरगोविन्द केवल हंस दिये थे। *
वह सोचते थे,—विवेक और बुद्धि हमारी एकमात्र परिचालक है। एक आदमीने प्रचार किया था, कि भाईके साथ बहनका विवाह ईश्वर-निषिद्ध है। उसके सम्बन्धमें गुरुका जो मत था, उस मनुष्यके प्रति गुरुके उत्तरसे ही वह प्रकट होता है। उन्होंने कहा था,—यदि परमेश्वर द्वारा यह मना है, तो यह गर्हित कार्य सम्पन्न करना मनुष्य लिये सुकठिन है। †
हरगोविन्द पौत्तलिक धर्मसे घृणा करते थे;—समय समयपर

* Compare the 'Dabistan', ii, 277, 279, 280.

† The 'Dabistan', ii, 280.

वह नानकप्रवर्त्तित नीतिप्रद उपदेशोंको भी परित्याग करते थे।* उनका ऐसा व्यवहार निम्नलिखित बातोंसे दिखाया जा सकता है ;—एक दिन उनके एक शिष्यने एक प्रतिमाकी नाक तोड़ दी थी। निकटवर्त्ती ब्राह्मण-क्षत्रीओंने गुरुके पास उस शिष्यके नामपर अभियोग लगाया। सिख-शिष्य गुरुके पास आया। गुरुके पास उपस्थित हो अपराधीने दोष अस्वीकार किया ; उसने निन्दा-स्तुतिके साथ कहा,—"यदि ईश्वर वहां उपस्थित हो उसके विरुद्ध गवाही दे सकें, तो वह अपनी इच्छासे प्राणदान करनेपर तय्यार है।" राजाने कहा,—"हे निर्ब्बोध! ईश्वर कैसे बात करेंगे।" राजाकी इस बातपर सिखने उत्तर दिया,—"अब साफ मालूम हो गया, कि कौन निर्ब्बोध है। ईश्वर यदि अपनी आत्मरक्षा कर नहीं सके, तो कैसे वह तुम्हारा उपकार करेंगे,—कैसे वह तुम्हें शत्रुके हाथोंसे बचायेंगे?" †

हरगोविन्दके ज्येष्ठ पुत्र गुरुदत्तने बहुत ख्याति-प्रतिपत्ति पाई थी ; लेकिन पिताकी मृत्युके पहले ही वह मृत्युमुखमें पतित हुए। उनके दो पुत्र थे ; उनमें एक सिखोंके गुरुपदपर वरित हुए थे। * यह नवाभिषिक्त गुरु हरराय कुछ दिनों

---

† The 'Dabistan', ii, 276.

* गुरुदत्त या गुरुदित्तके सम्बन्धमें अनेक ज्ञातव्य बातें दबेस्तानमें लिखी हैं। (See "Dabistan," ii, 281 282) उनकी स्मृति इस समय भी बड़े गौरवके साथ रक्षित है। उनके शारीरिक सामर्थ्य और नैपुण्यके विषयमें अनेक बातें प्रचलित

किरीतपुरमें हो र । जब उन्होंने कालूरके राजाको अधीनता-
पाशमें आबद्ध करनेके लिये उनके विरुद्ध सैन्य समावेश किया,

है। शतद्रु, किनारे कीर्त्तिपुर नामक स्थानमें उनका समाधि-क्षेत्र है,—इस समय वह सिखोंका एक तीर्थ स्थान है। उनकी मृत्यु सम्बन्धी एक गप है; इस गपसे साफ मालूम होता है, कि सिखगुरु लोग अलौकिक चमताका नाटक रूप साधारणकी भक्ति और श्रद्धाके पात्र होनेसे घृणा करते थे। गुरुदित्तने एक दरिद्र आदमीकी स्तव-स्तुतिसे विचलित हो उसकी एक मरी गौको प्राणदान किया था। पुत्रको इसतरह लोगोंके श्रद्धाभाजन होनेकी चेष्टा देख गुरुदित्तके पिता खफा हुए थे। गुरुदित्तने इसपर कहा था, "ईश्वरको एक जीवनकी आवश्यकता थी। मैंने जब इस जीवनकी रक्षा की है, तो मैं उन्हें अपना जीवन प्रदान करूंगा।" ऐसा कह गुरुदित्तने जमीनमें लेट जीवन परित्याग किया। हरगोविन्दके कनिष्ठपुत्र अतुलरायके सम्बन्धमें भी एक ऐसी ही गप प्रचलित है। सुना गया है, कि उन्होंने एक शोकातुरा विधवाके मरे लड़केको जीवनदान किया था। उनके पिताने भी उनका तिरस्कारकर कहा था,—गुरु लोग पुण्य और पवित्रतासे चमता प्रकाश करेंगे। उन जवा-नको किसी किसीने बालकके नामसे अभिहित किया है। गुरुदित्तने जो कहा था, वही उत्तर दे इन युवकने भी प्राणत्याग किया था। अमृतसरमें उनकी समाधि बनी; वह स्थान इस समय सिखोंका एक पवित्र तीर्थ स्थान है।

गुरुदित्तके कनिष्ठ पुत्रका नाम धीरमल था। जालन्धर

तो पञ्जाबका वासस्थान छोड़ पूर्व और कीरतपुर जिलेमें रहना ही उन्होंने अच्छा समझा। * इस अन्तिम स्थानमें उन्होंने कुछ दिनों शान्तिसे वास किया। इसी समय भारत-साम्राज्यके लिये दारा-शिकोह और उनके भाइयोंमें विवाद उपस्थित हुआ। दाराका पक्ष अवलम्बनकर उस विवादमें साथ देनेसे गुरु हररायकी शान्ति भङ्ग हुई। कोई खास कारण नहीं मिलता, कि किस लिये उन्होंने दाराका साथ दिया था। युद्धमें दारा परास्त हुए;—उनकी साहाय्यकारी सैन्यने उनके विरुद्ध अस्त्रधारण किया; हरराय अपने ज्येष्ठ पुत्रको जामिन-स्वरूप प्रदान करनेपर बाध्य हुए। हररायके पुत्रने बादशा-हसे बहुत सम्मान पाया था। बादशाहने उन्हें शीघ्र ही मुक्ति दी। सुना गया है, कि कूटनीतिज्ञ औरङ्गजेबके ऐसे अनु-ग्रहसे हररायके मनमें ईर्ष्याका उद्रेक हुआ था। † हररायकी

होशियारपुर करतारपुर नामक स्थानमें धीरमलके वंशधर लोग इस समय भी रहते हैं।

* See Dabistan, ii, 282, जहांकी छाया दी गई है, उसका नाम "टकसाल" या "टांसाल" हो सकता है। यह अम्बालाके उत्तर अङ्गरेजोंके वर्त्तमान प्रधान अड्डा कसौलीके पास है।

मोहन फानीके विख्यात ग्रन्थमें सिख-इतिहास इसी अंशतक लिखा है।

† केवल देशीय विवरणपर निर्भर करके ही दाराके लिये गुरुके इस पक्षपातित्वका विषय लिखा गया है। दाराका

जीवन-लीला शीघ्र ही पूरी हो गई। सन् १६६१ ई०में उन्होंने मानवलीला सम्बरण की। * उनका धर्म्मशासन बहुत ही धीर और गम्भीर था; यद्यपि उन्होंने कठोरता नहीं पकड़ी, तथापि वह लोगोंके बहुत श्रद्धा और भक्तिके पात्र थे। गुरुके अनुग-हीत व्यक्तियोंके वंशधर "भाई" या भ्रातृसम्प्रदायके कितने ही हररायके किसी न किसी प्रिय और विख्यात शिष्यके वंशधरके नामसे परिचय देते हैं। † सिखोंकी अन्यान्य जो शाखा-

---

मानसिक स्वभाव और धर्म्मनीतिकी आलोचना कर देखनेसे, वह पूरी तरह सम्भवपर जान पड़ता है।

* सभी प्रसिद्ध लेखक हररायकी मृत्यु समयके सम्बन्धमें एक मतावलम्बी हैं, लेकिन एक विवरणमें उनकी मृत्युका साल सन् १६६२ ई०लेख हुआ है। कहते हैं, गुरुने सन् १६१२ ई०में जन्म लिया; कोई कहते हैं,—सन् १६२८ ई०में उनका जन्म हुआ।

† इनमें लार्ड लेकके दलभुक्त कैथल वंशके प्रतिष्ठाता "भाई भागु" बहुत प्रसिद्ध थे। वारिसकी नामौजूदगीमें सम्पत्ति जब्त होनेसे अङ्गरेज-प्रवर्त्तित प्रथाके कार्य्य करणसे इस वंशकी कुछ गौरवहानि हुई है। शतद्रु और यमुनाके मध्यवर्त्ती "बगीयान" नामक स्थानके सम्भ्रान्त "भाई" लोगोंके पूर्व्वपुरुष धर्म्मसिंह हररायके एक शिष्य थे।

पूर्व्वपुरुष गुरुके अनुचर या सहचर हों या न हों, आज-कल बहुत पुण्यवान सिख-योगी मात्र ही "भाई" उपाधिसे भूषित होते हैं। दूसरी ओर "बेदी" और "सोधी" लोग अपने

सम्प्रदाय प्रचलित? आचार-पद्धतिकी अपेक्षा ज्यादा शुद्ध नियमावलीका अनुसरण करता है, यह सम्प्रदाय भी गुरुके इस प्रान्तिपूर्ण धर्मशासन और प्राधान्यके समय तय्यार हुआ था।*

हररायके दो पुत्र थे। बड़ेका नाम रामराय और छोटेका नाम हरिकृष्ण था। हररायकी मृत्युके समय बड़े पुत्रकी उम्र १५ सालकी थी; छोटेकी उम्र केवल छः वर्षकी थी। रामराय दासीगर्भजात थे; सुतरां हररायकी मृत्युके समय छोटे

जातीय नामसे ही सन्तुष्ट हैं; इस नामसे ही वह अन्यान्य सम्प्रदायसे अपने स्वातन्त्र्यकी रक्षा करते आते हैं। "बेदी" लोग—"बाबा" या "पिता" के नामसे उक्त होते हैं। और जगह "सोधी" लोग गोविन्द और रामदासके प्रतिनिधिरूपमें परिचित हो अन्यायपूर्व्वक गुरु-उपाधि लेनेके अभिलाषी हुए थे।

* इस सम्प्रदाय-समष्टिके "सुट-ह्री" या "सुथरा-साही" लोग ही विशेष प्रसिद्ध और उल्लेख-योग्य हैं। "सुथा" नामक एक ब्राह्मण उसके प्रतिष्ठाता हैं। लाहोरकी दुर्ग-प्राचीरके नीचे उनका एक "स्थान-डेरा" या आवास-स्थान है। (Compare Wilson, As. Res, xvii, 836) उनका नाम या निर्व्वाचन साधारणतः पवित्रता-व्यञ्जक है। फातू नामके हररायके और एक शिष्य क्षत्रिय जातीय, पशम-व्यवसायी थे; फातूने खुद ही "भाई पीरू" नाम ग्रहण किया था, या उन्होंने उपाधि-स्वरूप पाया था। बहुत लोग समझते हैं, कि यह पुरुष "उदासियोंके" प्रकृत स्थापन कर्त्ता हैं।

पुत्रको ही सिक्खोंके गुरुपदपर बैठाया गया। इसके फलसे दोनों पुत्रोंमें गुरुतर विवाद उपस्थित होनेपर बादशाहपर उस विषयकी मीमांसाका भार अर्पित हुआ। किसी किसी जगह लिखा है, औरङ्गजेब सिखोंके गुरु बनानेकी स्वाधीनतामें हस्तक्षेप करनेमें अनिच्छुक थे। लेकिन प्रचलित कहानी उल्लिखित हुआ है, कि एक ही तरह एक ही पहनावेसे सज्जित कुछ रमणियोंमें उन शिशुने सिख बुद्धिमानोंके साथ बादशाहकी बेगमको चुनकर निकाला था, उससे बादशाह बड़े ताज्जुबमें आये थे। उन्होंने घोषणा कर दी थी,—गुरुपदपर हरिकृष्णका इख्तियार ही अवधारित हो। उसके अनुसार हरिकृष्ण ही सिखोंके नेता और गुरुपदपर वरित हुए। लेकिन यह शिशु धर्मगुरु दिल्ली परित्याग करनेसे पहले बसन्तरोगसे आक्रान्त हो सन् १६६० ई०में उस नगरमें ही मृत्यु-मुखमें पतित हुऐ। *

सुना गया है, कि हरिकृष्णका जीवन-दीप जब निर्व्वापित होता आता था, तो उन्होंने इशारेसे समझाकर कहा, कि उनके परवर्त्ती सिख-गुरु विपाशा नदी किनारे बकालाकी

---

* Compere Malcolm 'Sketch' P. 38 and Forster "Travels,, i, 299 ;—(मेलकमके "सारसंग्रह" का ३८ पृ० और फारष्टरकी "भ्रमण वृत्तान्त" प्रथम पुस्तकका २९९ पृष्ठा मिलाकर देखो।) एक देशीय विवरणमें हरिकृष्णकी मृत्यु सन् १६६६ ई०में निर्द्दिष्ट हुई है; लेकिन सन् १६६४ ई०ही सर्व्वसम्मत उनकी मृत्युका ठीक समय है। सन् १६५६ ई०में उनका जन्म हुआ था।

निकटवर्ती "बाकाला" गांवमें दिखाई देंगे। इस गांवमें हरगोविन्दके बहुत आत्मीय स्वजन रहते थे। उनके पुत्र तेगबहादुर बहुत दिनोंतक देश घूमनेपर गङ्गाके तीरवर्ती पटनेमें कुछ दिनों रहे थे। इस समय वह "बाकाला" गांवमें रहते थे। रामराय गुरुपदका दावा करते थे; लेकिन उस समय भी वह बहुत दल बना नहीं सके। सुतरां तेगबहादुर ही सबको रायसे सिखोंके गुरुपदपर वरित हुये; बड़े समारोहसे उनकी अभिषेकक्रिया सम्पन्न हुई। सुना जाता है, कि वह सिख-तलवारके धारण करने लायक नहीं थे, उनके कार्य्यकलापमें भी उनकी ओर कितने ही लोगोंको सन्देह होता था; सुतरां रायरामकी धूर्त्तता और प्रतारणासे बहुत थोड़े दिनोंमें ही उनका जीवन और प्रभुत्व विपदजालमें जड़ित हुआ। * प्रतारक और

---

* Compare Malcolm,'Sketch', P. 38, and Forster, "Travels", i, 299, and Browne's 'India Tracts' ii, 3, 4, देशी हस्तलिखित पुस्तकपर निर्भर करके ही तेगबहादुरके पिताकी तलवार ग्रहण करनेमें असम्मतिका विषय लिखा है। इस विवरणमें और भी एक गप है, कि उन्होंने ऐसा श्रेष्ठत्व पानेके पहले एक विशेष काम पूरा किया, उसके ही फलसे वह गुरुपदपर वरित हुए। मक्खनशाह नामक एक सिखने "बाकाल" गांवसे जानेके समय धर्मगुरुको कुछ पूजोपहार देनेकी इच्छा की। लेकिन कितने ही आदमियोंके उपहारका दावा करनेपर मक्खनशाह बिलकुल हतबुद्धि हो गये। उनके उपहारका मूल्य कुल ५२५) रुपये था। केवल गुरु ही उस उपहारका मूल्य जानते थे। मक्खनशाहने उस समय प्रत्येक

शान्तिभङ्गकारी प्रभृतिके अपराधमें अभियुक्त हो वह दिल्लीमें आये। जयपुरके राजाने उनका प्रतिवाद्धि हृदयसे सुना। इस राजपूतने उनके पक्षका समर्थनकर वादानुवाद किया था; कहा था,—ऐसे योगिपुरुषोंके लिये राजत्व-पदके अभिलाषकी अपेक्षा तीर्थ-पर्य्यटन ही अच्छा है, और भावी बङ्गालपर आक्रमणके समय राजा गुरुको साथ लेंगे। * तेगबहादुर

मनुष्यको एक एक रुपया देनेका सङ्कल्प किया;—उन्होंने मनमें विचारा, कि जो मनुष्य सबके अन्तमें उपहार लेगा, उसे ही वह आशुउपलब्धि द्वारा गुरु समझेंगे। तेगबहादुरके बाकीपर दावा करनेसे वह गुरुपदपर वरित हुए थे,—इत्यादि।

* फारस्टर और मेलकम दोनोंने ही इस देशके विवरणका अनुसरण किया है। जिन राजाने तेगबहादुरको आनुकूल्य किया—और तेगबहादुर जिनके साथ बङ्गालमें युद्धके लिये गये थे,—उन्हें उन्होंने जयसिंह नामसे अभिहित किया है,—वीरसिंह—वही कृपालु राजा थे। टाड ('Rajastan', ii, 355) कहते हैं, जयसिंहके पुत्र रामसिंह पहले आसाम गये; लेकिन अपने कामका कोई विवरण उन्होंने नहीं दिया। आजकल जैसे सिख लोग रणजितसिंहके सिपाहीके नामसे परिचय देते हैं, उसीतरह बहुत पहले मरे हुए एक विख्यात मनुष्यके वर्त्तमान समयमें जीवित रहनेका परिचय देना—भारतवर्षमें आश्चर्यका विषय नहीं है। यह सही जान पड़ता है, कि पिता "मिरजा राजा"की सुख्यातिके चारों ओर फैलनेसे रामसिंहका नाम कुछ लोप हो गया था। गत बीती प्रशांतिके

राजाके साथ पूर्व्व देश गये थे। वह फिर कुछ दिन पटनेमें रहे। एक इतिहासज्ञ पण्डित कहते हैं, कि इसके बाद आसामके शासनकर्त्ताओंके विरुद्ध जिस युद्धकी सजावट हुई थी, उसमें जीतनेकी इच्छासे तेगबहादुरने, फिर सिखसैन्यका साथ दिया था। वह ब्रह्मपुत्र नदीके किनारे आगमन हुए। सुनते हैं, कामरूपके राजाके मनमें विश्वास उत्पन्नकर तेगबहादुरने राजाको अपने धर्म्मसे दीक्षित किया था। *

कुछ दिनोंके बाद तेगबहादुर फिर पञ्जाब लौट आये; उन्होंने शतद्रु नदीके किनारे कुछ जमीन खरीदी। यह स्थान इस समय "मखोवाल" नामसे अभिहित है; यह जमीन उनकी पिताकी अति प्रिय मनोरम वासस्थान कीरितपुरके नजदीक है। लेकिन यहां आकर भी वह रामरायकी मैत्रिता और प्रभुत्वमें हाथ अड़ा न सके। सिखोंकी प्रचलित कहावतसे मालूम

आखिरी हिस्सेमें समसामयिक विख्यात ज्योतिर्व्वित् सवाई जयसिंह और पण्डितोंके प्रतिपालक राजा जयसिंह,—इन दोनो नामोंको आपसमें मिला, सिख ऐतिहासिक लोगोंने भागड़ेकी सृष्टि की है। इस विषयमें मेलकमने (Malcolm, "Sketch", p. 37.) सम्भवतः परस्परका अनुसरण किया है। मेलकम कहते हैं,—उस समय तेगबहादुर दो सालके लिये कैदमें बन्द थे।

* छापकी लिखी "गुरुमुखी" नामक संक्षिप्त विवरणके अनुसार तेगबहादुरकी जीवनीकी आखिरी बातोंका दो अंश लिखा गया है।

हुआ है,—इन धार्मिक प्रवर धर्म्मोपदेशकों और एकबार बादशाहका अभियुक्त होना पड़ा था। यह कहना अत्युक्ति न होगा, कि तेगबहादुर पिता-पितामहके अनुसरणमें क्षमिल दिखा नहीं सकें। कुछ दिनोंके बाद तेगबहादुरने यमुना और झेलमके मध्यवर्ती जङ्गलके हिस्सेमें अपना गुप्त वासस्थान ठीक किया। उस समय वह लूट और डकैती द्वारा सिक्खोंको और अपनी जीविका निर्वाह करते थे * एक हिसाबसे वह इन लोगोंके अपरिचित ही पड़े। विश्वस्त सूत्रसे मालूम हुआ, कि आदम हाफिज नामक एक मुसलमानधर्म्मानुरागीसे तेगबहादुरने मित्रता की। उनमें यह मुसलमान दीन धनी मुसलमानोंसे कर संग्रह करते थे; तेगबहादुर भी उस समय अवस्थापन्न हिन्दुओंपर कर लगा अर्थ संग्रह करने लगे। वह लोग दोनों ही भागे अपराधियोंको आग्रहके साथ आश्रय प्रदान करते थे। कुछ दिनोंमें ही उनका प्रताप और आधिपत्य फैल गया; देशकी उन्नतिके लिये वह लोग खास विघ्न बनकर खड़े हुए। इसके बाद उनके विरुद्ध बादशाह एक दल सैन्य भेजनेपर बाध्य हुए। युद्धमें तेगबहादुर और उनके मुसलमान

---

* सैरुलमुतखिरीनके लेखकने (Seirool Mutakhereen, i, 112, 113) तेगबहादुरको इस डकैती वृत्ति और विद्रोह-सूचक कार्य्य-कलापकी बातें लिखी हैं। हायकी लिखी साधारण किताबोंमें भी इस अभियोगकी बातें लिखी हैं, लेकिन उनकी सफाईमें सम्बन्धमें प्रायः पेश होता है। काबूलके राजाको गुरुने खाँनाके मूल्यस्वरूप ५०० रुपये प्रदान किया।

होकर पराजित और कैद हुए। बादशाहने उन मुसलमान फकीरको निर्वासित किया और सिख-गुरु तेगबहादुरको हत्याकी तय्यारी की।

दिल्ली जानेके समय तेगबहादुरने अपने पुत्रको बुलाया। हरगोविन्दकी तलवार द्वारा पुत्रको भूषितकर उन्हें ही सिखोंके गुरुपदपर अभिषिक्त कर गये। जानेके समय उन्होंने अपने पुत्रसे कहा,—दुश्मन उन्हें बध करने ले जा रहे हैं; उनकी हतदेह कुत्ते भक्षण करने न पावें। अन्तमें बदला और प्रतिहिंसाकी उपयोगिता समझा, पुत्रको उन्होंने आदेश दिया,—"बदला और प्रतिहिंसा ही पुत्रका एकमात्र कर्त्तव्य कार्य्य है।" इस प्रसङ्गमें और भी कहा गया है, कि तेगबहादुरके बादशाहके सामने आनेपर, कुछ अवमानना और अविश्वासके साथ बादशाहने उन्हें धर्म्मका ऐश्वरिकत्व प्रमाणके लिये अलौकिक कार्य्य दिखानेकी आज्ञा दी थी। लेकिन तेगबहादुरने जवाब दिया,—"ईश्वरकी उपासना ही एकमात्र कार्य्य है।" तब भी, वह एक काम करनेपर तय्यार हुए। उन्होंने एक पत्र लिख दिया; समझा दिया, कि जिसके गलेकी चारो ओर यह मन्त्र रहेगा, तलवारकी आघातसे भी उसका गला अलग न होगा। इसके बाद उन्होंने अपने गलेको चारो ओर उसे बांध हत्याकारीके सामने मस्तक झुकाया। लेकिन तलवारके एक ही आघातसे सिर अलग हो गया। कुसंस्काराच्छन्न विचारपति और तमाशाई सभी ताज्जबमें आये। अन्तमें देखा गया, कि कागजमें यह लिखा है,—"सिर दिया, सार नहीं दिया"; मैंने मस्तक दिया है, लेकिन कुछ गूढ़ तत्त्व नहीं

दिया। आख़िर उनका जीवन नष्ट हुआ ; लेकिन उनकी ही नवशक्ति और दिव्यज्ञान संसारमें मौजूद रहा। असभ्य और रक्तपातप्रिय जातिका उपाख्यान ऐसा ही है। तब भी, इसमें कोई सन्देह नहीं, तेगबहादुर सन् १६७५ ई०में जल्लादके हाथों मारे गये और क्रूर प्रकृति कुसंस्काराच्छन्न औरङ्गजेबने दिल्लीके राजपथपर सबके सामने उनकी म्रतदेहकी और अवमानना दिखाई। *

तेगबहादुर अपने पिताकी तरह मन्त्रया पुत्रकी तरह उन्नतमना नहीं थे। वह कष्ट-सहिष्णु और दृढ़-प्रकृति थे। जो हो, उनके दृष्टान्तसे नानकके शिष्यलोग साहसी, रणकुशल और धर्मनिष्ठ जातिमें बदल गये थे। पिताकी तलवारके प्रति वह बहुत ज्यादा भक्ति दिखाते थे। शिष्योंको उन्होंने अपने अवधारी प्रतिनिधिकी आज्ञा माननेका उपदेश दिया था। उनके ऐसे व्यवहारसे प्रमाणित होता है, कि वह धर्मयाजककी शक्तिकी अपेक्षा राजशक्तिको श्रेष्ठ समझते थे। वस्तुतः उसी समयसे सिख-गुरुओंने उनकी शक्तिकी प्रशंसोपमा करना आरम्भ की ; अनुचर लोग भी गुरुओंको ही "सच्चा बादशाह"— यानी "यथार्थ राजा" कह उनकी आज्ञानुवर्त्ती होनेमें प्रवृत्त

* इस सम्बन्धमें सभी विवरण एकमतावलम्बी हैं, कि तेगबहादुर बहुत शुभसंकल्पसे और भीरुभावसे मारे गये। सन् १६७५ ई०की अन्तमें (कोई कोई कहते हैं, "मार्गशीर्ष" महीनेमें) उनकी मृत्यु हुई। यही गणना सच जान पड़ती है। उनकी जन्मका साल कहीं १६१२ ई० और कहीं १६२१ ई० है।

हुए। फलतः सिक्खोंने समझा था, कि गुरु लोग ही सच्चे राजा हैं; कारण, वह अन्न-आच्छादनसे राजाके अधीन नहीं करते; वह न्याय-शक्तिसे शासनदण्ड चलाते हैं; वह धर्मपथ दिखाने-वाले और मुक्तिदाता हैं। और सब राजा केवल सांसारिक क्रिया-कलापको सदा समझते हैं। सिखोंकी ऐसी बातें सब हालतमें ही उपयोगी हैं। इन बातोंकी गूढ़ कार्यकारितासे मुगल-बादशाहगण हतबुद्धि हुए थे; उनकी मानसिक शक्ति बहुत घट गई थी। एक विचक्षण मुसलमान ग्रन्थकारने उदाहरण द्वारा जाहिर किया है, कि तेगबहादुरने कई हजार सिपाहियोंके नायक बनकर अशान्ति फैलानेकी इच्छा की थी। *

* जिनकी बात लिखी गई है, वह सैरुलमुताखरीन (Seir-ool Mutakhereen, i. 112) के ग्रन्थकर्ता सय्यद गुलाम हुसेन हैं।

ब्राउन अपने "इण्डिया ट्राक्टसमें" (Browne, India, Tracts ii, 2, 3,) लिखते हैं,—तेगबहादुरने "यथार्थ राजा उपाधि धारण की; परन्तु उनकी वंशमर्यादा और गरिमा-सूचक "बहादुर"की पदवी ग्रहण करनेसे बादशाह क्रुद्ध हुए। उनकी हत्या करनेके लिये औरङ्गजेबका दृढ़सङ्कल्प इसी कारण था। जनसमाज विश्वासानुसार गुरु अलौकिक शक्तिसे बहुत छया करते थे। "सच्चा बादशाह" शब्दके सम्बन्धमें इस अध्यायका आखिरी हिस्सा देखने लायक है।

पिताकी तलवार लेनेसे तेगबहादुरको आत्मग्लानि और अपनी अन्तःपुरकी पूजाके बारेमें आडम्बरप्रचार, यहाँ अपने अन्तःपुर-

तेगबहादुर जब राजदण्डसे दण्डित हो मारे गये थे, तब उनके पुत्र गोविन्दकी उम्र पन्द्रह सालकी थी। सत्य और कर्त्तव्यानुरोध, प्राणदाता गुरुका आखिरी उपदेश और भयावह मृत्यु,—गोविन्दके दिलमें गम्भीर स्थायिरूपसे बैठ गई। पिताका प्राणदण्ड और अपने देशकी शोचनीय अवस्थाके विषय विचारते विचारते वह मुसलमानोंके चिरन्तन दुश्मन हो गये; वह विध्वस्त हिन्दुओंको एक अभिनव बहादुर जातिमें परिणत करनेकी महत् कल्पनासे अनुप्राणित हुए। उस समय गोविन्दकी बहुत बाल्यावस्था थी; ज्यादातर उनके अनुचरोंपर बादशाह सन्देह करते थे; सिखोंमें भी ऐसे कितने ही दल थे; जो तेगबहादुरके पुत्रसे दुश्मनी करनेमें कुण्ठित होते नहीं थे। कईएक अनुरक्त शिष्योंकी ऐकान्तिकतासे मृत गुरुको छिन्न देह फिर पानेपर गोविन्दने पिताकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न करनेका सुयोग पाया; इसतरह मृत आत्माकी सद्गति हुई और उनके आत्मीय लोगोंका माङ्गलिक कार्य्य पूरा हुआ। * गोविन्दने कुछ दिन यमुनाके दोनो किनारोंवाले निम्न

[illegible]योंको आज्ञानुवर्ती होनेकी अनुज्ञा,—यह सब बातें देश-प्रचलित विषयकी सत्यतापर निर्भरकर लिखी गई हैं।

* अपवित्र घृणित मेहतर जातिके कई आदमी तेगबहादुरकी छिन्न देहको दिल्लीसे लानेके लिये भेजे गये थे। भक्तन-शाह नामक जिस आदमीने उस गुरुको गुप्त खञ्जर मारा था, उसको बहुत-कुछ पैसासे शिष्यलोग गुरुकी मृतदेह लानेमें समर्थ हुआ था।

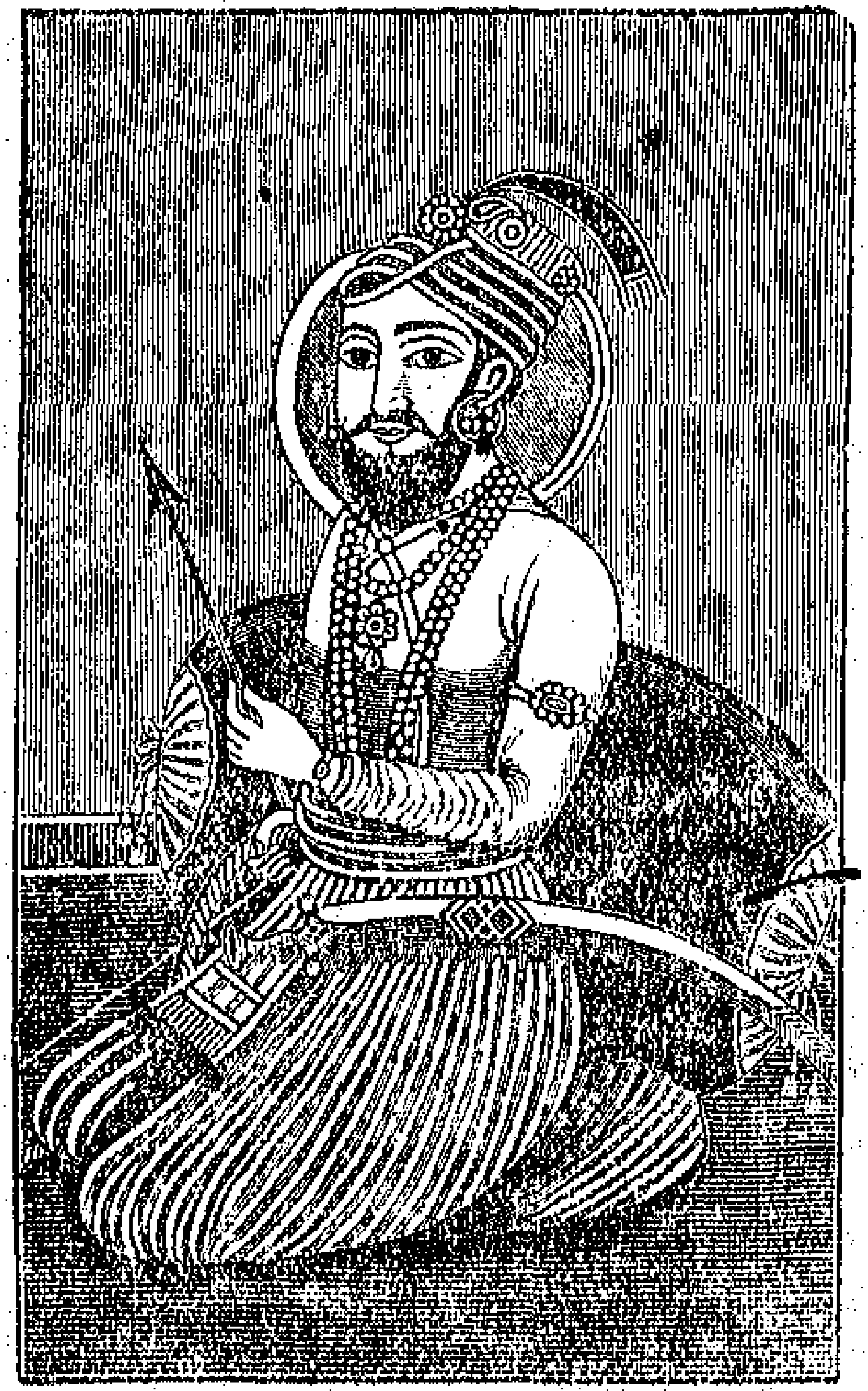

गुरु गोविन्दसिंह

पहाड़ी प्रदेशमें जा निर्भय वास किया। वहां कई साल केवल बाघ और जंगली सूअरके शिकारमें लगे रहे। उन्होंने फारसी भाषा सीखी और जिन किताबोंमें जातीय माहात्म्य वर्णित है, उन्हें मन भाण्डारमें सञ्चित कर रखा। †

प्रायः बीस बरसतक गोविन्दने इस तरह गायब रह समय बिताया था। * यौवन-अभ्यासि ही उनके भावी महत्त्वका

---

† गोविन्दकी पहली उम्रमें निर्जनवास और कार्यकलापके सम्बन्धमें सब जगह ही एक तरहका हाल दिखाई देता है। लेकिन फारष्टरकी (Forster, "Travels" i, 301) "गुरुमुखी" वर्णना पढ़नेसे मालूम होता है, कि पहले गोविन्द पटनेमें आये; वहां कुछ दिनों रहनेके बाद वह श्रीनगरके पहाड़ी प्रदेशोंमें चले गये।'

* अङ्गरेज या भारतीय ऐतिहासिकगण कोई सच्चा समय निरूपण करनेमें समर्थ नहीं हुए। तारीख और घटनावलीके अन्दाजेसे जान पड़ता है, कि सन् १६८५ ई०में या पैंतीस साल-तककी उम्र न होनेतक गोविन्दने धर्मगुरुरूपमें नया काम ग्रहण नहीं किया। मेलकमने एक सिख-ग्रन्थकारकी बात लिखी है। (Malcolm, "Sketch,' P. 186 note) इस सिख-ग्रन्थकारके अन्दाजसे सन् १६९६ ई०में गोविन्दने धर्मसंस्कार आरम्भ किया। लेकिन इन सब मतोंके खण्डनके लिये, गोविन्दकी कितनी ही बातें या हस्तलिपि उलटकर देखनेसे मालूम होता है, कि मत्युके कुछ पहले गोविन्द जबसे भारतवर्षके दक्षिण प्रदेशमें गये थे, तबसे उनका धर्मसंस्कार आरम्भ हुआ।

लक्षण देख नानककी सिखमण्डलीने उनका साथ दिया। अब वह सिखोंके गुरु और नेतृपदपर वरित हुए। रामरायके शिष्योंके अपने गुरुको उपेक्षाकर एक विरुद्ध मतावलम्बी सम्प्रदायमें बदल जानेसे रामरायकी क्षमता घट गई। चारों ओरके नरपतिगण गुरुका प्राधान्य बढ़ाने लगे; उन्होंने समझा,— गुरुको कोई उच्चाभिलाष नहीं है; उनके सम्बन्धमें किसीने आशङ्काका भी कोई कारण नहीं देखा। पिताकी शोचनीय मृत्युकी बात और औरङ्गजेबका निष्ठुर व्यवहार, गोविन्दके मनमें हमेशा जागता रहा। तरह तरहके शास्त्राध्ययन और ईश्वर-चिन्तासे गोविन्दकी मानसिक वृत्ति समुन्नत हुई थी; बहुदर्शितासे उनकी विचारशक्ति परिस्फुट हुई थी। गोविन्दने अब पिताकी अपमृत्युके और स्वदेशके उद्धारके लिये प्रतिहिंसा-वृत्ति दिखानेका अभिप्राय किया। नवशक्तिके बलसे उनकी उत्तेजना बढ़ी; वह अपने शिष्योंमें फिर नया प्राण सञ्चार करनेके लिये तय्यार हुए। उन्होंने नानक-प्रवर्त्तित सर्व्वसम्मत धर्मशिक्षाका नया संस्कार साधनकर उसमें ज्यादातर मर्दानगी और उद्देश्य-साधनोपयोगी शक्ति-सञ्चार करनेका सङ्कल्प किया। प्रबल-शक्ति-सम्पन्न साम्राज्यमें रहकर भी वह उस साम्राज्यके ध्वंससाधनमें कृतसङ्कल्प हुए। सामाजिक अवनति और धर्म्मविषयक कुसंस्कार प्रभृतिमें भी उन्होंने आचार-पद्धतिकी सरलता, उद्देश्यकी अभिन्नता और दुर्दमनीय चित्तोन्मत्तताकी वृद्धि की। *

---

* प्रचलित विवरणमें गोविन्दके पितामहके सम्बन्धमें जैसी

गोविन्द तलवारमें अद्वितीय, शारीरिक गठनमें अनुपमेय और उत्साहमें अटल थे। उन्हें अविवेचक उद्देश्यविहीन,

---

बातें देखी गई हैं, गोविन्दके बारेमें भी वैसी ही बातें जान पड़ती हैं,—पिताकी मृत्युका बदला लेनेकी इच्छासे ही वह प्रधानतः मुसलमानोंके विरुद्ध अस्त्रधारण करनेपर बाध्य हुए थे। लेकिन गोविन्द और कारणोंसे भी ऐसे दुःसाहसिक काममें प्रवृत्त हुए। यह अस्वीकार करना किसी तरह उचित नहीं, कि वह सब कारण न्यायसङ्गत थे। वह उत्कट वध करनेकी इच्छासे अपने उस महत् उद्देश्यके सफल करनेमें यत्नपर हुए थे। वस्तुतः उत्पीड़ित होनेपर ऐसी इच्छा सबमें ही उत्पन्न होती है। पहले यूरोपियनोंमें जैसी प्रतिहिंसा-वृत्ति प्रबल थी; उस समय भारतवर्षमें भी वह भाव लोगोंके हृदयमें जागता गया। यहांतक, कि एक प्रसिद्ध खृष्टधर्मानुरागी "हेडस" की छायाको प्रतिहिंसा वृत्तिके चरितार्थके कारण कोई भर्त्सना न कर, इस भावसे ही वह निर्दोषिताका प्रमाण देते हैं। नश्वर मनुष्यकी इस विषयमें अपनी खुद सहानुभूति इस समय भी संसारमें वर्त्तमान है,—

प्रिय, पथ प्रदर्शक ! तुम भ्रातारा।
पूछते हो, प्रतिशोध क्या नहीं जगतमें ?
नृशंस भीषण हत्यासे हृदय कांपे।
जो लाञ्छन अपमान सहा है उसने,
क्या उसका प्रतिशोध नहीं ? क्या दण्ड नहीं,—
कलङ्क-कलुष-पूर्ण घोर पापाचारमें ।

प्रचारक या आत्मप्रवञ्चक समझना भूल है। उन्होंने विचार-कर देखा, कि मनुष्यकी मानसिक वृत्तिसमूह किसी बड़े कामकी साधनोपयोगी सुसंस्कृत की जा सकती हैं। बहुत दिनों-तक अपने जातिके कु-संस्कार और कु-रीतियां देख वह दुःखित और सन्तप्त हुए; जिस अत्याचार अविचारसे उनका जीवन विपद्-जालमें जड़ित हुआ था; उसके लिये वह क्षुब्ध हुए थे। अब उन्हें विश्वास हुआ, कि मनुष्यकी स्वाभाविक इच्छा-शक्तिके जगानेके लिये, दूसरे एक गुरुके आविर्भावकी जरूरत है। पुराने समयके वीर-पुरुषोंके वीरोचित कार्यकलापकी याद गोविन्दके मनमें जाग रही थी। अपनी कल्पन शक्तिके प्रभावसे संसारको उपदेश देनेके लिये, गोविन्दने धीरे धीरे ऐश्वरिक विधि-व्यवस्थाओंकी पर्यालोचना की। भाग्यचक्रके बारेमें उनका मिथ्या-संस्कार और अन्ध-विश्वास था। एक प्राचीन ग्रन्थमें देखा गया है, कि पौराणिक राजवंशसे गोविन्दने अपने वंशकी गिनती की है। * वह अपने पूर्व-पुरुषोंकी धर्मनिष्ठा और ईश्वरानुरागकी बहुत प्रशंसाकर कहते थे,—उनके उस पुण्य अनुष्ठानके लिये ही जगदीश्वरने उन्हें ग्रहण किया है। वह

मर गया वह,—हाय चुपचाप गया।
उसका अदृष्ट समझा विद्रत है पाया।
"Dante, Hell, xxix,—Cary's Translation."

* "विचित्र नाटक" या "वैचित्र्यमय कहानी"—"दशम बादशाहका ग्रन्थ" यानी "दशम राजाका ग्रन्थ" नामका पुस्तकका एक अंश मात्र। यहां उसकी ही बात कही गई है।

कहते थे,—"उनकी विरक्त आत्मा ईश्वरके पास परम सुख उपभोग करती थी,—वह ईश्वरकी यादमें मग्न थी। उनकी आत्माने एक दिन बड़े मृदुस्वरसे कहा,—ईश्वरके प्रिय दूतरूपमें वह पृथिवीमें अवतीर्ण होंगे; वह नानककी स्थलाभिषिक्त होंगे;—एक चिराग जैसे दूसरे चिरागको अपना तेज या शिखा प्रदान करता है, उसी तरह नानककी आत्मा और तेजकी शुभ रोशनीकी मालामें गोविन्दकी आत्मा भी रौशन होगी; गोविन्द नानकके तेजोवीर्य्यके अधिकारी होंगे। * मनुष्यके दुःख सन्तापका प्रतिफल देनेके लिये जैसे देवगण भेजे जाते हैं;—जैसे परवर्त्ती

---

* रोमके "दिग्विजयी बादशाह" की छायाके बारेमें "मारलिन" ने जो कहा है, यहां उसके साथ भारतवर्षके इस धर्म-संस्कारके धर्मविषयक प्रश्नकी तुलना कर देखना चाहिये;—

प्रबल प्रताप "सिजार," स्वयं आकरे उठि खड़े।

कहि न जात दुखभार, चाह आलिङ्गन मरणको।

पाठकगण इस विषयमें मिल्टनकी अभिव्यक्ति भी याद करें। धर्मनिष्ठ गोविन्दने मिल्टनके उस भावको अनुकूल उन्नति विधान की है;—

"उसकी अपूर्ण प्रार्थना, नीरव वीणाका तार है। स्वर्ग-मन्दिर नीरवतामय हुआ। न उसका कोई सहाय्य है और न मध्यस्थ,—आप ही बोलता है, यहां कोई नहीं है। आप ही आप मानो विस्मृत खुदने कहा,—"मुझपर विश्वास स्थापन करो। इसके उपरान्त जो आत्मदेह त्याग करेगा, उसे मैं लाऊंगा और उसकी आत्माका गौरव बढ़ाऊंगा।"

देखतागया,—शिव-श्रद्धा-विद्या, भक्ति धारणकर अपना प्राधान्य फिर प्रतिष्ठित करते हैं;—वह सभी उन्होंने प्रकट किया था। सिक्ख गुरुओंने किसतरह भिन्न भिन्न सम्प्रदायकी सृष्टि की है;—जिस तरह गोरखनाथ और रामानन्दने भिन्न भिन्न धर्मनीतियोंका प्रवर्त्तन किया;—अपना धर्म-प्रचार करनेके लिये मुहम्मदने जिस तरह अनगिनती शिष्योंको संग्रह किया था;—उसे उन्होंने समझाया था। प्रसङ्गत: गोविन्दने और भी कहा था,—उन सबने ही अपना अपना कुसंस्कार फैला पृथिवीको पापभाराक्रान्त किया था;—लोग उनका ही अनुसरणकर विपथगामी हुए हैं। उन सब कुप्रथाओंका नाशकर विशुद्ध धर्म स्थापनके लिये ही वह अवतीर्ण हुए हैं;—एकाका प्रचारकर पाप-ध्वंसके लिये ही उन्होंने मनुष्यदेह धारण की है। "गोविन्द कहते थे,—यद्यपि उन्होंने श्रेष्ठ पद पाया है; तथापि दूसरोंकी तरह वह भी एक सामान्य मनुष्य हैं,—ईश्वरके एक आज्ञावाही भृत्य हैं;—सृष्टि-कौशलके अत्याश्चर्य कार्य्यकलापोंके एक परिदर्शकमात्र। जो कोई उन्हें ईश्वर-स्वरूप समझ उनकी अर्चना करेंगे, वह मनुष्य आवहमानके समय नरककी चिराग्निमें दग्ध होंगे। उन्होंने प्रचार किया,—हिन्दू-मुसलमान दोनो जातियोंकी शिक्षा, रीतिनीति,—सभी उनके लिये अनुपयोगी है; कुरान, पुराण प्रभृति धर्मग्रन्थोंका पढ़ना निष्प्रयोजन है; देवमूर्तिसेवक या मरे मनुष्यके उपासक, कोई कभी परम स्वर्गीय सुख पा नहीं सकते। "धर्मग्रन्थ" के पढ़नेसे ईश्वर-प्रतिकृतिकी उपासनासे, या सामाजिक आचार-पद्धतिके कठोर अनुसरणसे ईश्वर-सान्निध्य नहीं मिलता;—विनयी और

अकपट होनेसे ही ईश्वरत्व और मुक्ति दोनो ही मिलती हैं। *
गोविन्दने धर्मप्रचारको ऐसी ही प्रकृतिका अनुसरण किया था।
गोविन्दके शिष्योंने उससे अपने धर्ममतमें बहुरूपकी सृष्टि
की थी; उनकी स्वर्गीय कल्पनाके साथ तरह तरहके पार्थिव
चिन्ताका समावेश किया था। कहते हैं,—गोविन्दने "नैना"
नामक पहाड़की बहुत ऊँची चोटीपर जा वहाँके देवी-मन्दि-
रमें कठोर तपस्याचरण किया था। उन्होंने देवीसे पूछा था,—
अगले समय वीरश्रेष्ठ अर्जुन एक बाण द्वारा किस उपायसे
इकट्ठे लोगोंको भेद करनेमें समर्थ हुए थे। उत्तरसे गोवि-
न्दको मालूम हुआ, कि एकमात्र आराधना और आत्मोत्सर्ग
द्वारा ही वह क्षमता उन्हें मिली थी। गोविन्दने बनारससे एक
धर्मनिष्ठ ब्राह्मणको बुलाया। सुनते हैं,—इस जगतके काममें
भी इस ब्राह्मणको विशेष क्षमता थी। गोविन्द उन ब्राह्मणसे
स्वयं वेदाध्ययन करते थे। अब गोविन्द एक भयावह उत्सव-
कार्य्य करनेको तय्यार हुए; गोविन्दने शिष्यमण्डलीको
बुलाया, सबने ही उस दुःसाहसिक काममें योगदान करनेके
लिये कहा। उन्होंने सबके सामने उस ऐन्द्रजालिक
गुणोंकी धीरे धीरे परीक्षा की। बहुत परिश्रमके साथ
"होम" के लिये एक प्रकाण्ड "वेदी" निर्म्मित हुई। ब्राह्मणने
गोविन्दसे कहा,—अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो देवी छायारूपमें

---

* "विचित्र नाटक" से लेखकमने एक अंश उद्धृत किया है;
यहां उसे ही देखना चाहिये। (Malcolm, Sketch, P.
175 &c.)

गोविन्दको दर्शन देंगी ; गोविन्द निर्भय अटल-अचल भावसे और भक्तिके साथ देवीकी अर्चना करें और देवीके आगे वर-प्रार्थी हों। लेकिन गुरु भयसे अभिभूत हुए और आगे बढ़ न सके ; तलवार तिरछी कर दी ; जान पड़ता है, गुरुने उसके द्वारा उस भयङ्करी मूर्त्तिका अभिवादन किया। उन देवी-मूर्त्तिने उनका अभिवादन ग्रहण करनेके बहाने तलवारका स्पर्श किया ; साथ ही साथ भीषण अग्निशिखामें एक स्वर्गीय अस्त्र चौड़ छुरा दिखाई दिया। उस समय प्रचारित हुआ,—देवीकी प्रसन्नताका और अनुकूलताका यही निदर्शन है, लेकिन गुरु सन्त्रस्त और भीत होकर भी यश पाए हुए थे। अब धर्मप्रचारमें जय पानेके लिये, या गोविन्द अपना प्राणदान करेंगे, या उन्हें,—अपने प्रियतम किसी मनुष्यका जीवन उत्सर्ग करना पड़ेगा। तब गुरु बहुत दुःखित हुए ; उन्होंने कुछ सोचकर कहा,—इस पृथिवीमें अब भी अनेक कार्य सम्पन्न करना पड़ेगा ; अब भी वह पिताकी सन्तप्त आत्माका तुष्टि-विधान कर न सके। फिर उन्होंने सन्तानोंकी ओर इशारा किया। लेकिन मातृस्नेहके प्रबल होनेसे गोविन्दकी स्त्री सन्तानोंको ले भाग गई ; गोविन्दकी इच्छा पूरी न हुई। उस समय उनके पचीस प्रिय शिष्योंने आगे बढ़ प्राणदानके लिये आग्रह प्रकाश किया ; उनमें गोविन्दने एक आदमीको चुना ; इसके बाद भाग्यदेवी सुप्रसन्न हुईं। *

---

* यह बात भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें विभिन्नरूपसे कही गई है ; लेखकमकी वर्णना एक तरहकी (Malcolm Sketch, p. 55.

इसके बाद गोविन्दने फिर शिष्योंको इकट्ठा किया। समवेत शिष्यमण्डलीसे अपने देश-परिभ्रमणका महत् उद्देश्य प्रकट किया; एक नया धर्म्म फैला। गोविन्दने कहा,—इसके उपरान्त एकमात्र खालसा या मुक्त पुरुष ही * आधिपत्य करेंगे। एकाग्र-चित्तसे और भक्तिके साथ ईश्वरोपासना करना पड़ेगी लेकिन कोई सर्व्वशक्तिमानकी किसी पत्थर या मृत्मूर्त्तिकी उपासना न करेंगे; उसमें ईश्वरके प्रति अवमानना दिखाई देती है। एकमात्र विश्वास और भक्तिसे ही जगदीश्वर "खालसा"

---

note); और मेकग्रेगरके सिख-इतिहासकी वर्णना दूसरी तरह की है। ('Macgregor's History of the "Sikhs," i 71.) कहते हैं, गोविन्द एक समय बहुत निद्राभिभूत हुए; निद्रावस्थामें उन्होंने षड़ैश्वर्य्यशालिनी देवी-मूर्त्ति विषयक एक स्वप्न देखा। सम्भवतः गोविन्दकी इस स्वप्न-विषयक कहानीसे ही वर्त्तमान घटनाका यथार्थ विवरण मालूम होता है; जान पड़ता है, वह घटना ही इस उपाख्यानकी नींव है। सुनते हैं,—सन् १६९६ ई०में यह प्रक्रिया सम्पन्न हुई। (Malcolm, "Sketch" p. 86)

* "खालसा" या "खालिसा" शब्द अरबी शब्दसे बना है। इसका व्युत्पत्तिगत अर्थ,—पवित्र, विशेष, मुक्त इत्यादि है। इस शब्दसे साधारणतः करद और मित्रराज्यसे पृथक्-संश्रव स्वाधीन राजा या राज्य जान पड़ता है। "खालसा" शब्दसे गोविन्दका राज्य निर्द्दिष्ट होता है,—या ऐसा मालूम होता है, कि सिख जाति ईश्वरानुगृहीत है।

(सम्प्रदायमुक्त सिखोंके) सामने प्रकट होंगे। गोविन्दने प्रचार किया,—सभी समान हैं; उच्च-नीच सभी बराबर हैं; जाति-भेद भूलना पड़ेगा; पृथिवीमें छोटाबड़ा कोई नहीं है। *

सभी शिष्य उनसे "पहाल" या मन्त्र ले नये धर्मसे दीक्षित हों। † चारो जातियां इकट्ठा मिलेंगी और एक ही भोजनपात्रमें आहार करेंगी। तुर्कोंका विनाश करना होगा, सिद्ध पुरुषोंको कम पदर्दलित करें। हिन्दुओंकी आचार-पद्धति परिहार्य करें; उनके पवित्र देव-मन्दिर और नद-नदीयां

---

* "रहत नामा" यानी गोविन्दकी जीवनीमें यह बात कही गई है। गुरुने कहा था,—"जो मनुष्य गुरुको देखनेकी इच्छा करते हैं, वह 'खालसामें' ही उन्हें देख सकेंगे। कोई कोई कहते हैं, कि जान पड़ता है, गुरुने ही यह बात कही थी।

कुछ लोग इस तुलनापर आपत्ति करते हैं। पवित्रता पानेकी इस चेष्टाके बारेमें अनेक लोगोंका मत-विरोध दिखाई देता है। लेकिन यहां उन्हें विचारकर देखना चाहिये, कि—आवलाईने त्रयात्मक ईश्वरकी प्रौढ़िवादके तीन शब्दोंके साथ तुलना की है। उसपर बालिसने स्वतःसिद्ध वर्णमालाकी सहायतासे गणितशास्त्रके एक घन-परिमाण त्रिभुजके साथ ईश्वरकी तुलना की है। (Boyle's Dictionary', art "Abealrd")

† "पाहुल"का ("पाउमेल",—ऐसा भी उच्चारित होता है।) अर्थ साधुभाषामें सिंहद्वार, छोटा दरवाजा है; उससे ही "दीक्षा" या मन्त्रग्रहण समझा जाता है। इस शब्दकी उत्पत्ति ग्रीक शब्दकी उत्पत्तिके बराबर है।

परित्याग होगी। ब्राह्मणोंका यज्ञोपवीत छिन्न करना पड़ेगा; एकमात्र "खालसा"का आश्रय लेनेसे ही मुक्ति मिलेगी। धर्म्म और गुरुको आत्मसमर्पण करें। "कीरितनाश", "कुलनाश", "धर्म्मनाश","कर्म्मनाश",—जाति व्यवसाय और संसारत्याग विश्वास और आचार-पद्धति परित्याग;—यही उनका मूलमन्त्र होगा। गोविन्दने कहा,—"ऐसा ही काम करो तुमलोग सब जगतके अधीश्वर होगे।" * कितने ही क्षत्रिय और ब्राह्मणोंने इसपर आपत्ति की; लेकिन नीच जातिके शिष्य लोग बहुत आनन्दित हुए। उनलोगोंने गोविन्दको आत्मोत्सर्ग और सेवाकी बात याद करा दी। पवित्रसलिला जलाशयमें स्नान करने और अमृतसरके मन्दिरमें ईश्वरोपासना करनेके लिये उनसे आज्ञा की। लेकिन उस बारेमें दोनों जातियोंने और आपत्ति की; कितने ही गुरुको छोड़ चले गये। लेकिन गोविन्दने श्रद्धासे सोचि कहा,—इसके बाद नीच पुरुष उन्नत होंगे और उनके परवर्त्ती स्थान-पर अधिकार करेंगे। † फिर गोविन्द एक एक पात्रमें जल

---

* मूलग्रन्थमें केवल कुछ भाव लिया गया है। साधारणतः कहीं कहीं भिन्न भिन्न विवरण मूल बातोंमें मिलाकर उद्धृत हुए हैं। (Compare also 'Malcolm, Sketch' p. 148, 151)

† पहले लिखा गया है "दूधा" या "मेथर" जातिके कुछ लोग दिल्लीसे तग बहादुरकी मृतदेह लाये थे। (See an e P. 141) पञ्जाबके उस हीन जातिके कितने ही लोगोंने यह धर्म्म ग्रहण किया था। यह साधारणतः "रंगरेथा" सिक्खों

ढाल यम-कुठार या देवीसंस्पर्श पवित्र तलवार द्वारा वह जल सञ्चालन करने लगे। इसी समय एकाएक उनकी स्त्री पञ्चविध

नामसे अभिहित होते हैं। दिल्लीकी चारों ओरके जिन राजपूतोंने मुसलमान-धर्म ग्रहण किया था,—"रांगुर" शब्दसे उनका ही उद्देश प्रयुक्त होता है। मालवेके राजपूत डाकू भी इसी नामसे परिचित हैं। "रांगा" शब्दसे सद्ग्रजात समझे जाते हैं। सम्भवतः यह उपाधि "रङ्क" (यानी दरिद्र मनुष्य) शब्दसे बना है। "रांगरेहा" शब्द "राङ्गर" शब्दका अपभ्रंश जान पड़ता है; लेकिन साधारणतः जैसा समझा जाता है, उसके अनुसार यह "रङ्ग" (वर्ण) शब्दसे निष्पन्न नहीं है। "रांगरेहा" सिख कभी कभी "मजहबी" या मुसलमान-धर्मावलम्बीके नामसे अभिहित होते हैं। भिन्न धर्ममें दीक्षित मुसलमान लोग इसी नामसे परिचित हैं; भारतवर्षके मेथर जातीय कितने ही मनुष्योंने उस समय मुसलमान-धर्म ग्रहण किया था।

हिन्दुओंको नये धर्ममें दीक्षित करनेकी कल्पनाके प्रसङ्गमें कहा जाता है,—गोविन्दने कहा था, वह छोटे पक्षीको ऐसी शिक्षा देंगे, कि जिससे वह गृध्रको पददलित कर सके। (यहाँ मलकमके "सारग्रन्थका" ७४ पृष्ठ (Malcolm, Sketch., P. 74) देखना चाहिये; मेलकमने कहा है,—औरङ्गजेबको ओर इशारा कर गोविन्दने यह बात कही थी। यहाँ और मत-विरोध दिखाई देता है। विभिन्न ऐतिहासिक लोगोंने भिन्न भिन्न प्रकारसे इस बातको लिखा है। उनके मतसे गोविन्दने ही इस बातका प्रयोग किया; लेकिन इस सम्बन्धमें कोई ठीक

मिष्टान्नपूर्ण- पात्र हाथमें ले सामनेसे निकल गई। तब गोविन्दने आनन्दके साथ कहा,—यही शुभ लक्षण है। उसी समयसे स्त्रियोंका आना शुभ लक्षण बताता है। इससे "खालसाकी" कितने ही सन्तान-सन्ततिकी वृक्षके पत्तेकी तरह दिन दिन बढ़नेकी सम्भावना हुई। तब उस जलमें चीनी मिला गोविन्दने उसका कुछ अंश पांच धर्म-पिपासी शिष्योंके शिरपर छिड़क दिया। शिष्योंमें एक ब्राह्मण, एक क्षत्रिय और तीन शूद्र थे। उन्होंने उनसे "सिंया सिंह" नामसे सम्भाषण किया; यह लोग "खालसाकी" नामसे अभिहित हुए। गोविन्द खुद शिष्योंसे "पाहुल" ग्रहणकर गोविन्दसिंया सिंह नामसे परिचित हुए। तब गोविन्दने कहा,—इसके बाद जब पांच सिख एक जगह इकट्ठे होंगे, तभी वह वहां आवेंगे। *

ख्याल लिख न सके, कि किसके उद्देश्यसे गोविन्दने यह बात कही थी। सभी इस बारेमें स्वतन्त्र मतावलम्बी हैं।

* कहते हैं,—यह नवद्वीपस्थित ब्राह्मण दक्षिणके रहनेवाले थे। क्षत्रिय पञ्जाबका था। शूद्रमें एक जिउवार (कुम्हार) जातिका था; जगन्नाथ उसका वासस्थान था। दूसरा हस्तिनापुरका एक जाट और तीसरा एक "छीपा" यानी रङ्गरेज था; उसका वासस्थान गुजरातका द्वारका नगर था।

गोविन्दने प्रचार किया,—पांच शिष्योंके इकट्ठे होनेपर एक धर्मसमाज तय्यार होगा; या पांच सिखोंके समवेत होनेपर वहां निश्चय ही गुरु उपस्थित रहेंगे; उस समाजपर गुरुकी कृपा वर्त्तमान रहेगी;—सचाईके लिये मेलजोलकी सारमन्त्रका

गोविन्दने इस तरह जाति-भेद लोप किया। * सिखोंका

---

१८६ पृष्ठ देखना चाहिये। (Malcolm, 'Sketch, p. 186).

वस्तुतः "गोविन्द" शब्द "राम" शब्दकी एक अलौकिक उपाधि या कल्पित नाम मात्र है। इस उपाधिको हिन्दू लोग हमेशासे ग्रहण करते हैं। रणकुशल महाराष्ट्रा लोगोंमें "राव" उपाधि प्रचलित है; "राव" शब्द,—इस "राम" शब्दका अपभ्रंश मात्र है। सम्प्रदायस्व-व्यञ्जक संस्कारके प्रवर्त्तित होनेसे, गुरु और उनके शिष्यमण्डलीने "सिं या सिंह" उपाधि ग्रहण की; इसतरह और सम्प्रदायोंसे उनका स्वातन्त्र्य रक्षित हुआ। साधारण बातोंमें "सिंह" शब्दसे "सिंह" मालूम होता है। लेकिन आलङ्कारिक व्यवहारसे इसका अर्थ—"योद्धा" या "शूर" है। राजपूतोंमें यह स्वातन्त्र्य-व्यञ्जक गुणवाचक नाम हमेशासे बहुत ज्यादा व्यवहारमें लाया जाता है। इस समय यह गोविन्दके शिष्योंके अपरिहार्य्य उपाधिस्वरूपमें व्यवहृत होने लगा। मुसलमान लोग "खां" उपाधिसे सद्वंशजात समझे जाते हैं। सिखोंकी यह "सिंह" उपाधि भी श्रेष्ठत्व-व्यञ्जक है। सिख लोग साधारणतः जैसे अपने पूर्ववर्त्ती नेतृवृन्दको विशेष नामसे अभिहित करते थे; सिखराजगणभी उसी तरह रणजित्सिंहकी बात कहनेके समय "सिंह साहब" उपाधिका प्रयोग करते हैं। यह शब्द अङ्गरेजी "सर किं" (राजा महाशय) या "सर नाइट" (नाइट महाशय) उपाधिकी तरह तुल्यार्थ-व्यञ्जक है। किसी सिखको सम्मानसूचक नामसे

कुसंस्कार और भ्रमविश्वास दूर हुआ। उन्होंने विचारकर

बुलानेके लिये अपरिचित मनुष्य भी "सिंहजी". शब्दका प्रयोग करते हैं।

* गोविन्दने असलमें कोई विधिवद्ध नियम नहीं बनाया; उन्होंने समन्वयभावसे जातिभेद रहित किया था। सिख जातिने इस समय जो वंशस्वातन्त्र्य अवलम्बन किया है,—उस विषयमें भी न्याय्य आपत्ति दिखाई जा सकती है। सिख गुरुओंमें किसीने यह नहीं कहा, कि ब्राह्मण और शूद्र आपसके विवाहसूत्रमें आवद्ध हों। गुरुओंने यह भी कभी नहीं कहा, कि हरेक एक साथ बैठ एक ही वस्तु आहार करें। फलत: इसमें सन्देह नहीं, कि उन्होंने इस जातिभेद-नाशका बीज बोया था और वही बीज अन्तमें अङ्कुरित हो पत्र-पुष्प-फलसे परिशोभित महावृक्ष हो गया। निम्नलिखित उद्धृत अंशसे वह साफ प्रमाणित हो गया। यहीं याद रखना चाहिये, कि सिखगुरु लोग एकमात्र धर्म-विषयक एकताबन्धन और सामाजिक और राजनीतिक समता हीको बहुत ज्यादा श्रेष्ठ समझते थे,—

"जातिभेदकी चिन्ताको मनमें स्थान न दो; विजयी और नम्र हो, मुक्ति पाओगे"—यह नानकका सारङ्ग राग है।

"ईश्वर किसीसे प्रश्न न करेंगे, कि तुम कौन वंशसम्भूत और कौन जाति हो? वह केवल पूछेंगे,—क्या काम किया है?"—नानक,—प्रभाती रागिनी।

"जो व्यक्ति सदा एकाग्रचित्तसे ईश्वरकी याद करते हैं, वो

देखा,—इस समय लोगोंके अन्तरको आकृष्ट करने और उन्हें ज्ञानकी प्याससे परितृप्त करनेकी जरूरत है; सिखोंको एकता-सूत्रमें बांधनेकी जरूरत है। इस एकताके फलसे जैसे दुर्बल मनुष्यों भी नवजीवनका नव-प्रभाव बढ़ा सकता है और धर्मनिष्ठ पुरुष लोग भी दूने उत्साहसे उपासनामें रत हों,—उसका उपायविधान करना ही उसका पहला कर्त्तव्य है। गोविन्दने कहा,—उनके सब शिष्य एक ही मन्त्रसे दीक्षित होंगे; पांच

सदा तन्मय हो उनको उपासिना करते हैं—वह क्षत्रिय हों, ब्राह्मण हों, शूद्र हों या वैश्य हों,—निश्चय ही मुक्ति पायेंगे,—रामदास, विलावल राग।

"गोविन्द, रचित नामसे" (ग्रन्थमें यह दिखाई नहीं देता।)

Compare Malcolm Sketch, p. 45 note (मेलकमके सारसंग्रहके ४५ पृष्ठाका नोट देखना चाहिये।) यहां गोविन्दके बारेमें एक बात लिखी है। गोविन्दने कहा था,—हिन्दुओंके "पानसुपारी"के चार उपादान सुचारुरूपसे चर्वित होनेपर जैसा एकवर्णी हो जाता है; उसी तरह जब चारो जाति सुचारुरूपसे मिल जायगी, तो एक जाति तय्यार होगी।

वस्तुत: सब सिखोंमें मिल एक साथ प्रसाद (दूसरी भाषामें—परसाद), या उपसर्गोंक्त खाद्य भोजन किया; मयदा, घी चीनी और दूध एक साथ मिला यह प्रसाद तय्यार होता है। अब भी हिन्दुओंमें यह प्रथा प्रचलित है। (See Wilson, "Asiatic Researches", xvi, 88, note, and xvii 239, note)

प्रधान शिष्य होमजल छिड़क यह दीक्षाकार्य सम्पन्न करेंगे। *

---

* विचारशक्ति परिस्फुट या स्मृति-शक्तिका विकाश न होता, तो सिख लोग दीक्षा न पाते। जबतक वह उम्रदराज नहीं होते थे, तबतक गुरु उन लोगोंको दीक्षित नहीं करते थे। सात सालकी उम्रसे पहले कभी कभी बालिग न होनेपर, गुरु उन्हें दीक्षित न करेंगे। लेकिन इस विषयमें कोई बंधा हुआ नियम नहीं था। या जिस प्रथाके अनुसार यह दीक्षा-कार्य्य सम्पन्न होगा, उसकी प्रणाली-चिह्न कोई बाह्य-प्रक्रिया अच्छी तरह प्रकट नहीं हुई। बहुत जरूरी कारवाइयोंमें देखा गया है,—कमसे कम पाँच सिख भी एकत्र होंगे। समय समयपर और एक व्यवस्था होती है; कमसे कम उनमें एक धा-र्मीका भी ख्यातनामा होना जरूरी था। चाहे जिस पात्रमें चीनी और जल मिलाया जाय, शाणित छुरे द्वारा वह सञ्चा-लित होता है। लौहनिर्मित चाहे जिस अस्त्र द्वारा हो, यह काम सिद्ध हो सकता है। जो लोग मन्त्र लेंगे, वह हाथ जोड़ नम्रभावसे शिर झुका खड़े होंगे। गुरु जो मन्त्र,—जो धर्मनीति, उच्चारण करते हैं, दीक्षित मनुष्य बार बार उसकी ही पुनरावृत्ति करते हैं फिर उस पवित्र जलका कुछ अंश उसके मुखमण्डल और देहपर छिड़का जायगा; बाकी जल वह पीकर गुरुका सादर अभिवादन करेगा। तब गुरुकी जय हो,—की ध्वनिसे दिगदिगन्त प्रतिध्वनित होता है। इसके उपरान्त वह पुरुष सर्व्व समय ईश्वरसे सतता प्रकाश करेगा और सिक्खरूपमें उसका कर्त्तव्य पालन करेगा,—उसे ऐसी

अद्वितीय निराकार ईश्वर उनके एकमात्र उपास्य देवता हैं; नानक और उनके परवर्त्ती गुरुओंकी स्तुतिको सिख लोग

अनुष्ठान हो जानेपर यह प्रक्रिया खतम होती है। दीक्षाके विशेष नियमकी प्रणालीका विवरण बहुत ज्यादा है; निम्न-लिखित ग्रन्थसमूह देखना चाहिये;—Forster Trave;'s i, 307; p. 182; and Princep's edition of Murray's Life of Runjeet Singh (p. 217) आखिरी ग्रन्थमें एक भारतीय संकलनकर्त्ताके कुछ अंश उद्धृत हुए हैं।

पुराने समय एक सिखका पादोदक व्यवहारका भी नियम था। लेकिन जल्द ही वह प्रथा छोड़ दी गई थी। पैरकी उंगलियों द्वारा जलस्पर्श करनेका जो नियम पहले था, वह प्रथा भी अब लोप हुई है। पहली प्रथा सम्भवतः शिष्योंकी नम्रता और आनुगत्यकी परिचायक है। जिस जलमें ब्राह्मणकी वृद्धाङ्गुलि धोई गई है, हिन्दुओंके लिये वही जल पवित्र है। सम्भवतः यह खयाल ही—पहले और दूसरे नियमकी उत्पत्तिका कारण है। पैर और पैरकी उंगलियोंके बदले गोविन्दने तलवार प्रवर्त्तित कर उसके चिह्न-विशिष्ट देवत्व और खड्गका अत्यन्त विधान किया था।

साधारणतः स्त्रियां यथारीति सिख-धर्ममें दीक्षित नहीं होतीं। लेकिन कभी कभी वह ऐसे नियमकी वशवर्त्ती होती हैं। स्त्रियोंको दीक्षाके समय जल और चीनी मिलाई जाती है; प्रानित तलवारके एक किनारे द्वारा वह संचालित होता है।

बहुत भाँतिसे साथ रक्षा करें। * "गुरुकी जय हो!"—यही उनका मूलमन्त्र था। † लेकिन धर्म्मपुस्तक "ग्रन्थकी

---

* "Transanimate" (उत्तरकालकी जीवित मनुष्यगण) शब्दका प्रयोग सम्भवतः आपत्तिजनक न होगा। सिखोंका विश्वास है,—परवर्त्ती हरेक शिष्यकी देहमें नानककी आत्मा अवतार लेती है। "विचित्र नाटकमें" (Vichitr Natuk) गोविन्द यह लिख गये हैं। गोविन्दने कहा है,—एक प्रदीप जैसे दूसरे प्रदीपको रश्मि बाँटता है, उसी तरह नानककी आत्मा देहसे देहान्तर ग्रहण करती है।

† सिख जातिके, धर्म्मसम्प्रदायका मूलमन्त्र सरल भावमें —"वाह गुरु" है। अर्थात् "हे गुरो!" या "गुरुकी जय हो"। लेकिन विस्तारभावसे उनका मूलसूत्र—"वाह गुरुकी फतह" है और "वाह गुरुका खालसा" है।—(गुरुके धर्म और शक्तिकी जय हो। गुरु और शिष्यका मङ्गल हो!—गुरुके धर्म्माधिकारण या राज्यको कुशल हो।)—यह प्रमाण-सिद्ध नहीं है। लेकिन पहले की कही हुई बातें हमेशासे व्यवहृत होनेके कारण, वह सिखोंमें अभ्यस्त हो गई हैं। "देग" और "तेग" शब्दद्वयमें जो गूढ़तत्त्व छुपा हुआ है, गोविन्दने उसीके ही व्युत्पत्तिप्रतिपादनकी चेष्टा की। इसी शब्दद्वयके सिखोंके अभिवादनके सूत्ररूपमें निर्दिष्ट न होनेपर भी, गोविन्दने जो कीर्ति प्रदान की थी, उसकी ही आशासे इस अभिवादनकी सृष्टि हुई है।

"आदिग्रन्थ" बहुतसे खण्ड और अध्यायोंमें विभक्त है। इन

"ग्रन्थके सिवा और किसी दृश्य वस्तुकी ओर वह भक्ति न दिखावे। उसके प्रति अभिवादन करना भी उचित नहीं। *

खण्ड और अध्यायोंकी अधिकांश संख्याके पहले ही "एको उग-कार, साथ गुरु-प्रसाद" प्रभृति बातें लिखी हैं। "अद्वितीय परमेश्वर और परम सुखी गुरुकी कृपा"—उन शब्दोंका सच्चा अर्थ है। "दशम बादशाहके ग्रन्थके" कुछ अध्यायोंके पहले, "ऐको उनकार, वाह गुरुकी फतेह" यानी "परमेश्वर अद्वितीय और गुरुको ईश्वर प्रदत्त क्षमता है,"—इत्यादि लिखा है।

"गुरु रत्नावलीके" सिख ग्रन्थकारने "वाह गुरु" प्रभृति सम्बोधनकी सार्थकताके प्रतिपादनकी चेष्टा की थी। उन्होंने जो असली कारण निर्दिष्ट किया है, वह काल्पनिक और अकिंचित्कर जान पड़ता है;—

"वासुदेव (वासुदेव), पहले युग या सतयुगका सम्बोधन है,
हर हर, दूसरे युग या त्रेतायुगका सम्बोधन है,
गोविन्द गोविन्द, तीसरे या द्वापर युगका सम्बोधन है,
राम राम, चौथे युग या कलिका सम्बोधन है,

इससे ही यह पञ्चमयुग या नव-विधानका "वाह (वाहवा) गुरु" निष्पन्न हुआ है।

* "रहत नामा" या गोविन्दके जीवनकी नियमावलीमें एक मात्र ग्रन्थके प्रति भक्ति दिखानेकी बात आदिष्ट हुई है। सिखोंमें कितने ही गोविन्दको ईश्वर समझते थे। उनकी इस कामके लिये गुरु उनमें घृणा करते थे। इस तरह गोविन्दने शिष्योंकी भावी पौत्तलिकता ध्वंस की थी।

समय समयपर अमृतसरके जलाशयमें स्नान करना चाहिये; सिखोंका मस्तकमुण्डन निषिद्ध है। वह सभी "सिंह" यानी सैन्य सम्प्रदायके नामसे आपसमें सम्बोधन करें। जड़-पदार्थोंमें केवल अस्त्रकी ओर वह अनुरक्त रहें। *

---

* सिख जाति लोहेकी ओर भक्ति दिखाती है। इसके सम्बन्धमें निम्नलिखित मन्तव्य देखना चाहिये। जैसे,—

मूल पुस्तकमें इस विषयका जो बयान लिखा गया है,—वह बयान ही सच्चा है। भारतवर्षमें सब जगह ही सब तरहके अस्त्रशस्त्रोंकी (हथियार मात्रकी) पूजा होती है। पश्चिम अञ्चलकी प्रचलित साधु भाषामें कहनेपर यह सब पवित्र ज्ञान पड़ते हैं, और ईश्वरके नामसे सभी इनका उत्सर्ग करते हैं। प्रधानतः रोजगारी सौदागरोंमें ही इस प्रथाका बहुत प्रचार दिखाई देता है। वह लोग हर साल एक जगह लोहेका ढेर लगा उसके सामने धर्मकार्यके उत्सवादि सम्पन्न करते हैं। जो लोग पुरुषानुक्रमसे मुन्शी या नकलनवीसी करते हैं, वह भी उसी तरह मसीपात्र (दावात) की पूजा करते हैं। सैन्य-विभागमें भी इस प्रथाका अभाव दिखाई नहीं देता; सैन्याध्यक्ष लोग दशहराके दिन पताका और ढेरके ढेर अस्त्रशस्त्र ईश्वरके नामसे उत्सर्ग करते हैं। गोविन्दके शिक्षागुणसे उनके शिष्योंने जाति-व्यवसाय छोड़ दिया था। उनके पूर्व पुरुषगण हला-कर्षण, वस्त्र-वयन, मुन्शी प्रभृति कामोंमें नियुक्त थे। उस समय सिख-जातिने पूर्व पुरुषोंके उन सब रोजगारोंको छोड़ दिया। गोविन्दकी शिक्षाके प्रभावसे वह लोग समझे;—इस पृथिवीमें

अस्त्र-शस्त्रसे उनकी देह सदा भूषित रहेगी; वह सदा युद्धमें नियुक्त रहेंगे। सम्मुख समरमें प्रवृत्त हो जो मनुष्य प्राण निधन

तलवार ही उनका एकमात्र अवलम्बन है। जिसके द्वारा क्षमता-प्रभुत्व लाभ होता है; जिसकी साहाय्यसे निरापद निरुपद्रव समय बिताया जाता है, जिससे प्रात्यहिक खाद्यका संस्थान होता है;—उसकी ओर सम्मान दिखानेका ज्ञान सब देशोंमें ही परिस्फुट दिखाई देता है। हमारे (अङ्गरेजोंके) देशमें कोई नाविक नौ-विभागके कर्म्मचारीके नामसे परिचित होनेसे सम्मानार्थ समझे जाते हैं। दूसरे विभागके कामकी अपेक्षा नौ-विभागका काम उनके लिये श्लाघनीय है। भारतवर्षमें पुरुषानुक्रमिक व्यवसायकी प्रथा प्रचलित रहनेसे, इस भावने ऊँचा स्थान पाया है। दर्शन-शास्त्रकी भाषामें कहनेपर यह आत्माका पुनर्जन्म सम्बन्धीय विशिष्ट नीति विशेष है। लेकिन विवेकशक्ति द्वारा विचारकर देखनेसे मालूम होता है, कि मनुष्यके प्रात्यहिक जीवनव्यवसायके सुचारुरूपसे परिचालित करनेके लिये ही यह नीति विधिबद्ध हुई है और परम सुखसे पूरी तरह हाथ न आनेतक यह नीति अक्षुण्ण होगी। जो मनुष्य सदा युद्धचिन्तामें निमग्न रहते हैं, जो मनुष्य तलवारको ही एकमात्र अवलम्बनीय समझते हैं,—उनकी ही आत्मा निकृष्ट आत्मा है। उच्च आत्मा सदा ईश्वरको चिन्तामें रत रहती है।

"सच्चा पादशा" या शाह तराना,—इस शब्दकी प्रकृत व्युत्पत्ति निर्णय करना सुकठिन है। जान पड़ता है, इस शब्दकी उत्पत्ति और व्युत्पत्ति एक ही तरहसे निष्पन्न हुई है। धर्म्मराज या

कर सकेगा, उसका ही जीवन सार्थक है; पराजित होकर भी जो हताश न होगा,—वही धन्य है; उनकी महिमा ही अतुलनीय है। उन्होंने स्वधर्मविरोधी तीन सम्प्रदायोंके साथ सम्बन्ध छोड़ दिया। जिन्होंने अर्जुनके ध्वंसके लिये चेष्टा की थी, उस मिरसनी सम्प्रदायको;—उनके पिताके निधन-काण्डमें जिन्होंने सहायता दी थी, उस रामरायके दलको;—और जो उनके खुद क्षमता फैलानेमें अन्तराय हुए थे,—उन मुसन्दं लोगोंको गोविन्दने परित्याग किया।* वह सब मुण्डित मनुष्योंसे या हिन्दू-मुसलमानोंसे घृणा करते थे। उस समय कुछ अधार्मिक आदमी कुसंस्कारके वशवर्त्ती हो शिशुकन्याकी हत्या करते थे; गोविन्द उन नृशंस मनुष्योंके विरुद्ध खड़े हुए थे। लेकिन धर्मग्रन्थमें इसका कोई निदर्शन नहीं है, कि गोविन्दने किस रीतिसे इस प्रथाके मिटानेकी चेष्टा की थी। *

गुरु अविनश्वर आत्मापर आधिपत्य करते हैं; वह मुक्तिके पथ-प्रदर्शक हैं। लेकिन ऐहिक राजा, इन्द्रियवृत्तिकी परितृप्तनाके पथप्रदर्शक हैं। वह इन्द्रिय-सुखभोगकी लालसा और प्रबल वासनाके परिमित व्यवहारका व्यवस्था-बन्दोबस्त करते हैं। मुसलमानोंका भी ऐसा ही विश्वास है। और उनमें एकताश्रयक मालिक शब्दकी शब्द प्रचलित है।

* इस ग्रन्थके परिशिष्टमें गोविन्दका "राहत" और "टाङ्खान" नामक पुस्तक मिलाई गई है। उससे यह सम्प्रदाय और सिलगों ही और भी भेद-व्यञ्जक प्रथा दिखाई देती है।

प्रकृत आत्मिकका स्वाभाविक प्रभेद-व्यञ्जक अनुष्ठित केश-

गोविन्दने एक बातमें जय पाई थी ; वह धर्मप्रचार-से शिष्योंके प्रभु हुए थे। इस समय भी उनका एक बहुत

---

* श्याम और नीलवर्णकी पोशाक पहननेकी प्रथा गोविन्दके किसी ग्रन्थमें दिखाई नहीं देती। ऐसा जान पड़ता है, कि इस बारेमें उनका कोई आदेश नहीं था। जान पड़ता है, प्रधानतः आचार-पद्धति और व्यवहारिक रीतिसे उनलोगोंने एक निदर्शन स्वरूप इस प्रभेद-ज्ञापक रीतिको ग्रहण किया है। पहले नीलवर्णकी पोशाक पहनना एक तरहका नियमाधीन था ; उस समय उन लोगोंने यह प्रथा अनिवार्य समझी। सम्भवतः हिन्दुओंके प्रति विपक्षताचरणके फलसे ही इन दोनों प्रथाओंकी सृष्टि हुई। कितने ही ब्राह्मण संन्यासियोंने यत्नके साथ मस्तक-मुण्डन कराया ; धर्मकार्यमें पहले दीक्षाके समय और निकट-सम्पर्कीय आत्मीयकी मृत्युपर हिन्दुजाति मस्तक-मुण्डन कराती है। और भी एक आश्चर्यकी बात यह है, कि अनेक धार्मिक पुरुष और सम्भ्रान्त हिन्दू इस समय भी नीलवर्णसे घृणा करते हैं। अब भी राजपूत कृषक जमीनमें नील नहीं बोते। वह इस कामको अशुभकर समझते हैं। दूसरी ओर मुसलमान लोग नीली पोशाक बहुत पसन्द करते हैं। शायद मुसलमान राजत्वके समयसे ही नीलवर्णकी ओर हिन्दुओंका विद्वेषभाव उत्पन्न हुआ है। अन्यान्य पुस्तकोंमें नानकके नीलवर्णकी पोशाक पहननेकी बात भी लिखी है। जो हो, नानककी बातोंके उल्लेखके समय, 'भाई गुरुदास' नामक एक सिख ग्रन्थकारने कहा है,—"जब [illegible] मक्के गये, तो उस समय नानकके पहनावेके कपड़ों

असमसाध्य काम भी किया है। वह काम है ;—अविश्वासी प्रजा-पीड़नकारी विधर्म्मियोंके राज्यका ध्वंस-साधन। मुसलमानोंके

तरह नीलवर्णकी पोशाक थी।" उसी तरह कोई सिख "सूही" रङ्ग या कुसुम्भजातीय फूलके रङ्गसे रंगी पोशाक नहीं पहनते। बहुत दिनोंतक हिन्दू लोग इस रङ्गको बहुत पसन्द करते थे। लेकिन आजकल यह रङ्ग धीरे धीरे फकीरोंका बहुत आदरणीय हो गया है।

सिखजाति धूमपान नहीं करती; या और कोई नशोंकी चीज सेवन नहीं करती। निषिद्ध द्रव्योंमें पहले तम्बाकूकी सुंघनी ही निषिद्ध हुई थी। सुंघनी निषिद्ध द्रव्य है, इसलिये तम्बाकू भी कोई व्यवहारमें नहीं लाते। सन् १६१७ ई० भारतवर्षमें पहले तम्बाकू आई। (M'Culloch's Commercial Dictionary, 'art Tobacco') हम समझते हैं, अकबरकी किसी वंशधरने तम्बाकूके बाहर करनेकी वृथा चेष्टा की थी; लेकिन आजकल भारतीय मुसलमान लोग सभी धूमपान करते हैं ;—तम्बाकू व्यवहारमें लाते हैं।

असमानताका एक और चिह्न दिखाई देता है ;—सिखलोग एक प्रकारका पायजामा पहनते हैं। लेकिन हिन्दू लोग जिस तरह गात्र छिपा रखते हैं, सिख लोग सभी उसकी विपरीत भावसे पतलून पहनते हैं। रोमीय युवकोंके लिये "टगा विरिलिस" द्वारा धर्म्माधिकार-प्रदान करना जैसा जरूरी था ; सिख-जीवनको भी उसी तरह "कच्छ" या पायजामा ग्रहण करना बहुत जरूरी था।

विभम और हिन्दुओंके कुसंस्कारमें भी उन्होंने "खालसा" या "सिंह" लोगोंके धर्मराज्यकी प्रतिष्ठा की है। पीर और मुल्ला, साधु और पण्डित,—सबको ही वह ताज्जुबमें लाये हैं। लेकिन इस समय भी उनका एक काम बाकी है। वह काम,—प्रबलप्रताप मुसलमान-सम्राटकी सैन्यका निधन-साधन और असंख्य घृणित धर्मावलम्बियोंका उच्छेद-विधान है। जिन्होंने प्राचीन रोमका दृढ़शासन और कूट-राजनीतिकी आलोचना की है; जिन्होंने आजकल युरोपके प्रभुत्वकी क्षमता और राज्यशासनकी नीतिका सुबन्दोबस्त प्रत्यक्ष देखा है,—उनके सामने शायद गोविन्दकी यह कल्पना और विधि-व्यवस्था असभ्यता और प्रलापका परिचायक जान पड़ती है। लेकिन एशियाका विस्तृत राज्यसमष्टि यूरोपके अधूरे असभ्य जातिके अधिकृत राज्यकी तरह, असंख्य लोगोंके गभीर विश्वासकी दीवारपर प्रतिष्ठित नहीं है; वह एक ही जातीय विभिन्न राजवंशमें विभक्त है। स्वाभाविक प्रकृतिके क्रमविकाससे और दलपतियोंकी प्रतिभाशक्तिसे वह लोग विजयोल्लाससे मत्त हुए थे। एक वंशके बाद दूसरा वंश धीरे धीरे प्राधान्य पाता है। साइरसने पारसिककी सैन्यके साहाय्यसे और मारली-मेनने कुछ फ्रान्सीसी सेन्यके साथ राज्यके बाद राज्य जय किया था। बाबर राज्यस्थापनका सूत्रपात कर गये; अपनी मुट्ठीभर

हिन्दू रमणियां एक ही तरहका पहनावा व्यवहारमें लाती हैं। लेकिन सिख रमणियां या म तरहकी पोशाकें पहनती हैं। प्रधानतः उनका ऊंचा जूड़ा विशेष पार्थक्य-परिचायक है।

सन्धिके साहाय्यसे अकबरने उस राज्यकी प्रतिष्ठा की। "इक्कि-मोनिडिस' और "कारलोविजियन" लोगोंकी तरह मुगलोंके राज्यमें वैसा सुशासन नहीं था; बाबरके स्वजातीय लोगोंकी संख्या भी ज्यादा नहीं थी,—और उनके पुत्र सिंहासनच्युत हुए थे। लेकिन अकबर बहुत राजनीतिज्ञ, बुद्धिमान, क्षमाशु और उदार-प्रकृति थे। उनकी दक्षता और सतुवाक्षचिकता विशेष प्रशंसनीय है। उनके अनुचर लोग साहसी और उद्यम-शील थे। अकबर खुद कूटराजनीतिज्ञ और असाधारण प्रतिभासम्पन्न थे। इन्हीं सब वजहोंसे अकबर समग्र भारत-वर्षपर आधिपत्य फैलानेमें समर्थ हुए। उस समय अकबर लोगोंका अभाव समझा गये थे।

असाधारण परिचालना-शक्तिके बलसे, उन्होंने हिन्दू-मुसलमान राजपूत, तुर्क और पठानोंके आपसके विरोधी संस्कार और धर्म्ममतका समता-विधान किया था। पचास साल राजत्व करनेके बाद अकबर अपने उत्तराधिकारियोंके भोगके लिये एक बहुत विस्तृत और सुशासित राज्य छोड़ परलोक गये। लेकिन जहांगीरके एक पुत्र राज्यकी लालसासे पितासे साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए। पीछे जब शाहजहांने राजत्व किया, तो पहले उनके पुत्रलोग राज्य पानेकी आशासे आपसमें युद्धमें प्रवृत्त हुए थे और अन्तमें उन योद्धाओंमें एक दक्ष और लब्धप्रतिष्ठ पुरुष द्वारा शाहजहां कैद हुए थे। औरङ्गजेब हमेशा डरते थे, कि कहीं उनका ही दृष्टान्त अवलम्बनकर दूसरा कोई आधिपत्य स्थापन न करे। औरङ्गजेब निष्ठुरप्रकृति थे। वह मुसलमानोंपर सन्देह करते थे। उनकी हठ और अत्याचार-उत्पीड़नसे हिन्दू-

प्रजा भी उनके प्रति असन्तुष्ट थी; सभी उनसे घृणा करते थे। सुतरां बुढ़ापेमें औरङ्गजेबने केवल अशान्तिभोग किया था; उनकी प्राणको शान्ति नहीं थी। कोई और जाति उनका साथ नहीं देती थी; राज-सभामें प्रायः ही विश्वस्त पुरुष दिखाई देते नहीं थे। असाधारण बुद्धिबलसे औरङ्गजेबने जीवनके आखिरी दिनतक राजत्व किया था; उस बुद्धिबलसे ही वह इतने दिनोंतक अपने हृदयका असारत्व छिपा सके थे; जीतेजी उनका असारत्व कोई समझ नहीं सका था; लेकिन मृत्युके बाद उनका सच्चा स्वभाव और असारत्व सभी समझ गये थे। मुगल-राजत्वमें राजनीतिक एकताका अभाव था। सिंहासनके लिये सदाके विवाद-विसम्वादसे नीति और आधिपत्यकी सुश्रृङ्खला नष्ट हुई थी। * मुगल साम्राज्यके अधीन छोटे छोटे बहुत राज्य थे। वह सब राजा बहुत अनिच्छाके साथ बादशाहकी अधीनता स्वीकार करनेपर बाध्य हुए थे। मुगल साम्राज्यके

---

* मुगल-राज्यमें यह दोष हमेशा मौजूद था; अकबरने "चौधरी" और परगना "कानूनगो" नामक दो पदोंकी सृष्टि की थी। इस समय वह दोनो पदवी वंशानुक्रमिक "सेरिफ" और जमीन-जमा और धनसम्पत्तिके सरिश्तेदारकी तरह तुल्यार्थ-व्यञ्जक है। उसी तरह दीर्घकालस्थायी विधि-व्यवस्थाका बदलना आङ्गरेजोंके लिये अब भी बहुत आयास-साध्य है। देशमें जो पुरुष सुदक्ष और सत्यवादी है, उसे ही सिंहासन देनेकी व्यवस्था हुई है। सुतरां वंशानुक्रम पुत्र-पौत्रादि पर्य्यायसे उत्तराधिकारित्वके आपत्तिजनक नियम संशोधित हुए हैं।

भीतर छोटे छोटे कितने ही जागीरदार भी थे। वह सब राजवंश और विरोधी जागीरदार सम्राटके शासनकार्य्यमें विघ्न डालनेके लिये सदा चेष्टा करते थे; वह पहले भी विश्वास करते थे और अब भी करते हैं, कि बादशाह केवल अपने स्वार्थके लिये ही राजकार्य्य निर्व्वाह करते हैं; इसके लोगोंके मङ्गल-विधानके लिये वह कोई काम नहीं करते। लोगोंके दिलमें यह विश्वास ऐसा जमा था, कि सुशासित बुद्धिमान् पुरुषोंकी सैकड़ों चेष्टासे भी वह दूर नहीं हुआ। उस समय उच्चाभिलाषी पुरुषके प्रभुत्व पानेमें समर्थ होनेपर, उसकी ही प्रशंसा-ध्वनिसे हिन्दूमण्डल पूर्ण होता था। राजा और प्रजामें यह वैरभाव दूर करनेके लिये अकबरने बहुत चेष्टा की थी। वह इस विषयमें बहुत कुछ कृतकार्य्य भी हुए थे। लेकिन उनके उत्तराधिकारी लोग उनके जैसे बुद्धिमान् नहीं थे। देशमें स्वाधीनताका भाव पहलेसे ही जाग उठा था; धर्म्म-विषयक असन्तोषके कारण वह भाव दिन दिन बढ़ने लगा। बहुत थोड़े दिनोंमें ही भारतका दक्षिण भाग अधिकृत हुआ; उस समय औरङ्गजेब राजधानीमें मौजूद नहीं थे; वह उस समय दूरदेशमें प्रभुत्वके अक्षुण्ण रखनेकी वृथा चेष्टामें लगे थे। मुगल काश्मीरके सिवा हिमालयके दूसरे किसी प्रदेशपर आधिपत्य स्थापन कर नहीं सके; उन सब जङ्गल गिरि-सङ्कटोंमें एकाएक विद्रोहका सूत्रपात हुआ था। इसी समय शिवाजीने महाराष्ट्रीय जातिकी सोई शक्तिको जगाया। उन्होंने कष्ट-सहिष्णु पशुपालकोंको रीतिके अनुसार शिक्षा दे एकदल दुर्निरुध्य सैन्य तय्यार की; बादशाहके अधिकारसे कुछ ही

दूरपर उनका एक प्रादेशिक राज्य प्रतिष्ठित हुआ। जीरोचित स्वभावसे गोविन्दने धर्म्मानुराग उद्दीप्त किया, और जातिकी लुप्त गौरवपर उन्होंने एक नये जाट-राज्यकी प्रतिष्ठाका विचार किया। उनकी वह कल्पना प्रतापजनक या अविमृष्यकारिताका परिचायक जान नहीं पड़ती है।

परन्तु गोविन्दकी कार्य्यप्रणालीका शृङ्खला-साधन सहज-साध्य नहीं था; उनकी कार्य्यावलीके गूढ़तत्त्वकी उपलब्धि करना भी असम्भव है। एक विश्वासयोग्य मुसलमान ग्रन्थकारने कहा है,—गोविन्दने अपने शिष्योंका भिन्न भिन्न दल और फौज तय्यार की थी। वह सभी उनके विश्वस्त शिष्योंके अधिनायकत्वमें परिचालित होती थी। * उन्होंने एक दक्ष पठान सैन्य नियुक्त किया था,—वह सब जगह ही विजय-श्री पाते थे। † गोविन्दने शतद्रु और यमुनाके मध्यवर्त्ती पर्व्वतश्रेणीके नीचे दो या तीन किलेबन्द बनाये थे। नाहनके निकटवर्त्ती "किरदा" उपत्यकाके "पौण्टा" नामक स्थानमें भी उनका एक अड्डा था;—कुछ दिनों बाद यहीं अङ्गरेज और गोर्खाओंके साथ विषम युद्ध हुआ था। आनन्दपुर—मखोवाल भी उनका एक आश्रय-

* Sierool Mutakhereen, i, 113.

† मरहट्ठोंके ऐतिहासिक विवरणमें देखा गया है, कि शिवाजीने भी इसीतरह कितने ही वेतनभुक्त पठान सैन्य नियुक्त किये थे; वह लोग बीजापुर राज्यमें काम करते थे; इस समय उस राज्यके ध्वंस होनेसे वह लोग कार्य्यच्युत हुए थे। (Grant Duff, 'History of the Mahrattas', i, 105.)

स्थान था; उनके पिताने यह आश्रम स्थापन किया था। * चमकौरमें गोविन्दका और एक आश्रयस्थान था;—यह स्थान शतद्रु नदीके निम्न-प्रदेशस्थ उपत्यकामें अवस्थित है। यह स्थान तेगबहादुरको बहुत प्रिय था। इस तरह कुछ सुरक्षित दुर्गके अधिपति हो गोविन्द परवर्त्ती पहाड़ी अधिवासियोंके आक्रमणसे निर्व्विघ्न रहने लगे। इसके बाद गोविन्द इन सब अर्द्धस्वाधीन राजाओंके राजकार्य्य परिचालनामें साथ देनेके प्रयासी हुए और इस तरह उन सब अर्द्धस्वाधीन राजाओंपर उनका प्रभाव फैला। उन्होंने मनमें सोचा,—दुर्गम पर्व्वत-श्रेणीमें धीरे धीरे आधिपत्य स्थापित होगा, उससे मुगलराज्यका उच्छेद-साधन अवश्यम्भावी है। गुरुरूपमें गोविन्द बहुत भेंट पाते थे; भारतवर्षके सब स्थानोंसे ही शिष्य संगृहीत हुए थे; गोविन्दने सामरिक शक्तिकी प्रतिष्ठाकी उपयोगिताका अनुभव किया था। विद्रोहियोंकी तरह निरापद स्थानमें भागनेकी ज़रूरत समझकर भी अब वह अधीर नहीं थे।

---

* मखोवालके बहुत ही नज़दीक आनन्दपुर अवस्थित है। मखोवाल अपने वासस्थानको गोविन्दने पहले "आनन्दपुर" नामसे अभिहित किया। इससे जान पड़ता है, कि उनकी वासभूमि उनके पिताकी वासभूमिसे अलग और उसका अर्थ;—सुखस्थान था। यहां एक छोटे पहाड़पर एक "चौकी" है।—कहते हैं, गोविन्द यहांसे सवा कोस दूर शरनिक्षेप करते थे;—अंग्रेजी गणनासे इस दूरत्वका परिमाण प्रायः २ मील है; कारण, पञ्जाबियोंके कोसका परिमाण अपेक्षाकृत कम है।

प्रधान नेतृरूपमें या दूसरे राजाके साहाय्यमें गोविन्द जिन सब युद्धकार्य्यमें व्यापृत थे, वह सब उन्होंने खुद ही कहा है। * उनकी वर्णना उनके कार्य्यकी जिन्दा तसवीर है; ऐतिहासिक विवरणके हिसाबसे वह मल्याग और अन्यान्य वर्णनाकी अपेक्षा गोविन्दकी यह वर्णना ही ज्यादातर विश्वासके लायक है। पुराने बन्धु नाहनके राजाके साथ गोविन्दका पहला युद्ध हुआ। इस युद्धमें हिन्दुओंके राजोंने नाहनका पक्ष अवलम्बन किया था। सुनते हैं, वह राजे एकबार गोविन्द द्वारा बहुत क्षतिग्रस्त और अपदस्थ हुए थे। गोविन्दके तनखाहदार कितने ही पठान सिपाहियोंने भी नाहनका साथ दिया था। गोविन्दके पास उनकी तनखाह बाकी रहनेके कारण वह दावा करते थे। उन लोगोंने मनमें सोचा था,—गोविन्दके ध्वंस साधन और उनका वासस्थान लूटनेसे उनका दावा पूरा होगा;—उनका सब क्षोभ दूर होगा। लेकिन गोविन्द युद्धमें जीते; कुछ पठान सैन्याध्यक्ष युद्धमें मारे

---

* द्वितीय ग्रन्थके एक अंशरूपमें यह अंश—"विचित्र नाटक"—में पहले ही उद्धृत हुआ है। सुखासिंहके "गुरु विलास"में गोविन्दके इस विवरणका पूरा समर्थन किया गया है। इसमें बहुत विस्तृत विवरण भी दिखाई देता है। उस समयके विवरण-सम्बलित "विचित्र "नाटकके" कुछ अंशका मेलकमने अनुवाद (Malcolm, 'Sketch', p. 58.) किया है; उसे मिला देखा जा सकता है। लेकिन मेलकमका साधारण विवरण इस घटनावलीके विपरीत और भ्रममूलक है।

गये, और गोविन्दने अपने हाथों नालागढ़के युवक योद्धा हरिचन्द्रको मारा। फिर गुरुने प्रतद्को और बढ़ना ही ज्यादा युक्तियुक्त समझा। इसी समय कोटकाङ्गड़ेके राजकीय कर्मचारियोंके साथ कालुरके भीमचन्द्रका युद्ध चल रहा था; ऐसे सुयोगमें आनन्दपुर सुरक्षितकर भीमचन्द्रके अनुरूपमें गोविन्दने उस युद्धमें साथ दिया। कितने ही पहाड़ी राजाओंने मुसलमान दलपतिका साथ दिया; लेकिन इस युद्धमें मुसलमान सेनानायक पूरी तरह पराजित और विध्वस्त हुए। युद्धमें भीमचन्द्रने जय पाई; विद्रोहको सार्थकता प्रतिपन्न हुई। इसके बाद कुछ दिन विश्राममें बीते। गोविन्द कहते हैं,—इस समय उन्होंने अपने अमनोयोगी और उच्छृङ्खल अनुचरवर्गका शास्तिविध न किया था। कालुरके राजाको गोविन्दने जो सहायता दी थी, मुसलमान उसे कभी भूल नहीं सके। उसके प्रतिविधानार्थ उस समय एक दल मुसलमान सैन्यने उनपर आक्रमण किया; लेकिन वह अकृतकार्य हुए। इसके बाद एक दक्ष सेनापतिके अधीन बादशाहकी और एक दल सैन्य गोविन्दको दमन करने आई। उन सब पहाड़ी राजाओंने भीमचन्द्रके दृष्टान्तका अवलम्बनकर मालगुजारी देनेसे इनकार किया था, उनकी क्षमता घटाना भी इस सेनापतिका दूसरा उद्देश्य था। दोनो दलोंमें कुछ दिनों युद्ध चला; पहाड़ी राजाओंने सन्धि करनेकी चेष्टा की, लेकिन उनकी वह चेष्टा विफल हुई। जो हो, अन्तमें मुसलमान लोग पूरी तरह विध्वस्त और पराजित हो पीठ दिखानेपर बाध्य हुए।

गोविन्दकी इसतरह बारबार युद्धमें जीतनेपर मुसलमानोंके मनमें

उद्देगका सञ्चार हुआ। उनके कार्यकलापसे पहाड़ी राजोंके दिलमें पहले भयका उद्रेक हुआ था। जो सब राजोंके नामसे अधिष्ठित हुए थे, उनके ध्वंससाधनके लिये उन लोगोंने बादशाहकी सैन्यसे सहायताकी प्रार्थना की। औरङ्गजेबने लाहोर और सरहिन्दके शासनकर्ताओंको गुरुके विरुद्ध युद्धयात्रा करनेकी आज्ञा दी; लोगोंने ऐसा शोर मचाया, कि उनकी सहायताके लिये बादशाहके पुत्र बहादुर शाह युद्धक्षेत्रमें अवतीर्ण होंगे। * जो हो, बादशाही फौजने आनन्दपुरमें गोविन्दको घेर लिया। सब तरहकी विपत्पातसे गोविन्द समरक्षेत्र दृढ़प्रतिज्ञ और ...दल थे,

---

* मेलकम कहते हैं, (Maloom, 'Sketch,' P. 60, note) —इससे जान पड़ता है, कि यह युद्ध सन् १७०१ ई०में, हुआ था। उसी समय बहादुरशाह दक्षिणकी राहसे काबुल भेजे गये थे। "वस्तुतः सिखोंके कुछ विवरणसे मालूम हुआ है, कि गोविन्दने बहादुरशाहका अनुग्रह पाया था; या उनके खयालसे बहादुर शाहके प्रति ही गोविन्दने दया प्रकाश की थी। "विचित्र नाटक"में गोविन्दने खुद कहा है,—विद्रोहदमनके लिये बादशाहके एक पुत्र भेजे गये थे। लेकिन गोविन्दने उनका कोई नाम नहीं लिखा। एलफिन्स्टनने भी (Elphinstone, 'History', ii. 545) बहादुर शाहका नाम निर्देश नहीं किया। वस्तुतः जान पड़ता है, कि उन्होंने अनुमान द्वारा ही कहा है, राजवंशके एक राजपुत्र सुलतानके पास विद्रोह दमन करनेके लिये भेजे गये थे,—वह सरहिन्दके सिखोंके विरुद्ध युद्ध करनेमें नियुक्त हुए थे

इसी समय उनके कितने ही अनुचरोंने उन्हें छोड़ दिया था। उन्होंने उनलोगोंको इहलोक और परलोकके लिये अभिशाप दिया; जिन्होंने उनकी सहायता करनेमें द्विधा-भाव प्रकाश किया था। उनलोगोंको उन्होंने अपना धर्म्म छोड़नेपर बाध्य किया और घृणा और अपमानके साथ उन लोगोंको विदा किया। लेकिन उनकी विपद दिनपर दिन बढ़ने लगी, धीरे धीरे सबने ही उन्हें छोड़ दिया। अन्तमें उन्होंने देखा,—केवल बहुत थोड़े शिष्योंने ही उन्हें नहीं छोड़ा; केवल चालीस अनुरक्त शिष्य उनके आज्ञानुवर्त्ती रहे। उनकी माता, उनकी दोनों स्त्रियां और दो सबसे छोटे सन्तान,—सभी सारहिन्दमें भाग गये थे। अन्तमें उनके दोनो पुत्र मुसलमानोंके हाथों पतित हुए थे; मुसलमानोंने उन्हें मार डाला। * उन चालीस अनुरक्त शिष्योंने कहा,—वह राजा और गुरु गोविन्दके साथ मृत्युसे आलिङ्गन करनेके लिये तय्यार हैं। उनके दुर्ब्बल-हृदयने आत्मद्वन्दके अभिशापमोचनके लिये प्रार्थना की, उन्हें मुक्तिकी आशा देनेके लिये अनुरोध किया। गोविन्दने कहा,—उनका क्रोध बहुत दिनोंतक स्थायी न रहेगा। गोविन्द अपने अदृष्टपर ही निर्भर कर रहे। चमकौरका दुर्ग उनकी अधिकारमें ही था; रातको समय भागकर गोविन्द मिच्छिवाड़ा पहुंचे।

---

* गोविन्दके सन्तानोंका हत्याविषयक विशेष विस्तृत विवरण ब्राउनके "इण्डियां ट्राक्ट"में लिखा है। ('Browne's India Tract ii, 6, 7.)

इस चमकौरके दुर्गमें गोविन्द फिर घेर लिये गये।* शत्रुओंने उन्हें आत्मसमर्पण करने कहा, अपना धर्म छोड़नेको आज्ञा दी। लेकिन उनके पुत्र अजितसिंहने क्रोध प्रकाशकर संवादवाही दूतको तिरस्कृत किया। इससे शत्रुओंकी फौज चारो ओरसे सिखोंको विपर्यस्त करने लगी। गुरु सब जगह ही उपस्थित थे; बाकी दो पुत्र भी उनकी आँखोंके सामने मारे गये; उनकी मुट्ठीभर सेना भी प्रायः ध्वंस हुई। अन्तमें वह भागनेपर तय्यार हुए। तमसाच्छन्न रजनीके घोर अन्धकारमें गोविन्द शिविरसे बाहर गये; लेकिन दो पठान सिपाहियोंने उन्हें पहचान उनकी राह रोकी। कहते हैं,—इन दोनों पठानोंने किसी किसी समय गुरुसे उपकार पाया था। उस समय दोनों पठान सिपाहियोंकी सहायतासे वह विलोलपुर शहरमें पहुँचे। यहाँ आ गुरुने इसलाम धर्मके तृतीय प्रचारक पीरमुहम्मदके प्रति विश्वास स्थापन किया, वह उन्हींके पास रहने लगे। कहते हैं,—गुरुने एक समय पीरमुहम्मदके सामने

---

* चमकौरके ईंटसे बने किलेकी एक चूड़ामें एक विख्यात योद्धाकी कब्र इस समय भी मौजूद है। यह योद्धा "मेहतर" जातिके एक सिख थे; उनका नाम,—जवानसिंह था। इसी युद्धमें वह पुरुष मारे गये। वप्रटी उस महापुरुषकी कीर्तिकी गवाही देती है। गोविन्दके दोनों बड़े लड़के अजितसिंह और जुझारसिंह जहाँ मारे गये, वहाँ एक धर्ममन्दिर प्रतिष्ठित है।

सिखोंके विवरणके अनुसार गोविन्दके पराजय और भागनेका समय सन् १७०५ और १७०६ ई० निर्दिष्ट हुआ है।

कुरान पढ़ा था ; यहां गोविन्दने मुसलमानोंका अन्न भोजन किया था ;—प्रचार किया था, कि आपत्कालमें मुसलमानोंका अन्न ग्रहण करना दूषणीय नहीं है। इसके बाद शीखवर्गकी पोशाक पहन मुसलमान दरवेशकी तरह गोविन्द मैदवन्दल भाटिन्डाकी पहाड़ी उपत्यकामें पहुंचे। शिष्यलोग फिर उनके पास इकट्ठे हुए ; उनकी सहायतासे वह शत्रुओंको दूर करनेमें समर्थ हुए। तबसे वह स्थान "मुक्तसर" यानी मुक्तिसरोवरके नामसे अभिहित है। गोविन्द भागकर झांसी और फीरोजपुरके मध्य-पथवर्त्ती दमदमा या विश्रामस्थानतक गये थे। तब बादशाहके कर्मचारियोंने समझा—गोविन्दकी सैन्य और उनकी क्षमता पूरी तरह घट गई है। इसी विश्वासपर उन्होंने मरुभूमि मरुमय प्रदेशमें और ज्यादा दूर उनका अनुसरण नहीं किया।

गोविन्दने दमदमेमें कुछ दिनों वासस्थान बनाया, यहां शिष्यकी शक्तिका पुनरुद्दीपन और धर्मानुरक्त शिष्योंको मुक्तिकी आशा प्रदानके लिये "दशम-राजाका-ग्रन्थ" नामक "ग्रन्थ" के क्रोड़पत्रके प्रणयनमें व्यापृत हुए। "विचित्र नाटक" या "अत्याश्चर्य कहानियां" इसके ही भीतर हैं। "विचित्र नाटक" दोनो ग्रन्थ ही ऐतिहासिक अंश हैं। जिन जगदीश्वरने पूर्वापर उनकी सहायता की थी, उन्हीं सर्वशक्तिमानकी स्तोत्रमें इस ग्रन्थका उपसंहार हुआ है। गोविन्दने कहा है,—उन्होंने जितने कार्य सम्पन्न किये हैं, वह स्वतन्त्र ग्रन्थमें सन्निविष्ट होंगे। उन्होंने जिन ईश्वरका साक्षात्कार पाया था, उनकी महिमा, और पूर्वजन्मके सम्बन्धमें उनकी स्मृति कल्पना अभी

उससे संभव है। उन्होंने कहा,—"उन्होंने जितने काम किये हैं, वह सब सर्व्वशक्तिमान ईश्वरके साहाय्यसे सम्पन्न हुए हैं;—'जो' जीव संसारको अपरिमित क्षमतासे ही उनकी प्रतिष्ठा हुई।" जब गोविन्द इस तरह निर्ज्जनमें रहते थे, तब एक दूतने आ उनसे बादशाहके पास उपस्थित होनेकी आज्ञा प्रकट की। लेकिन उन्होंने राजाके प्रति भर्त्सना-सूचक कुछ कहनियोंमें औरङ्गजेबकी आज्ञाका प्रत्युत्तर प्रदान किया। इन सब कहानियोंमें और अपने भेजे पत्रसे बादशाहसे विनीत न हो अधिक उनका क्रोध बढ़ाया था। उन्होंने बादशाहकी कोपकी शान्तिकी चेष्टा नहीं की, बल्कि उन्होंने ऐसा कह बादशाहको भय दिखाया था, कि बादशाहके प्रति ईश्वर कुपित हैं। उन्होंने सम्राट्‌को लिखा भेजा था,—बादशाहपर उनका विश्वास नहीं है, "खालसा" अब भी बादशाहकी कु-कार्य्यका बदला लेनेको तयार हैं। उन्होंने नानक-प्रवर्त्तित धर्म-रीतिका विषय उठाया; अर्ज्जुन और तेगबहादुरकी हत्याकी बातोंकी भी संक्षेपमें याद करा दी। उनके प्रति जो अन्याय व्यवहार किया गया था और उनके पुत्रोंको मार वह जो अपुत्रक बनाये गये थे,—वह सब बातें भी उन्होंने कहला भेजीं। उन्होंने और भी कहा, इस संसारमें उनका संसार-बन्धन नहीं है; वह मृत्युके लिये तय्यार हुए हैं; प्राणोंसे प्यारे अद्वितीय क्षमताशाली जगदीश्वरके सिवा वह और किसीका भी भय नहीं करते। उन्होंने कहा ईश्वरको प्रार्थना भी निष्फल नहीं होगी अन्तिम विचारके दिन देखा जायगा,—बादशाह क्या उत्तर देते हैं; अपनी असंख्य निष्ठुरता और अत्याचारकी

सार्थकता प्रतिपन्न होनेपर कोई निर्दोष साबित होते हैं। इसके बाद और एकबार, औरङ्गजेबके सामने उपस्थित होनेके लिये गुरु आये थे। गुरु खुद ही उनके पास जानेके लिये तय्यार थे। सुनते हैं;—इसी उद्देश्यसे बादशाहकी मृत्युके कुछ दिनों पहले गोविन्द दाक्षिणकी ओर बढ़े थे। *

सन् १७०७ ई०के शुरूमें औरङ्गजेबकी मृत्यु हुई। उनके ज्येष्ठपुत्र बहादुरशाह सिंहासनपर अधिकार करनेके लिये काबुलसे आये। उन्होंने आगरेके पास एक भाईको पराजित किया और मार डाला; फिर दक्षिण ओर जा दूसरे भाई कामबख्शको पराजित किया। कामबख्श बहुत घायल हुए और उससे ही उनकी मृत्यु हुई। जिस समय बहादुरशाह इस युद्धमें फंसे थे, उस समय गोविन्दको उन्होंने अपने शिविरमें बुलाया था। गुरु वहां गये; बहादुर शाहने उन्हें सम्मानके साथ ग्रहण कर बहुत सद्व्यवहार किया; गुरुने गोदावरी उपत्यकाके सैन्याध्यक्षका पद पाया। शायद बादशाहने समझा था;—राजद्रोही महाराष्ट्रोंके विरुद्ध विद्रोही "जाट" लोगोंके नेताका नियोग बहुत फलदायक होगा। उस समय गोविन्दने

* गोविन्दका वीर पुरुषोचित यह विवरण सुक्खासिंह विरचित "गुरु बिलासमें" "विचित्र नाटक" और "गुरुसखी" और फारसी भाषाके सङ्कलित प्रचलित ग्रन्थोंमें लिखा है। इन सब ग्रन्थोंका अधूरी प्रतिलिपिका आखिरी हिस्सा डाक्टर मेकग्रेगर द्वारा अंगरेजी भाषामें अनुवादित हुआ है। ('History of the Sikhs, p-p. 79—99)

देखा, कि बादशाहके अधीन काम ग्रहण न करना बादशाहके सन्देह निरसन और अपने सैन्यदलकी सद्योद्धार करनेका प्रकृष्ट उपाय है। * दक्षिणमें रहनेके समय गुरुने शिष्योंको भय दिखाया, कि अबसे जो उन्हें परित्याग करेंगे, उनके पूरे अनिष्टकी सम्भावना है। उन्होंने साहसी वीर बन्दाको दक्षिण प्रदेशका अध्यक्षरूप नियोग किया। शतद्रुके दोनों किनारे कितने ही सिख फिर इकट्ठे हुए। लेकिन इसके पहले ही इस संसारमें गोविन्दके कामका अन्त हो गया। उनके अदृष्टमें ऐसा— नहीं था, कि गोविन्द और कुछ लाभ करें। इसी समय एक अर्द्ध-व्यवसायी और अर्द्ध-योद्धा अफगान सामरिक विभागके काममें नियुक्त हुए थे; गोविन्दने उनके पाससे बहुतसे घोड़े

---

* गुरुने दाक्षिणात्यमें युद्ध करनेकी आज्ञा पाई;—सब सिख ग्रन्थकार इसे एकवाक्यसे स्वीकार करते हैं। लेकिन आजकलके मुसलमान लेखक लोग कहते हैं,—पटनेमें गोविन्दकी मृत्यु हुई। समसामयिक ऐतिहासिक काफीखांने बहादुरशाहके उदार-व्यवहारकी बातका समर्थन किया है। काफीखांने कहा है, कि मुगल सिपाहियोंमें उन्होंने एक विशिष्ट पद पाया। (See Elphinstone, 'History of India,' ii. 566, note); इस विषयमें कोई सन्देह न रहनेपर भी उन्होंने इसका समर्थन किया है, कि गोदावरी नदीके किनारे गोविन्दकी मृत्यु हुई। लोक परम्परागत जितने विवरण हैं, उनमें देखा गया है, १७६५ संवत्के कार्त्तिक महीनेमें या सन् १७०८ ई०के आखीरमें "नदेर" नामक स्थानमें गुरु आये।

सँग्रह किये थे। * इन सौदागर, या भृत्यने गुरुको अपने अभावकी बात प्रकाश की, वह प्राप्य रुपये पानेका दावा करने लगे। दावा बहुत रुपयोंका था; सुतरां रुपये देनेमें विलम्ब होने लगा; इस कारण अधीर हो उस अफगान व्यवसायीने गुरुके प्रति क्रोध प्रकाश किया। अन्तमें उसकी असंयत बातोंसे उत्तेजित हो तलवारके एक आघातसे गुरुने उसे मार डाला। मरे पठानकी मृत देह स्थानान्तरित की और कब्रमें रखी गई। उसकी परिवारवर्गके सबने ही अधिनायककी मृत्युसे गोविन्दके निकट वश्यताका भाव प्रकाश किया। लेकिन उसके पुत्र लोग मनही मन पिताकी मृत्युके बदलेकी कामना पालने लगे, और उस साधनका सुयोग ढूंढने लगे। एक दिन वह लोग गुप्तभावसे गुरुके एकान्तवासमें गये; गुरु उस समय सो रहे थे; उनके

---

* पहले छोटे छोटे दलके अफगान और तुर्कमान सेनानायकगण घोड़ा बेच रोजाना खर्च निकालते थे। उनके आक्रमणके समय बीच बीचमें समय समयपर भारतवर्षमें उपनिवेश स्थापित हुआ था, उसका अनुसरण करना बहुत ही आमोदजनक है। लोगोंसे सुनते हैं,—मथिकला नगरके ध्वंसकारी और हरियानेके अन्तर्गत भाटनीके प्रतिष्ठाता,—सभी भिन्नदेशवासी थे; बादको उन्होंने उपनिवेश स्थापन किया था। वह अवस्थानुसार घोड़े आदि बेच जीविका-निर्वाह करते थे। वर्तमान समय भारतीय योद्धा अमीरखां भी खानेके लिये उसी तरह घोड़े बेचनेपर बाध्य हुए थे। ('Memoirs of Ameer Khan,' p. 16)

बालकोंमें कोई बड़ा नहीं था। उस अवस्थामें ही उन लोगोंने उनपर सांघातिक अस्त्राघात किया। गोविन्द उठ बैठे; हत्याकारी लोग पकड़े गये। लेकिन उन लोगोंके मुखभङ्गीपर अस्वाभाविक विकट हास्यच्छटाने विकाश पाया; वह लोग अपने दोष-सखालनके लिये चेष्टा करने लगे;—उन्होंने कृत-कार्य्यकी सार्थकता सम्पादनके लिये युक्तिजाल फैलाया; तरह तरहके तर्ककी अवतारणा की। गुरुने सब सुना; उनके पिताके अदृष्टकी बात याद की; यह भी उनके मनमें उदय हुआ, कि अपने पिताका बदला लेना बाकी है। उन्होंने दोनों युव-कोंसे कहा;—उन्होंने बहुत ठीक काम किया है। तब गुरुने आज्ञा दी,—इनका किसी तरहका शास्तिविधान न करके उन्हें छोड़ दिया जाय। * सुतरां गुरु अपुत्रक थे समवेत

---

* मुसलमानोंने गोविन्दकी मृत्युके बारेमें जो लिखा है, अन्यान्य विवरणोंमें भी वैसी ही वर्णना दिखाई देती है। तब भी, यथार्थ वर्णनामें एकाध अलगाव दिखाई देता है। कोई कोई ग्रन्थकार कहते हैं, मरे पठानकी विधवा स्त्री स्वामीकी मृत्युका बदला लेनेके लिये लड़कोंको बार बार उत्तेजित करती थी। और भी अनेक वर्णनामें विशेषतः मुसलमानोंके विवरणमें देखा गया है,—गोविन्दको मानसिक विकार उत्पन्न हुआ था। कुछ सिख ग्रन्थकारने भी इस विश्वासका समर्थन किया है। वह लोग कहते हैं, कि गुरुने दोनों युवकोंसे पिताकी हत्या की, उनके प्रति उन्होंने अनुग्रह प्रकाश किया था। उन्होंने उन्हें सुयोगसे बदलेकी सैकरत बता दी थी, इससे मालूम होता है,

शिष्योंने उनकी मृत्युके समय बहुत दुःखित भावसे उनसे पूछा,—कौन उन्हें सत्यधर्मका ज्ञान प्रदान करेगा? उनके इहलोक परित्याग करनेपर कौन उन लोगोंको विजय-पथपर परिचालित करेगा? उस समय गुरुने सबको आनन्द करनेका आदेश किया; उन्होंने सोचा,—निर्दिष्ट दश गुरुओंने उनका कर्तव्य पालन किया है। लेकिन वह इस समय ईश्वर या अमर गुरुको "खालसा" समर्पण किये जाते हैं।' गोविन्दने कहा,—"जो गुरु साक्षात्कारके इच्छुक हों, वह नानकके ग्रन्थका अनुसन्धान कर देखें। गुरु सदा 'खालसा'के साथ वास करेंगे। दृढ़प्रतिज्ञ और विश्वासी हो; जहां पांच सिख इकट्ठे समवेत होंगे, वहीं मैं भी उपस्थित रहूंगा।" *

कि मानो उन्हें खुद अपना जीवन भाराक्रान्त जान पड़ता था और उन लोगोंके हाथसे मरनेके लिये वह तय्यार थे। सेयर-मुताखरीनसे मालूम हुआ, कि (i. 114), गोविन्द पुत्रशोकसे मृत्युमुखमें पतित हुए। (Compare Malcolm, 'Sketch', p. 70 note, and Elphinstone, 'History' ii. 564.) नादेर धर्ममन्दिरके पुरोहितोंने और एक विवरण दिया है। वह लोग कहते हैं,—हरगोविन्दने पायेन्दाखांका हत्या-विधान किया; पायेन्दाखांके पौत्रने ही गोविन्दको मारा था; किन्तु इस विवरणसे यह मालूम नहीं होता, कि गोविन्दके साथ उन लोगोंके विवादका और भी कोई कारण था।

* मृत्युके समय गुरुने जिस आदेशका प्रचार किया, उसके बारेमें कुछ विवरण ही प्रचलित है। लोगोंका विश्वास है,—गोवि-

सन् १७०८ ई०में गोदावरी नदीके किनारे "नाद्देर" नामक स्थानमें गोविन्द मारे गये। † उस समय गोविन्दकी उम्र

ल्होंने नानकप्रवर्त्तित धर्मका उद्देश्य पूर्ण किया था ; वह लोगोंके उद्देश्योपयोगी हुआ था ; आजकल वह शैव-धर्मकी एक प्रधान नीति है। गोविन्दकी माता और स्त्री, गोविन्दकी मृत्युके बाद भी कुछ साल जीवित रहीं। मृत्युके समय उन्होंने कहा था, कि साधारण "खालसा" लोगोंके ही गुरु अवस्थित हैं ; कोई निर्दिष्ट पुरुष गुरु होनेके उपयुक्त नहीं है। इस कारण सिखोंमें श्रेष्ठतम धार्मिक पुरुष भी सम्मानजनक "गुरु" नामसे अभिहित नहीं होते। "भाई" शब्द उनकी सबसे ऊंची धर्मोपाधि है। मशहूर बातोंमें इसका अर्थ "भ्राता" है ; लेकिन व्युत्पत्तिगत अर्थसे अङ्गरेजी "वयोज्येष्ठ" (Older) शब्दके साथ इसका सादृश्य है।

† कहते हैं,—गोविन्दने १७१८ संवत्के पौष महीनेमें सन् १६६१ ई०के आखीर या सन् १६६२ ई०के शुरूमें जन्म लिया था। लेकिन उनकी मृत्यु १७६५ सम्वत् या सन् १७०८ ई०में हुई, इसमें किसीका कुमत दिखाई नहीं देता।

नादेरमें एक बहुत बड़ा धर्म-मन्दिर है। कुछ स्थावर सम्पत्तिकी आयसे, कुछ चन्दा संग्रह द्वारा, कुछ नानक-प्रवर्त्तित नियमानुसार सालाना कर अदासे उसका खर्च पूरा होता है। धनाढ्य हरेक धार्मिक पुरुषोंके पास लोग भेजते हैं ; वह सब लोग अपने अपने अवस्थानुसार अर्थ प्रदान करते हैं। इसी तरह भूपालके राजाके साधारण अश्वपालक लोग घर मांग कर अप-

४८ सालकी थी।* यदि कोई समझें, कि गोविन्दकी इस रहस्य-मय अकालमृत्युसे उनके सब जीवनका आशाभरोसा मिथ्या हुआ,—तो उन्हें याद रखना चाहिये,—

"मनुष्य निश्चय ही कल्पनाका गुलाम है। कल्पनाके मोह-मय पथमें वह मूढ़ सदा भीषण उत्साहके साथ दौड़ रहा है।" *

जब मुहम्मद मक्केसे भागे, उस समय शायद "एक अरबके बरछेके आघातसे समग्र जगत्‌का इतिहास परिवर्तित होता था"; † पद्यमें वर्णित सत्यकी प्रतिमूर्त्ति विख्यात एकिलेस (Achilles) ट्रय नगरपर बिना अधिकार किये ही भाग गये थे। "मारमिडन" लोगोंके अधिपतिने थोड़ी उम्रमें मृत्यु-मुखमें पतित होनेपर भी, चिरकीर्त्ति अर्जन की थी।

था चार आना और इसके सिवा तीर्थयात्राके समय अन्यान्य उपहार भी प्रदान करते हैं।

रणजित्‌सिंह भी नादेरमें बहुत रुपये भेजते थे। लेकिन उनके दिये रुपयोंसे जो इमारत बनना शुरू हुई, वह इस समय भी अधूरी है।

नादेरका एक और नाम,—"अपचाला" नगर है। दक्षिण और मध्यभारतमें यह भक्तिस्थल "गुरुद्वारा" अर्थात् "गुरुगृह"-नामसे अभिहित है।

* Sir Marmaduke Maxwll, a dramatic, poem, act iv scene 6.

† Gibbon, Decline and Fall of the Roman Empire ix 285.

"सिमथ" और "स्कामाण्डर" लोगोंके साथ युद्धके समय वह जिस तुच्छ मृत्यु भयसे भीत हुए थे, उनके अदृष्टमें वैसी ही नृशंस और तुच्छ मृत्यु ही संघटित हुई थी। पूर्व्व और पश्चिम भूखण्डमें जिनकी अक्षयकीर्ति विराजमान थी; जिनकी यशोरश्मिसे दिग्दिगन्त उद्भासित था; जिन्होंने सर्व्वान्तःकरणसे जेरुसलेमके उद्धारके लिये सर्व्वस्व त्याग किया था;—ईश्वरके पवित्र नगरके विधर्म्मीके करतलगत रहनेके कारण और उसका उद्धारसाधन न कर सकनेपर, वह वीरश्रेष्ठ रिचार्ड भी लज्जा और दुःखसे अधोवदन हुए थे; उन्होंने फिर मुँह न दिखाया। वह जिस पुण्यभूमिके उद्धारसाधनमें अक्षम हुए, उस पुण्यभूमिकी ओर उन्होंने फिर पलटकर न देखा। वह पर्व्वतसे उतर गुलामीकी जञ्जीरमें आवद्ध हुए। अन्तमें अकालमृत्युसे उनका आशा भरोसा सभी खतम हुआ। * जो हो, कार्य्यसिद्धि द्वारा हर समय महत्वका अन्दाजा नहीं होता। 'सिक्खोंके अन्तिम गुरु गोविन्द जीने जो अपना उद्देश्य साधन करनेमें

---

* सिंहतुल्य राजाका विषय जाननेके लिये गिबनकृत रोमराज्यकी अवनति और अधःपतन (Gibbon, Decline and Fall of the Roman Empire xi. 143) देखना चाहिये। टरनर-कृत एकिलिस और रिचार्डका परस्पर मिलान देखना चाहिये। (Turner's History of England, P. 300.) ब्रू और अङ्गरेज-वीरका परस्पर आलोचक तुलनामें श्रेष्ठ न्यायपरताके बारेमें हेलमकी सम्मति देखना चाहिये। (Hallam, Middle Ages, iii. 482.)

समर्थ नहीं हुए ;* लेकिन वह एक पराजित और अधःपतित जातिकी विलुप्तप्राय अस्तित्व और कोई शक्तिको उत्तेजित और कार्य्यक्षम कर गये। नानक-प्रवर्त्तित धर्म्म-स्रुतकी बलसे समाज-स्वाधीनता और जातीय प्राधान्यकी अभिनव सुखकी लालसासे वह सभी उन्नत हो उठे; उन लोगोंका मन उस स्वाधीनता-सुखके पानेके लिये उत्कट इच्छासे परिपूर्ण हुआ। उस समय भी जीवन्त गोविन्दने उनमें स्वर्गीय शक्ति सञ्चालित किया; हृदयमें उद्दीपनाका अनन्तस्रोत प्रवाहित हुआ। समग्र सिख जाति एक ही जीवन्तआत्माकी अधिकारी हुई। गोविन्दने अपने प्रचारित धर्म्म और उपदेशोंसे केवल उन लोगोंकी मानसिक शक्तिको उन्नत और परिवर्त्तित किया था; उन लोगोंका शरीर सुगठित और क्षमताशाली हुआ था। इससे उन लोगोंने अशेष उन्नति पाई थी। इस तरह सिख जातिकी स्वाभाविक प्रकृति और वाह्य आकृतिकी उन्नति साधित हुई थी। एक सिख राजाको उनकी प्रतापशाली देह और स्वाधीन और वीरोचित आकृति देख सुन्दर रूपसे पहचान सकते हैं। किन्तु सिखधर्मके एक गुरु उनसे ज्यादा सहज ही पहचाने जा सकते हैं; कारण, उनकी आत्मा ईश्वर-सान्निध्य पानेके लिये व्यग्र थी;—उनकी आत्मा सदा ही ईश्वरकी चिन्तामें मग्न थी। उनके वह सब लक्षण देहसे सहज ही प्रकटित होते और उससे ही गुरु आसानीसे पहचाने जाते हैं। * जो हो, इन

* ऐसा वाह्यिक परिवर्त्तन पहले पहल अलकजन्दर बार्नसने देखा था। (Travels i 285, and ii 39.) एलफिनस्टन

सब परिवर्त्तनके होनेपर भी अधिकांश सिक्ख हिन्दूवंश जात हैं। फलत: इसमें सन्देह नहीं, कि उनकी दैनिक रीति-पद्धति और प्रचलित भाषा सभी हिन्दुओंकी तरह है। राजनीतिक प्रथा और कठोर विधि-विधान प्रवर्त्तितकर गोविन्दने शिष्योंको शृङ्खलाबद्ध नहीं किया। फिर भी, वह लोग धर्म्म-विश्वास और सांसारिक कामनामें अन्यान्य भारतवासियोंकी अपेक्षा पूरे स्वतन्त्र हैं। वह लोग एक ही उद्देश्यसे परिचालित होते हैं;

(History of India, ii, 594.) और मेलकमने भी (Sketch P. 129) इसे संक्षिप्तरूपमें वर्णन किया है। हिन्दू परिवारके कुछ वंशधरोंने एक या दो शताब्दि पहले मुसलमान-धर्म्म ग्रहण किया था। उनकी व्यक्तिगत आकृतिके साथ मालवा और उत्तर भारतवर्षके नाना स्थानोंके ब्राह्मणधर्म्मावलम्बीकी प्रतिकृतिसे बहुत अच्छी तरहसे तुलना की जा सकती है?—उनकी बाह्यिक आकृति और पोशाकसे भी ऐसा ही परिवर्त्तन दिखाई देता है। प्रिचार्डने भी (Physical History of Mankind, i. 183 and i. 191.) ख्रृष्टधर्म्मदीक्षित "हटनटट" और "एसकुई-मनस" लोगोंका स्वाभाविक परिवर्त्तन देखा था, लेकिन उन्होंने उनके स्वाभाविक मुख-श्रीका कोई परिवर्त्तन नहीं देखा। इससे जान पड़ता है,—अनुसन्धित्सु अङ्गरेज लोग प्रकृत विषयका कोई तथ्य निरूपण नहीं करते; या पूर्व्ववर्णित असभ्य जातियोंने स्वयं व्यग्रता और औत्सुक्यके साथ यह नया धर्म्म ग्रहण किया है;—इस विषयमें भी उन्होंने कोई विवरण प्रदान नहीं किया।

सभी एक भाव—एक चिन्ता मनमें पोषण करते हैं। इस अभिन्न उद्देश्यसाधनसे ही वह लोग एकता-सूत्रमें एक ही सम्प्रदायभुक्त हुए थे। उनके इस उद्देश्य—इस भावने और किसीके मनमें स्थान नहीं पाया। एक समय एक सम्प्रदाय खृष्ट-धर्मसे दीक्षित हुआ। यूनान और रोम देशके पण्डित लोग इन नवजीवनप्राप्त मनुष्योंकी प्रकृत शक्ति और तेजकी उपलब्धि कर नहीं सके। सुतरां सिक्खोंकी प्रकृत शक्तिको न समझकर उस विषयमें जितनी भ्रमात्मक घटनायें दिखाई देती हैं, उनसे लोगोंको ताज्जुबमें आनेकी कोई वजह नहीं है, या अङ्गरेज ग्रन्थकारोंके प्रति घृणा प्रकाश करनेकी जरूरत नहीं है। * टासिटस और सुइटोनियस समझते थे, पुराने क्रिस्तान

---

* ग्रन्थकर्त्ता प्रधानतः एच० एच० विलसनकी बात कहते हैं। उनकी शिक्षा और परिश्रमसे भारतवर्षके इतिहासकी ऐसी उन्नति साधित हुई है। (See, 'Asiatic Researches' xvi, 237, 238 and 'Continuation of Mill's History,' vii, 101 102.) मेलकमने भी यही एकमत ग्रहण किया है (Malcolm, 'Sketch,' p. 144, 148, 150); लेकिन दूसरी जगह उस मतका वैलक्षण्य दिखाई देता है। ('Sketch, p. 43) जो हो, इन सब मतोंके साथ एलफिनुसटनके अधिकतर विशुद्ध मतकी तुलना की जा सकती है। (Elphinstone, 'History of India, ii, 562, 564) और सर अलकजान्डर बरनस (Sir. Alex. Burnes, 'Travels', i, 214, 28) और मेजर ब्राउनका मन्तव्य भी (Major Browne's, India

लोग यहूदी जातिके एक सम्प्रदाय विशेष हैं। वह दोनो सम्प्रदायके मौलिक पार्थक्य भेद करनेमें असमर्थ हुए थे। इस धर्मको जिस गुप्त शक्ति और प्रकृत श्रेष्ठत्वके प्रभावसे उस समयकी सभ्यता दिन दिन उन्नतिके पथकी ओर दौड़ रही थी; जिससे उस सभ्यताकी स्वीय रश्मिकी निर्मल ज्योत्स्नालोकसे दिग्दिगन्त उद्भासित होने लगा,—वह लोग उसका प्रकृत तथ्य या प्रायमुक्त श्रेष्ठत्व निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हुए। *

गोविन्दके प्रिय शिष्य बन्दा दक्षिण भारतवर्षके रहनेवाले थे; वह "बैरागी" सम्प्रदायके एक संन्यासीके नामसे परिचित

'Tracts', ii, 4) इसके साथ तुलनीय है। मेजर ब्राउनने प्रतिपन्न किया है, कि प्रटेष्टाण्ट और रोमियोंमें जो एकता थी, सिक्ख और हिन्दुओंके धर्ममें भी परस्पर वैसी ही समता दिखाई देती है?

* See the 'Annals of Tacitus,' 'Murphy's Translation' (book xv, Sect 44, note 15) टेसिटस कहते हैं,—खृष्टानधर्म एक भयावह कु-संस्कार है। वह समझे हैं,—प्रचारक लोग "सब मनुष्यजातिके प्रति घृणा और अप्रसन्नतासे प्रणोदित हैं।"—इस समय यही जुड़ाइजमका स्वाभाविक धर्म है। सुइटोनियस कहते हैं,—क्लडियसके शासनके समय "क्रिष्टस" नामक एक मनुष्यकी उत्तेजनासे यहूदी लोगोंने विद्रोहका सूत्रपात किया था। इसतरह वह सब बातोंमें ही साफ भ्रममें पड़े हैं। यूनान शब्दसे "अभिषिक्त"के बदले एक लाटिन शब्दका प्रयोगकर वह और भी भ्रममें पड़े हैं।

है। * गुरुकी मृत्युके बाद उनके शिष्योंकी कार्य्यप्रणालीको

फिर, वोपिसकास नामक एक अपिरिचित ऐतिहासिकने आदृआह्न आड्रियान लिखित एक पत्रकी बात लिखी है। उसमें देखा गया है,—"सिरापी"के भक्तवृन्दके साथ खृष्टानोंकी तुलना की गई है; उससे सन्देह और भी बढ़ा है। विशप लोग प्रधानतः उन अस्वाभाविक-देवताके घोर पक्षपाती और उपासक हैं; इन देवताकी उपासना "ग्रीकों" जाति द्वारा मिश्रमें पहले फैली। (Waddington, 'History of the Church,' P. 37.) यूसिवियसने खुद खृष्टान और एसेनिक् थिरापिउटी (Essenic Therapeutae) इन दोनोंमें उसमें कोई विशेष पार्थक्य नहीं देखा। (Strauss, 'Life of Jesus,' i, 294) लेकिन अन्तिम एक सम्प्रदाय या जातिविशेष है;—यह लोग वैराग्य और बुद्धिके अगोचरकी प्रतिलिकाका ढङ्ग रखते हैं।

यहां, उल्लेख करना कर्त्तव्य है, कि मिष्टर न्यूमेनने भी डेसिटसकी इस वर्णनाको उद्धृत किया है,—यह वर्णना असलमें यहूदियोंके बदले खृष्टानोंको ही निर्द्देश करती है। (On the Development of Christian Doctrine, P. 205, &c.) शायद, इस विषयमें उनकी ही वर्णना ठीक है। लेकिन पूर्व्ववर्त्ती पण्डितोंके मतके साथ उनके मतविरोधके किसी कारणका उन्होंने उल्लेख नहीं किया।

* कहीं, कहीं देखा गया है, कि यन्दन उत्तर भारतवर्षमें

नवीनासे म्रतगुरुकी साजसज्जा, सैन्यपरिमाण और उनके धनैश्वर्यकी बात अच्छी तरह समझमें आती है। जब बन्दा उत्तर-पश्चिम ओर पहुंचे, तब विजयकेतनस्वरूप; गोविन्दके प्रेरका उठा बहुत सिख उनके पास इकट्ठे हुए। बन्दाके आनेपर सरहिन्दके निकटवर्ती मुगल-कर्मचारी लोग भाग गये; तब उन्होंने उस प्रदेशके शासनकर्त्ताको पराजित किया, वह पुरुष युद्धमें मारा गया। सरहिन्द लुट गया; गोविन्दकी सन्तानोंको शत्रुके हाथों फेंकनेवाले हिन्दू और उनके विधनकारी मुसलमान लोग, सभी प्रतिशोध-परवश सिखों द्वारा मारे गये। * इसके

रहनेवाले थे। मेजर ब्राउनने जिन ग्रन्थकारका अनुसरण किया है, वह कहते हैं, कि जलन्धर दोआबमें बन्दाका जन्म हुआ। ('India Tracts, ii, 9)

"बन्दा" शब्दसे "क्रीतदास" समझा जाता है। "गुरुरत्नावली" के रचयिता स्वरूपचन्द्र कहते हैं, कि यह वैरागी जब दक्षिण ओर गुरुके साथ मुलाकात करने गये, तो उन्होंने यह नाम या उपाधि ग्रहण की। यहां उन्होंने देखा, कि गुरुके पास उनके इष्टदेवता विष्णुकी क्षमता निष्फल है। उसी समय बन्दाने कहा,—वह गुरुके क्रीतदास होंगे।

* सरहिन्दके अवरोधके बारेमें कुछ विवरण निम्नलिखित पुस्तकोंमें देखना चाहिये :—Browne, India Tracts,' ii, 9 10; Elphinstone, 'History of India' ii, 565, 566, मेलकमने कहा है, कि इस प्रदेशके शासनकर्त्ताका नाम फौजदार-खां था। (Malcolm, 'Sketch' p, 77, 78) वस्तुतः उसका

बाद बन्दाने सरमूर पर्व्वतकी नीचे एक किला तय्यार कराया; * शतद्रु और यमुनाकी मध्यवर्त्ती भूमिखण्ड उनकी अधिकृत हुआ, उस समय उन्होंने सहारनपुरका जिला ध्वंस कर डाला। †

इसी समय बहादुरशाहने अपने विद्रोही भाई कामबख्शको पराजित किया। महाराष्ट्रोंके साथ उनकी सन्धि स्थापित हुई। उस समय वह राजपूतानेके राजाओंको अधीनता-पाशमें आबद्ध करनेपर ब्रतबद्धकक्ष हुए। इसी समय उन्होंने सुना,—शाहलकुलमोल बन्दा द्वारा राजकीय सैन्य पराजित हुई है और दुश्मनका दल नगर लूट रहा है। ‡ वह बहुत जल्द पञ्जाब गये। दक्षिणापथमें विजय पा राजधानीमें प्रवेश करनेके लिये उन्होंने वहां जरा भी देर नहीं की। इसी

नाम वजीरखां था,—फौजदारखां नहीं। असलमें वजीरखां इस प्रदेशके "फौजदार" अर्थात् सेनानायक थे सही, लेकिन उस समय यह शब्द नामस्वरूप प्रयुक्त हुआ था और कोई उच्चपदस्थ कर्म्मचारी बताता है।

* सदवारा अम्बालेके उत्तर-पूर्व्व अवस्थित है। उसके पास ही मुखलिसपुर है। जान पड़ता है यही, सैरुलमुताख्खरीनका "लोगढ़" या लौहदुर्ग है। (Seirool Mutakhereen, i, 115)

† Forster 'Travels' i, 304.

‡ निम्नलिखित ग्रन्थ देखना चाहिये,—Elphinstone, 'History of India' ii, 561 and Forster, 'Travels, i, 304 सन् १७०९-१०में यह संघटित हुआ।

समय उनकी सेनापतियोंने पानीपतके पास एक दल सिखसैन्यको पराजय किया; बन्दा अपने किलेमें फिर शत्रु-सैन्य द्वारा परिवेष्टित हो अवरुद्ध हुए। लेकिन इस अवरोधके समय सिखधर्म्मके दीक्षित एक धर्मानुरागी अपनी इच्छासे नायकका वेश बना छद्मवेशसे जब बाहर निकल रहे थे, तब शत्रुओं द्वारा वह पकड़े गये और बन्दा अपने सब अनुचर-वर्गोंके साथ वहांसे भाग गये। * इसके बाद कुछ सामान्य सामान्य युद्धमें जीतकर लाहोरकी उत्तरवर्त्ती पर्व्वत-मालामें जम्बूके पास बन्दाने अपना आवासस्थान स्थापित किया और वह पञ्जाबकी बहुत अच्छे भूमिखण्डको बांटने लगे। इसी समय बहादुरशाह खुद लाहोरतक बढ़ आये थे; लेकिन सन् १७१२ ई०की फरवरी महीनेमें उनकी मृत्यु हुई। †

बादशाहकी मृत्यु होनेपर सिंहासनके लिये फिर विवाद उपस्थित हुआ। बादशाहके ज्येष्ठपुत्र जहांदारशाहने प्रायः एक वर्ष अपनी क्षमता अक्षुण्ण रखी थी; लेकिन सन् १७१३ ई०की फरवरी महीनेमें उनके भतीजे फर्रुखसियरने उन्हें पराजित

* निम्नलिखित ग्रन्थ देखने लायक है,—Elphinstone, 'History of India, ii, 66 and Forster 'Travles, i, 305 इस शिष्यकी एकान्त अनुरक्ति देख, बादशाहने उसकी बहुत प्रशंसा की थी; लेकिन उन्हें क्षमा नहीं किया।

† सेरुलमुताखरीनके प्रथम खण्डका १०९ और ११२ पृष्ठ देखना चाहिये। (Compare, 'Seirool Mutakhoreen' i 109 and 112)

किया और मार डाला। मुगलोंकी इन सब अभ्यन्तरीण विशृङ्खला और अन्तर्द्वन्द्वसे सिखोंको बहुत सुविधा हुई ; वह लोग फिर इकट्ठे हो अजेय हो गये और उन लोगोंने विपाशा और इरावतीके मध्यवर्ती स्थानमें "गुरुदासपुर" नामक एक दृढ़ दुर्ग निर्माण कराया। * लाहोरके शासनकर्त्ताने बन्दाके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की ; लेकिन एक खण्डयुद्धमें वह पराजित हुए। तब सिखोंने सरहिन्दकी ओर एक दल सैन्य भेजी ; वहांके शासनकर्त्ता बाजिदखां उनकी चाल रोकनेके लिये आगे बढ़े। एक धर्म्मोन्मत्त पुरुषने मृदु-पद विक्षेपसे उनके शिविरमें प्रवेशकर, उनपर गुरुतर रूपसे अस्त्राघात किया ; उसी आघातसे उनकी मृत्यु हुई। अधिनायककी मृत्युसे मुसलमान लोग छत्रभङ्ग हो भागनेपर बाध्य हुए ; जान पड़ता है, यह नगर फिर दूसरी बार विजयोन्मत्त सिखोंके हाथमें नहीं आया। †

---

* गुरुदासपुर कलानौरके बहुत नज़दीक अवस्थित है ; यहां अकबर बादशाहतपर अभिषिक्त हुए थे। फार्ष्टर, मैलकम और अन्यान्य ऐतिहासिकोंने जिस साधारण विवरणका अनुसरण किया है, उससे जान पड़ता है, कि इस स्थानमें ही वर्णित "लोगढ़" अवस्थित है। जिन सब सारस्वत ब्राह्मणोंने सिखोंकी आचार-पद्धति और धर्म्मनीति अधिकांशरूपसे ग्रहण की थी, यहां आजकल उनका एक धर्म्म-मन्दिर प्रतिष्ठित है।

† तब भी, कितने ही विवरणमें देखा गया है, कि बन्दाने फिर सरहिन्दपर अधिकार किया था।

उस समय काश्मीरके शासन-कर्त्ता अब्दुलसमदखाँ नामक "तुरानी" वंशीय एक सम्भ्रान्त पुरुष और सुचतुर सेनानायकने पञ्जाबके सेनापतिका पद ग्रहण करनेके लिये बादशाहसे आज्ञा ली। उनकी सहायताके लिये पूर्व ओरसे कुछ सुशिक्षित फौज भेजी गई। अब्दुससमदखाँ खुद कई हजार सुशिक्षित और रणकुशल स्वदेशवासी फौज साथ लाये थे। उन्होंने युद्धाक्ष और गोलन्दाज फौज पा लाहोर छोड़ सिखोंपर आक्रमण किया। लेकिन बन्दे की प्रचण्ड बाधा और युद्धसे भी इस युद्धमें सिख-सैन्य पूरी तरह पराजित हुई। युद्धमें जय पा मुसलमानोंने सिख सैन्यको पीछे हटाया, बन्दा विजयी मुसलमान सेनानायकोंके साथ युद्ध करते करते उनकी (अब्दुससमद) सैन्यको भारी नुकसान पहुंचा, एक स्थानसे दूसरी जगह जाने लगे। लेकिन अन्तमें वह अपने गुरुदासपुरके किलेमें आश्रय ग्रहण करनेपर बाध्य हुए। बहुत सङ्कीर्ण भावसे दुर्ग अवरुद्ध हुआ। दुर्गके बाहरसे कोई चीजके भीतर आनेकी सुविधा नहीं थी। सब रसद खा जानेपर, घोड़ा, गधा, यहांतक, कि अखाद्य गोमांस भक्षणकर अन्तमें बन्दा आत्मसमर्पण करनेपर बाध्य हुए; * अधिकांश सिख मारे गये। जब वह लोग असभ्य

---

* निम्नलिखित ग्रन्थसमूह देखना चाहिये:—Malcolm, Sketch, P. 79, 80, Forster, Travels, i 306 and note, and the 'Seirool Mutakhereen,' i, 116, 117. प्रचलित साधारण विवरणमें सिख सैन्यकी संख्या ३५,००० दी गई है (फारष्टर कहते हैं, २०,००० थी;) वह लोग कहते हैं,—युद्ध-

अध्यवसायशील और साहसी सेनापति समझ सभी उनकी श्रद्धा करते थे। तब भी उनके अनुचरोंमें किसीने उनके प्रति सहानुभूति प्रकाश नहीं की। नानक और गोविन्दने जो धर्म-संस्कार प्रचार किया था, बन्दा उस संस्कार-नीतिके गूढ़ उद्देश्य समझानेमें समर्थ नहीं हुए; सम्प्रदायविशेषकी नीति उनके हृदयमें बद्धमूल हुई थी। नानक और गुरु गोविन्दने जो धर्मनीति,—जो आचार पद्धति-प्रचार की थी, बन्दा उसके ही संस्कार-साधनमें प्रयासी हुए थे; अपने संन्यासधर्मकी रीति और हिन्दुओंकी धर्मनीति उसमें मिला उन्होंने उसी उद्देश्य-साधनकी चेष्टा की थी। धर्मानुरागी सिखोंने उनकी उस विधिके विरुद्ध संस्कार-साधनमें बाधा दी थी। शायद, बन्देके इस अवैध और अयाचित विधिप्रवर्त्तनकी चेष्टाके कारण, सिख लोग उनके जैसे एक दक्ष और अध्यवसायशील नायकके प्रति अवमानना दिखानेपर वाध्य हुए थे। *

---

* Compare Malolm, "Sketch", p. 83, 84, सैरुलमुताखरीनसे मालूम हुआ है;—बन्दा समय समयपर भारतीय मनुष्यों द्वारा "गुरु" नामसे अभिहित होते थे। (Seirool Mutakhereen, i, 114) वर्त्तमान समय भी ऐसे कुछ अन्ध-विश्वासी सिख दिखाई देते हैं; वह लोग बन्दाको ही अपने सम्प्रदायका प्रतिष्ठाता समझ उनका समादर करते हैं। बन्देने स्वतन्त्र एक धर्मसम्प्रदायस्थापनकी इच्छा की थी; लेकिन गोविन्दके सिख-सम्प्रदायके सिवा दूसरा कोई धर्म-सम्प्रदाय ज्यादा दिनों स्थायी नहीं हुआ। बन्देने और भी घोषणाकी थी, कि वह अभिवा-

बन्दे की मृत्यु के बाद सिखोंपर घोर अत्याचार, उत्पीड़न चलने लगा। युद्धमें उन लोगोंका बहुत सैन्यबल क्षय हुआ था। जो धरे गये थे, वह भी प्रायद मारे गये या बाध्य हो उन्होंने अपना धर्मपरित्याग किया था। दुश्मन प्रतिहिंसा-वृत्ति चरितार्थ करनेपर बद्धपरिकर हुए थे, वस्तुतः इस घोषणाके प्रचारित होनेपर, कि जो जितने सिखसैन्य मारेंगे, वह उसी हिसाबसे पुरस्कृत होंगे; सिखोंपर अमानुषिक अत्याचार चलने लगा। अन्तमें असहनीय अत्याचार उत्पीड़नसे सिखोंने लाचार बाध्य होने र हिन्दूधर्म ग्रहण किया; और सब धर्मका वाह्यिक दिखाव परित्याग करनेपर बाध्य हुए। धर्मानुरागी सिख लोग निभृत पर्वतकन्दरमें भाग गये; कोई कोई शतद्रु के दक्षिण-तीरवर्ती निर्जन अरण्य प्रदेशमें भाग गये। इसके बाद एक पुरुष कालतक सिखोंका और कोई विवरण इतिहासमें नहीं मिलता। *

इसतरह ही सौ सालके बाद सिखधर्मकी फिर प्रतिष्ठा

दन और आराधनाका परिवर्त्तनसाधन करनेके लिये इच्छुक थे। "वाह गुरुकी फतेह",—गोविन्दके आदिष्ट और उनके प्रयुक्त यह सम्बोधन परिवर्त्तितकर "फतेह धर्म" और "फतेह दर्शन" (धर्मकी जय। सम्प्रदायकी जय।) प्रवर्त्तित करना चाहा था। Compare Malcolm, "Sketch", p. 83 84.

* Compare Forster ("Travels", i. 312,313), and Browne ("India Tract", ii. 13) and also Malcolm ("Sikhs," P. 85, 86)

तथा अर्द्ध-सभ्य और कुसंस्काराच्छन्न विजयियोंके स्वभावतः अवमानसूचक और लज्जास्कर प्रथानुसार दिल्लीकी ओर जा रहे थे, उस समय विजयी सिखोंके कटे शिर बन्दा और औरोंके सामने भालेसे बेध वहन करने लगे। * सिख लोग सभी धर्मके लिये प्राण विसर्जन करनेपर तय्यार हुए। उन लोगोंने आपसमें विवाद किया,—कौन आगे मरेगा। सभी इस काममें आगे हुए; सुतरां उनमें भी विवाद उपस्थित हुआ। अन्तमें आठवें दिन बन्दा खुद ही विचारकोंके आगे अभियुक्त हुए। विचारसे उनका दोष प्रकट होनेपर, एक सम्भ्रान्त मुसलमानने उनसे पूछा,—एक विचक्षण और ज्ञानी पुरुष हो, उन्होंने कैसे पापकार्य किया। यह जानकर भी, कि इस पापकार्यसे वह

क्षेत्रमें अवतीर्ण होनेसे पहले अब्दुलसमद एक खास लाहोरमें रहे; उसी विवरणके अनुसार मालूम हुआ,—सब पहाड़ी राजा उनकी सहायताके लिये आये थे; यह दोनों घटना ही सम्भव-पर जान पड़ती हैं।

* समसामयिक काफीखांके विवरणका उल्लेखकर सैरुल-मुताखरीनके लेखक (Seirool Mntakhereen, i 118, 120) और एलफिन्स्टन (Elphinstone 'History, li, 576) दोनोंने ही कहा है,—सिख कैदियोंकी संख्या कुल ७४० थी। वाजिद-खांकी वृद्धा माताने किसतरह अपने पुत्रहन्ताको मारा था, वह सैरुलमुताखरीनमें लिखा है। जब वह तथा अन्यान्य कैदी लाहोरकी राहसे जा रहे थे, तब वाजिदखांकी माताने शिरपर एक पत्थर फेंक पुत्रहन्ताको मारा था।

नरकमें विक्षिप्त होंगे, क्यों ऐसे पापमें लिप्त हुए? बन्दाने उत्तर दिया,—दुष्ट मनुष्यको शान्तिप्रदान या दण्डविधान करनेके लिये वह ईश्वरके एकमात्र अस्त्र-स्वरूप हैं, और इस समय जगदीश्वरकी इच्छाके विरुद्ध काम करनेसे, उन्होंने जो पाप किया है,—इस समय वह केवल उसका ही शास्तिविधान करते हैं। उनके पुत्र उनके सामने घुटना टेककर बैठे,—उनके हाथ एक छुरी दी गई; बन्दा अपने पुत्रका प्राण संहार करनेके लिये आदिष्ट हुए। उन्होंने अविचलित भावसे और निःशब्द वैसा ही किया। पुत्रका प्राणसंहार करनेमें बन्दा अणुमात्र भी विचलित नहीं हुए। इसके उपरान्त उन्होंने अपने शरीरका मांस अग्निवत् लाल संडसी द्वारा टुकड़े टुकड़े कर काट डाला; बन्दाने असह्ययन्त्रणा भोगते भोगते भवलीला संवरण की। मुसलमान लोग कहते हैं,—बन्दाकी पापमय आत्मा घृणित नरकमें पतित हुई। *

सिख लोग बन्दाकी स्मृतिकी ओर अधिकतर सम्मान नहीं दिखाते। बन्दा स्वभावतः अप्रसन्नचित्त थे। एक उत्साही

---

* यहां मेलकमने (Malcolm, Sketch, p. 82) सेरुल-मुताखरीनसे कुछ अंश उद्धृत किया है। सेरुलमुताखरीन (Seirool Mutakhereen, i. 109) अरमी (Orme History ii 22) और एलफिन्स्टनने (Elphinstone History ii. 564) साफ साफ कहा है, कि १७१६ ई०में बन्दा पराजित हुए और मारे गये। लेकिन फारस्टरने १७१४ ई० बन्दाकी मृत्युका समय निर्दिष्ट किया है। (Forstr, Travels i. 300 note)

हुई। उस धर्म्मनीतिने सबसे ऊंचे स्थानपर अधिकार किया; सिख-धर्म्मके प्रभावसे सभी परिचालित होने लगे। मनुष्योंके हृदयमें इस धर्म्मनीतिके बद्धमूल होनेपर, सिखधर्म्म दिन दिन उन्नतिपथपर अग्रसर होने लगा। पहले नानकने एक छोटा धर्म्म-सम्प्रदाय तय्यार किया था। नानकने इसका उपायविधान किया था, कि सम्प्रदायविशेषके प्रभावसे उनके शिष्य लोग कुपथपर न जांय। अपने उद्देश्य-साधन-कल्पसे नानकने पौत्तलिक हिन्दू-सम्प्रदाय और कुसंस्काराच्छन्न मुसलमान सम्प्रदायसे अपने शिष्योंको अलग कर लिया था। इसतरह और सम्प्रदायोंसे सिखोंका स्वातन्त्र्य परिरक्षित हुआ। अमरदासने इसका उपायविधान किया, कि जिसमें सिख सम्प्रदाय संन्यासी सम्प्रदायमें परिणत न हों। अर्ज्जुन सिखोंके समाजगठनका नियम बांध गये और उन्नतिशील सिखसम्प्रदायके क्रियाकलाप सम्पादनका और परिचालनका नियम लिख गये। हरगोविन्द द्वारा अस्त्र-शस्त्रके व्यवहारका नियम और युद्धप्रथा प्रवर्त्तित हुई। अन्तमें गोविन्दसिंहके शिक्षा-प्रभावसे सिखोंके प्राणमें स्वतन्त्र एक राजनीतिक भाव उद्दीप्त हुआ। गोविन्दने उन्हें सामाजिक मुक्ति प्रदान की; इससे उनका कठोर समाज-बन्धन दूर हुआ;—जातीय स्वाधीनता पानेकी उत्कट आशासे वह लोग उन्मत्त हो उठे। इसके बाद फिर किसी व्यवस्थाप्रकरणकी या शासननीतिकी जरूरत नहीं पड़ी। केवल गुरुओंके अद्भुत शिक्षा-प्रभावसे सिखोंके मनमें एक अदम्य प्रवृत्तिने विलक्षणभावसे आधिपत्य फैलाया था। पहले उनके मनमें अनिश्चित भावका उदय होता था; इस समय उनका वह अनिश्चित भाव उद्देश्य

धर्म्मोपयोगी ही तय्यार हुआ था। सिख धर्म्मकी यह प्रक्रिया इस समय स्वतःसिद्ध है। वर्त्तमान समय यह धर्म्म उन्नतिपथपर होगा। इसके बाद इसका अनुभव करना बहुत ही सुकठिन है, कि इस धर्म्मकी प्रभावसे क्या फल उत्पन्न होगा। पहले ही आर्य्यधर्म्मका अधःपतन हुआ था; ब्राह्मणलोग आचार-भ्रष्ट हुए थे। * उस समय मुसलमानधर्म्मकी उन्नति हो रही

* सिख-धर्म्ममें भी परिवर्त्तनका विषय देखा गया है। धर्म्मपरित्यागमें समय समयपर शक्तिका आधिक्य सूचित होता है सही; लेकिन स्वधर्म्मपरित्याग सब समय ही दुर्ब्बलताका परिचय प्रदान करता है; सम्प्रदायध्वंसका भी यही कारण था। सिख-सम्प्रदायकी संख्या बहुत ज्यादा थी। लेकिन गुरु गोविन्द प्रवर्त्तित मतकी उन्नतिसे अन्यान्य सम्प्रदाय लोप हुआ था। इसप्रकार सिखोंमें नानकका "खालसा" और गोविन्दकी "खालसाके" नामसे जिस श्रेष्ठ सम्प्रदायका विषय फारष्टरने लिखा है, (Forster, "Travels", i. 309) वह इस समय ज्यादा वर्त्तमान नहीं है। वस्तुतः पूर्व्वोक्त "खालसा" शब्द आजकल एक तरहसे अज्ञात है। लेकिन सभी "खालसा" सम्प्रदायकी समयके नामसे परिचित होनेके प्रयासी हैं। पहले गुरुकी शान्तिप्रिय शिष्य सिख लोग भारतवर्षमें सब जगह ही दिखाई देते थे; लेकिन इस्पात समाके युद्धप्रिय "सिंह" लोग हमेशाही पञ्जाबमें दिखाई देते हैं। सैनिक अवस्थामें वह लोग काबुलसे भारतकी दक्षिण और तक फैल गये हैं।

"टिप्पणी"—पाठक गण प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ

थी। सुतरां पुत्तलिकसंहारक मुसलमान-धर्म्मके प्रबल प्रभावसे जब ब्राह्मण्य-धर्म्मका मूलोच्छेद साधित हुआ, तबसे ही सिख धर्म्मकी उत्पत्ति और विकाश हुआ। इस समय सिख धर्म्म पश्चात्य सभ्यताके फलसे और खृष्ट धर्म्मके संस्पर्शसे धीरे धीरे उन्नतिपथपर अग्रसर होता है। बहुत दिनोंके बाद उसका फल प्रकाशित होगा,—परवर्त्ती वंशधरगण उसका अनुभव करनेमें समर्थ होंगे।

परिशिष्ट देखें। सिखोंके ग्रन्थमें सब विवरण लिखा गया है। गुरुओंने उनकी धर्म्मनीति और आचारपद्धतिकी वर्णना की है। नानक और गोविन्दने कुछ चिट्ठी-पत्रियां लिखी थीं। उनका सारसंग्रह और सिखोंके जीवन और धर्म्मनीतिकी विस्तारित वर्णना सभी प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ परिशिष्टमें सन्निविष्ट हुआ है। कुछ सिख सम्प्रदाय और उनकी भिन्न भिन्न पदवी पञ्चम परिशिष्टकी सूचीमें भी संयोजित हुई है।

चतुर्थ परिच्छेद ।

सिखोंका स्वाधीन राज्य

१७१६—१७६४ ।

(मुगल साम्राज्यका अधःपतन ;—सिखोंका पुनराविर्भाव ;—मीर मन्नू द्वारा सिखोंका निर्य्यातन और अहमदशाहके पुत्र तैमूरका उत्पीड़न ;—"खालसा" सैन्य और "खालसा" राज्यकी स्थायी शक्तिका विकाश ;—आदिनाबेगखां और रायके नेतृत्वाधीनमें महाराष्ट्रगण ;—अहमदशाहका आक्रमण और विजय लाभ ;—सरहिन्द और लाहोर प्रदेशमें सिखोंका राज्य स्थापन ;—जागीरदारोंकी तरह सिखोंकी राजनीतिक प्रतिष्ठा ।—"आकाली" सम्प्रदाय ।)

बादशाह औरङ्गजेबके साथ ही साथ तैमूरलङ्गके वंशके शौर्य्य-वीर्य्यकी प्रतिभाकी समाप्ति हुई। औरङ्गजेबके उत्तराधिकारी लोग दुर्ब्बलचेता थे ; स्वार्थपर अविश्वासी मन्त्रियोंपर सम्पूर्ण निर्भर करनेसे राज्यमें दारुण विशृङ्खला उपस्थित हुई थी। इसतरह साम्राज्य भिन्न भिन्न अंशमें बँट गया था ; प्रादेशिक शासनकर्त्ताओंने अपनी अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये चेष्टा की थी ; अधीनस्थ विद्रोही प्रजा दमनकर राज्यशासन करना कठिन हो पड़ा था। कई सालके भीतर ही दुःसाहसिक मुसलमानोंने बङ्गाल, लखनऊ और हैदराबाद प्रभृति स्थानोंमें स्वतन्त्र राज्यकी प्रतिष्ठा की थी। महाराष्ट्रोंमें पेशवाने भी राजधा-

नोंके सामने युद्धार्थ उपस्थित हो भारतवर्षके मुसलमानोंको चौंका दिया। * इधर दुर्द्धर्ष नादिरशाहने रक्त-रञ्जित राजधानीमें दूर-सम्पर्कित, तुर्क भाई मुहम्मदशाहकी अवज्ञाके साथ आलिङ्गन किया। † इसी समय रुहेलखण्डके अफगान उपनिवेशिक लोग और भरतपुरके हिन्दू जाट लोग बहुत शक्ति-सम्पन्न हो गये थे। ‡ जब लुटेरे विजेता नादिरशाहने लुटे हुए रत्नके साथ दिल्ली परित्याग किया, तब बादशाह हीनबल हुए; समाजविशृङ्खलता हुई;—यहाँतक, कि जब निराश्रय बाबरने भारतवर्षमें प्रवेशकर अपने वंश-सामर्थ्यके उपयुक्त सिंहासन ढूंढा था, जान पड़ता है, उस समय भी ऐसी विशृङ्खला नहीं हुई थी।

---

* सन् १७३७ ई०में पेशवा बाजीराव आगरेसे दिल्लीकी ओर गये। (See Elphinstone "History", ii, 609, and Grant Duff's History of the Mahrattas, i, 533, 534)

† भारत-आक्रमणमें कृतकार्य्य हो नादिरशाहने अपने पुत्रको एक खत लिखा था; यहाँ उसे ही देखना चाहिये। ('Asiatic Researches x, 545, 546)

‡ रुहेलोंके बारेमें बहुत प्रयोजनीय विवरण फ़ारस्टरका "भ्रमणवृत्तान्त" देखना चाहिये (Forster, "Travels, i, 115 &c.) एक विशेष प्रसिद्ध नेता हाफ़िज रहमतखांकी जीवनी, "लण्डन ओरियण्टल ट्रांस्लेशन कमिटीकी," एक पुस्तकमें सन्निविष्ट है।

भरतपुर और धौलपुर हातरस और अन्यान्य छोटे छोटे स्थानोंके जाटोंके स्वतन्त्र इतिहासकी जरूरत है।

मुगल-साम्राज्यका यह अन्तर्विप्लव उस समयाय सिखजातिकी फिर अभ्युदयके लिये बहुत ही अनुकूल हुआ था। अब्दुस्समद्ने लाहौरमें कठोर शासन-नीति फैलाया; उनकी और उनके दुर्बल वंशधरोंके * शासनाधीनमें सिख लोग प्रजाकी तरह शान्तभाव दिखाते थे। कभी कभी वह लोग डाकूपनसे जीविका अर्ज्जन करते थे; जङ्गल और गिरि-गुहामें वह लोग शिकारके लिये छिपे रहते थे। † जो हो, नानक और गोविन्दका धर्म्म-नीतिसमूह लोगोंके मनमें दृढ़ बद्धमूल हुआ था। सामान्य गृही और शिष्यो सभी इस धर्म्मको दिल ही दिल पालते थे। ज्यादातर अनुरागी पुरुष लोग बदला और विजय पानेकी आशासे अनुप्राणित हुए थे। स्वत गुरुने कहा था, कि वही सिखोंके आखिरी गुरु हैं। सुतरां धर्म्मोन्मत्त पुरुषोंका उस समय कोई परिचालक नहीं था; लेकिन जो धर्म्मगुरुको ही ईश्वर समझ उनका सम्मान करते थे, वह दृढ़ और अशिक्षित मनुष्य अपनी अपनी उन्नति करनेकी चेष्टा करने लगे। धर्म्मपर दृढ़ विश्वास और भक्तिके सिवा सिखोंका और कोई विधिबद्ध नियम या दूसरा कोई एकता-बन्धन नहीं था। इस नये धर्म्मकी श्री-वृद्धि और उन धर्म्मावलम्बियोंकी उन्नतिका प्रधान कारण यह था, कि इस धर्म्मको लोगोंने सत्यधर्म्म

---

* यह भी बन्दा-विजेताके पुत्र थे। उनका नाम,—जकरियाखाँ और उनकी उपाधि—खाँ बहादुर थी।

† Compare Forster,s Trvels, i. 313, and Browne,s 'India Tracts' ii 13.

समझ इसपर विश्वास किया था और भारतवासियोंका हृदय इस धर्मको ग्रहण करनेके लिये तय्यार हुआ था। सर्व्वसाधारण-मण्डली ऐसी एक सरल नीति इतना जल्द लोग ग्रहण करेंगे,—इसका अनेक समय कितने ही लोग विश्वास कर नहीं सके थे। साधारणतः धीर औरअनियमित भावसे इसधर्म्मकी गति प्रवाहित हुई थी। गोविन्दकी मृत्युकालसे वर्त्तमान समयतक सिखोंके इतिहासकी आलोचनाके समय यह बातें याद रखना चाहिये।

नादिर शाहके आक्रमणके समय सिख लोग छोटे छोटे दलमें एकत्र समवेत हुए थे। आये हुए पारसि देशीय सैन्य-दलकी धन-सम्पत्ति उन सब लोगोंने लूट ली थी। नादिरशाहके आगेसे जो भाग गये थे और फिर दिल्लीमें नृशंस हत्याकाण्डके आरम्भ होनेपर जिन्होंने पहाड़ियोंमें आश्रय लिया था, सिखोंने उनका सब सामान लूट लिया था। * इन सब अवैध कामोंसे

* Browne, India Tracts, ii, 15, 14, मुगल बादशाहसे नादिरने सिन्धुदेश, काबुल और वितस्ताके निकटवर्त्ती लाहोरके पार प्रदेश पाये।

उस समय अब्दुस्समदके पुत्र जकरियाखां लाहोरके शासनकर्त्ता थे।

दिल्लीके बादशाहकी पराजय और राजधानीमें नादिरका प्रवेश यथाक्रम सन् १७३९ ई०की १३वीं फरवरी और मार्च महीनेके प्रारम्भमें हुआ था। लेकिन उस समय तीन प्रधान पक्षके समाचारादि जाननेकी पद्धति इतनी खराब और अङ्गरेजोंके लिये दिल्ली नगरी इतनी कम आदरणीय थी, कि अक्टोबर महीनेतक

लिये इसके न पानेपर उन लोगोंने ज्यादातर दुःसाहसिक कामके साधनका समय पाया। सिख लोग खुल्लमखुल्ला अमृतसर आने लगे। अब उनका वह छद्मवेश न रहा। एक मुसलमान ग्रन्थकारने कहा है, कि नाना दिग्देशसे अश्वारोही सिख सैन्य आ इस पवित्र धर्म-मन्दिरमें ईश्वरोपासना करते थे। उनमें अधिकांश मारे गये थे, बाकी कई एक कैद हुए थे। लेकिन इस पवित्र स्थानमें आनेके समय निगृहीत होनेपर भी उन लोगोंमें किसीने अपना धर्मपरित्याग नहीं किया। * बादको कुछ सिखोंने इरावती किनारेके दालेवाल नामक स्थानमें एक छोटा किला बनाया। अबतक कोई उनकी बातें जानता नहीं था। इसके बाद वह लोग अमीनाबाद और उसके पार्श्ववर्ती स्थानोंमें समवेत हुए। उनका दल परिपुष्ट होने लगा; वहांके अधिवासियोंसे उन लोगोंने कर अदा करना आरम्भ किया। तब उन लोगोंकी ओर सबकी ही दृष्टि आकर्षित हुई;—सभी सन्त्रस्त हुए। इससे पहले कोई उन्हें ग्राह्य करता नहीं था। इस समय लाटरे आक्रान्त हुए; युद्धमें सिपाही लोग विताड़ित और उनके सेनापति मारे गये। फिर ज्यादा सैन्य भेजी गई। इस बार सिख लोग पराजित और उनमें अनेक कैदी हुए।

लण्डन नगरीमें यह समाचार नहीं पहुंचा। (Wade's Chronological British History, p. 417)

* मैलकमने यहां ग्रन्थकारका लेख उद्धृत किया है; लेकिन उन्होंने ग्रन्थकारका कोई परिचय नहीं दिया। (Malcolm, Sketch' p. 48.)

बहुत ज्यादा अपराधी लाहौर लाये गये; उन लोगोंकी हत्या या बधभूमि इस समय "शहीदगञ्ज"—या हत धर्मप्रिय लोगोंके स्थानके नामसे अभिहित है। * इस स्थानकी प्रसिद्धिका और एक कारण है; यहां भाई तारुसिंहकी कब्र स्थापित है। यह मस्तक मुड़ा अपना धर्म परित्याग करनेपर बाध्य किये गये थे। लेकिन गोविन्दके पहले बन्धुने कभी अपने विवेक या अपनी धर्मप्रकृतिकी अवमानना नहीं की;—दूसरेकी अधीनता भी स्वीकार नहीं की। सुतरां वर्त्तमान समयतक भी उनके प्रत्युत्तरकी बात सब लोग याद करते हैं। कोई कहते हैं, उनका उत्तर सच्चा था। कोई कहते हैं, वह छलनापूर्ण था। वह कहते थे,—मस्तकके बाल, शिखा (चोटी) और मस्तकावरण,—सभी परस्पर शृङ्खलमें आबद्ध हैं। मनुष्यके मस्तक और जीवनका परस्पर निकटका सम्बन्ध है और वह आनन्दके साथ प्राणदान करनेपर तय्यार थे।

इसी समय लाहौरके शासनकर्त्तृत्वपर जकरियाखांके दोनो लड़कोंमें घोरतर विवाद चलता था। जकरियाखां अब्दुस-समदके वंशधर थे; उन अब्दुससमदने ही बन्दाको पराजित किया था। जकरियाखांके छोटे लड़के शाहनेवाजखांने

* इस विषयके पूरे ज्ञानके लिये निम्नलिख ग्रन्थावली देखना चाहिये;—Browne, 'India Tracts, ii. 15; Malcolm, 'Sketch' P. 86, and 'Murray's Runjeet Singh by Princep, p. 4, इस समय जकरियाखांके ज्येष्ठपुत्र यहयाखां पञ्जाबके शासनकर्त्ता थे।

अपने ज्येष्ठको राज्यभ्रष्ट कर जबरदस्ती सिंहासनपर अधिकार किया। राज्यमें अपनी क्षमता अक्षुण्ण रखनेके लिये शाहनेवाजने अहमदशाह अवदालीके साथ एकतासूत्रमें आवद्ध होनेकी चेष्टा की। इसी उद्देश्यसे उन्होंने अहमदशाहके साथ खतकिताबत शुरू की। सन् १७४७ ई०के जून महीनेमें नादिरशाहको मार अहमदशाह अवदालीने अफगानस्थानका प्रभुत्व पाया था। इसके बाद मध्यएशियाकी कुछ दुर्द्धर्ष जातिने दुर्रानी राजाका साथ दिया। यह सब जातियां दूर देशमें जा लूटमारात करना पसन्द करती थीं;—वह लोग लुटेरोंके काममें बहुत पारदर्शी थे। इन सब जातियोंकी सहायता पा दुर्रानी राजाने समझा, कि भारतवर्ष ही उनके विजय और लूटनेका उपयुक्त स्थान है। उनसे उनका अभीष्ट सिद्ध होगा;—वह विशेष लाभवान् होंगे। इसी प्रकारकी कल्पनाकर उन्होंने गूढ़ अभिसन्धिके सिद्ध करनेकी चेष्टा की थी। पहले लाहोरके शासनकर्त्ताने उनके प्रति राजभक्ति दिखाई थी; दूसरे शत्रु नादिरशाहके अधीनस्थ काबुलके उन भागे हुए शासनकर्त्ताने दिल्लीमें जा बादशाहसे बहुत सम्मान पाया था;—इन दो कारणोंसे वह भारतवर्षकी ओर बढ़े थे।* जो हो, अहमदशाहने सिन्धुनद पार किया; लाहो-

---

* Compare Murray's Runjeet Singh, by Princep, p. 9, and Browne, 'India Tracts ii. उस समयके शासनकर्त्ता नासिरखांने भिन्नजातीय अहमदशाहके साथ कन्याकी विवाहसे इनकार किया। उन्होंने उन्हें राजाके नामसे भी स्वीकार नहीं किया; परन्तु उनकी उपेक्षा की। जो हो,

रके शासनकर्ता राजद्रोहिताके अपराधमें तिरस्कृत और लाञ्छित हुए। तब कु-अभिसन्धिको अपेक्षा सहायता ही प्रबल हो उठी। वह इस लिये क्वतकृत्य हुए, कि अफ-गान लोग ज्यादा आगे बढ़ न सके। लेकिन वह युद्धमें जय पा न सके, अहमदशाह अबदाली पञ्जाबपर अधिकार कर बैठे। अहमदशाहने सरहिन्दतक उनका अनुसरण किया। यहां पतनोन्मुख मुगल साम्राज्यके वीरोंके साथ उनका युद्ध हुआ। कुछ खण्डयुद्ध और कुछ चूड़ान्त युद्ध हुए। इन सब लड़ाइयोंका फल आक्रमणकारीके लिये इतना प्रतिकूल हुआ था, कि वह फिर पञ्जाबसे लौट आनेपर वाध्य हुए। इसी समय सतके सिखोंने अबदाली-सैन्य-पर पीछेसे आक्रमण किया; उन लोगोंने आत्मशक्तिपर विश्वास करनेका और एक प्रमाण पाया। एक सामान्य युद्धमें [illegible] मन्त्री गोलेके आघातसे मारे गये। इस युद्धमें उनके पुत्र मीर मन्नूने विशेष वीरत्व और कृतित्वका परिचय प्रदान किया था। सुतरां पिताकी मृत्युपर "मोईनुलमुल्ककी" उपाधि ग्रहणकर वह लाहोर और मुलतानके शासनकर्ताके पदपर अधिष्ठित हुए। *

यहां एलफिन्सटनका काबुलका विवरण देखना चाहिये। (Elphinstone, Account of Caubul, ii, 285) इस बारेमें उन्होंने इन-सबे विशेष विवरणोंका कुछ भी उल्लेख किया नहीं है।

*. Compare' Elphinstone, Cabul," ii, 285, 286 and Murray's Ranjeet Singh P. 6—8.

यह नये शासनकर्त्ता वीर्य्यवान् और सुचतुर थे। बादशाह की मङ्गलकामना करनेकी अपेक्षा अपना स्वार्थसाधन ही उनका प्रधान उद्देश्य था। शासनकार्य्यमें किसीको भी सलाह देते नहीं थे। अपनी बुद्धिके अनुसार ही वह सब काम पूरा करते थे। कौरामल और अदनाबेगखां नामक बहुदर्शी दो पुरुषोंको अपने कार्य्यमें नियुक्तकर उन्होंने विज्ञताका परिचय प्रदान किया था; कौरामल उनके प्रतिनिधि हुए और अदनाबेग जलन्धर दोआबके अध्यक्षके पदपर प्रतिष्ठित हुए। इसी समय विद्रोही सिख लोग शासन-कार्य्यके बाधक हो खड़े हुये। सुतरां शीघ्र ही उनलोगोंकी ओर राजद्रोही शासनकर्त्ताओंकी दृष्टि सञ्चालित हुई। उन लोगोंने बहुत दक्षताके साथ सिख-विद्रोह दमन किया। * अहमदशाहके आक्रमणके समय उन लोगोंने अमृतसरके निकटहीं "राम राउनी" नामक एक दुर्ग ध्वंस किया था। इसी समय उन लोगोंमें प्रधान-पुरोध जस्सा-सिंह कलाल नामक एक सुदक्ष सेनानायकने विशेष प्रतिष्ठा पाई। हिम्मत और बहादुरीके साथ सिख-साम्राज्यमें एक नयशक्तिका सञ्चार किया। यही "खालसा"का "डाल" या "सिं-

---

* कौरामलने गोविन्दकी नीतिका अवलम्बन किया नहीं था; लेकिन वह खुद नानकके शिष्योंके नामसे परिचित थे। (Forster, 'Travels' i, 314) जकरियाखांने अदनाबेगखांको जलन्धर दोआबका शासनकर्त्ता नियुक्त किया। अदनाबेग नादिरशाहके लौट आनेपर इधर सिखोंकी क्षमता लोप करनेके लिये आदिष्ट हुए। (Browne India Tracts, ii, 14)

ह" उपाधि-युक्त धर्म-सम्प्रदायका सैन्यदल था। * मार, मन्नूने अपनी क्षमताकी प्रतिष्ठा करके ही विद्रोहियोंके विरुद्ध युद्धयात्रा की। विद्रोही सिखोंका किला घिर गया; सिपाही विध्वस्त हो चारों ओर भाग गये। उन्होंने शान्तिस्थापनके लिये बहुत उपाय अवलम्बन किये। † इतनेमें उन्होंने सुना,—अफगान लोग दूसरी बार भारतपर आक्रमण करनेके लिये आगे बढ़ रहे हैं; इस ओरसे उनकी सब कल्पना ही विफल हुई। इस विपद्के निवारणके लिये उन्होंने वितस्ता नदी किनारे सैन्य समावेश किया। दुर्रानीके शिविरमें दूत भेजा गया; उन्होंने इस विपद्को दूर करनेके लिये उन्हें नाना प्रकारकी

---

* Compare 'Browne, 'India Tracts, ii, 16. उन्होंने कहा है, कि चरणसिंह, टोका सिंह, और [illegible] सभी युधा कङ्गालके साथ एकता-सूत्रमें आबद्ध हुए।

† कौरामल और अदनाबेग दोनोंने ही सिखोंकी सीमान्त प्रदेशपर आक्रमण करनेके लिये मीर मन्नूको भेजा था। कौरामलका पहलेसे ही सिखोंकी ओर अनुराग था; और अदनाबेगने राजनीतिक उद्देश्य-साधनकल्पमें उन लोगोंके प्रति आक्रमणसे अमत दिखाया था। (Compare Browne, 'Tracts, ii, 16, and Forster, Travels, i, 314, 315, 327, 328.) फारष्टर कहते हैं, सिखोंसे अपरिणत सम्प्रदायको दमन करनेकी अपेक्षा मन्नूका और भी गुरुतर उद्देश्य मालूम हुआ था। स्वार्थके व्याघातर डरसे समझ उन्होंने इस दुर्बल धर्म-सम्प्रदायको ध्वंस करनेकी चेष्टा की नहीं थी।

सुविधा देना अङ्गीकार किया। अहमद शाहकी अपनी राज्यकी शासनशृङ्खला उस समय भी सुप्रतिष्ठित नहीं हुई थी। सर-हिन्दमें जिस युवकने उनका गतिरोध किया, वह उनकी दक्षतापर मुग्ध हुए थे; शाह उनपर बहुत श्रद्धा करते थे। अबदाली; नादिर शाहके उत्तराधिकारी थे; इससे ही उन्होंने सिंहासन पाया था; उस समय नादिरशाह चार प्रदेशोंका कर पाते थे। अहमदको उसके देनेसे इनकार करनेके कारण वह सिन्धुनदके दूसरे किनारे लौट गये। *

मीर मन्नूने जिन उपायोंका अवलम्बन किया था; उससे उद्देश्यके सिद्ध होनेपर उन्होंने दिल्लीमें बहुत ख्याति प्रतिपत्ति लाभ की। लेकिन उनकी गूढ़ अभिसन्धिसे अवगत हो वजीर सफदरजङ्ग बहुत भीत हुए, उन्होंने अयोध्याके बारेमें दिल ही दिल एक कल्पना की थी; इस समय उसके कार्यमें परिणत करनेके लिये चेष्टा की। फिर आत्मीय-पुत्र समझ उन्होंने मीर मन्नूका मुंह नहीं देखा। उन्होंने एक प्रस्ताव किया; कि शाहनेवाजको मुलतानका शासनकर्तृत्व प्रदानकर मीरमन्नूकी क्षमता घटाना चाहिये। मीर मन्नूने कौशलसे उन शाहनेवा-

---

* अफगानोंके विवरणके अनुसार मालूम हुआ है, पञ्जाबके शासनकर्ता मीर मन्नू अहमदशाहके कर दाताओंमेंसे गिने गये थे। इन आक्रमणकारीको दूर रखनेके लिये और उनके आक्रमणसे निरापद रहनेके अभिप्रायसे अबदालीसे उन्होंने कोई न कोई शर्त की। (Compare Elphinstone, Caubul ii. 186 Murray, Runjeet Singh, P. 9, 10)

नको लाहोरका सिंहासन पानेसे वञ्चित किया था। * मन्नू अहमदशाहकी क्षमता और सैन्यबल सभी अच्छी तरह जानते थे; उन्हें अपना अर्थ-सामर्थ्य भी समझना बाकी नहीं था। मन्नूने अपने प्रतिनिधि कौरामलको नये शासनकर्त्ताका गतिरोध करनेकी आज्ञा दी। शाहनेवाजखां युद्धमें पराजित हुए और मारे गये। इससे विजयोन्मत्त शासनकर्त्ताने अपने कृतकर्मा अनुचरको "महाराज" की उपाधि प्रदान की। † उन्होंने बाद इनके आधीनतापाशको पूरी तरह तोड़ स्वाधीनता अवलम्बन किया। सिखोंका विद्रोह दमित हुआ। दूसरे दूसरेकी कृतकार्यता पा उत्साहित हो, मन्नू अपने गूढ़ अभिसन्धिको कार्य्यमें परिणत करनेमें बद्धपरिकर हुए। अहमदशाहको उन्होंने जो राजस्व देना स्वीकार किया था, वह भी इस समय बन्द कर दिया। राजस्व अदामें छलना की गई; मन्नूने भी सब बाकी राजस्व प्रदान करनेका प्रस्ताव किया। लेकिन दोनो ओर कोई किसीको ओर भी विश्वास स्थापन कर न सके। तब सैन्यके साथ अफगान-

---

* मुलतानके स्थानीय विवरणसे मालूम होता है, कि सन् १७३९—४० ई॰में जब नादिरशाहने सिन्धुदेशमें प्रवेश किया, तब जकरियाखांके छोटे लड़के हयातुल्लह खां मुलतानके शासनकर्त्ता थे। 'नादिरशाहका उद्देश्य था,—वह सिन्धुदेशपर अधिकारकर वहां राज्यस्थापन करेंगे।' उस समय हयातुल्लह-खांने उन फारिस देशीय विजेताकी वश्यता स्वीकार की। हयातुल्लहने नादिरशाहसे "शाहनेवाजखां" की उपाधि पाई।

† 'Compare Murray's 'Runjeet Ringh,' p. 10

शाहने लाहोरकी ओर यात्रा की। मन्नूने सीमान्त प्रदेशमें ही उनके साथ युद्ध करनेका यत्न किया ; लेकिन अन्तमें नगर-प्राकारके मध्यस्थित एक सुरक्षित स्थानमें आश्रय लिया। मन्नू यदि शत्रुको बाधा दे आत्मरक्षा करनेमें तत्पर होते, तो सम्भवतः अबदालीकी सब चेष्टायें विफल होतीं। लेकिन मन्नू उस बारेमें निश्चेष्ट रहे। वह दुर्गमें घिर गये। चार महीनेतक इसी अवस्थामें समय बिता अन्तमें अबदालीकी सैन्यके साथ वह युद्धमें प्रवृत्त हुए। इस युद्धमें कौरामल मारे गये ; आदीनाबेगने युद्धमें साथ नहीं दिया। तब मन्नूने देखा,—युद्धके ज्यादा दिनों स्थायी रहनेपर बहुत नुकसानकी सम्भावना है ; सुतरां वह बहुत विचक्षणताके साथ राजधानीमें लौट विजेताके प्रति अपने आनुगत्यका यथेष्ट परिचय देने लगे। अहमदशाहने बहुत रुपये पाये ; लाहोर और मुलतान अफगान राज्यके अन्तर्भुक्त हुआ। अहमदशाहने मन्नूकी असाधारण सैन्य-परिचालन-शक्तिकी बहुत प्रशंसा की ;—उनके शासनकी क्षमतासे मोहित हुए। इन सब कारणोंसे अहमदशाहने मन्नूको ही नवविजित राज्यके शासनकर्ताके पदपर प्रतिष्ठित किया। इसके बाद काश्मीरपर अधिकारके लिये अहमदशाह नाना उपायोंका अवलम्बन करने लगे ; लेकिन शीघ्र ही उन्हें अपने देशको ओर लौट जाना पड़ा।* इसतरह विदेशियों द्वारा लाहोरके दूसरे बार आक्रान्त होनेपर उस प्रदेशकी शासन-शृङ्खला धीरे धीरे शिथिल हुई।

---

* Compare Elphinstone, 'Caubul', ii. [illegible]8, and Murray's 'Runjeet Singh', p. 10, 13.